पुस्तकके कठिन कठिन शब्दों की शब्दावली

अ

अकस्मात्—अचानक।
अछेद्य—जिसे छेदा या बींधा न जा सके।
अजीत—जिसे जीता न गया हो।
अतोपणीय—जिसकी तसल्ली न हो।
अधिकारच्युत—अधिकार से गिराया हुआ।
अनन्य—दूसरे की तरफ़ न जाने वाली।
अनन्यभुक्ति—यह भाव कि दूसरा भोगने न पावे, स्वार्थ।
अनन्यसामान्य—जो दूसरे किसी के पास न हो।
अनपेक्षित—जिसकी आशा न हो।
अनभिज्ञ—नावाक़िफ़।
अनलस—जिसमें आलस या सुस्ती न हो।
अनाधिकारी—जो अधिकारी न हो, जो हक़दार न हो।
अनावृष्टि—वर्षा का न होना।
अनिवार्य—जो टल न सके।
अनुदार—जो उदार न हो, तंग दिल।
अनुपस्थिति—मौजूद न होना, ग़ैर हाज़री।
अनुमोदन—मंज़ूर करना
अनुसरण—पीछे चलना।
अनुज्ञा—इजाज़त।
अन्तःपुर—ज़नानख़ाना, हरम।
अन्तर्हित—भीतर छिपी हुई।
अंधविश्वास—अंधा विश्वास, बिना सोचा समझा हुआ विश्वास।
अपराजित—जो दूसरे से न जीता गया हो।
अपर्याप्त—ना काफ़ी।
अपहरण—हर लेजाना, भगा लेजाना।
अप्रगल्भ—जो दूसरों से कोई छेड़ छाड़ न करे।
अभिद्रोह—कष्ट पहुँचाना।
अभिनेता—नाटक में खेलने वाल।
अभियोग—मुक़दमा, मुक़दमा चलाना, दावा।
अभिशप्त—जिसे शाप दिया हुआ हो।
अभिशाप—कोसना।
अभ्यर्थना—इलतजा करना।
अमोघ—जो निष्फल न जावे।

अयशस्कर—अपयश या बदनामी का करने वाला।
अयाचित—न मांगा हुआ, बिना मांगा हुआ।
अराजकता—जिस दशा में कोई राजा न हो या न माना जाता हो, एक तरह का गदर।
अर्थसिद्धि—अपना मतलब सिद्ध करना।
अर्वाचीन—आजकल का।
अल्पकालिक—थोड़े समय का (अल्प=थोड़ा)
अवच्छेद—काट डालना।
अवनतिमूलक—जिस से अवनति या तनज़्ज़ुल हो।
अवशता—वश या काबू से बाहर होना।
अवस्कन्द—दूसरे के देश में घुस आना।
अवज्ञा—हतक, बेइज़्ज़ती।
अविरत—लगातार।
अविज्ञ—अनजान।
अवेक्षा—खबरदारी
अशमनीय—जो शान्त न हो सके।
अश्वारोहिणी सेना—घुड़सवार
असंगत—नामुनासिब।
असंस्कृत—संस्कार न किये हुए, अनघड़।
असामान्य—खास, गैर मामूली
अस्तव्यस्त—उलटपुलट।
अस्तित्व—हस्ती, होना।
अज्ञ—मूर्ख।

आ

आकस्मिक—इत्तफ़ाक़िया।
आक्रमक—आक्रमण, यानी हमला करने वाला।
आख्यायिका—कहानी।
आगन्तुक—आनेवाला, नया आया हुआ।
आगमन—आना।
आग्रह—हठ, ज़िद।
आचारभ्रष्टता—आचार यानी चरित्र से गिरजाना।
आत्मगौरव—अपनी इज़्ज़त, मान, Selfrespect।
आत्मप्रतिपादन—अपना अस्तित्व बनाये रखना या जताना, Self-assertion।
आत्मोत्सर्ग—अपने को बलि यानी कुरबानी देना, Self-sacrifice।
आदिम—सब से पहिला।
आबंध—बंधन।

आभास—नक़ल।
आयास—थकावट।
आरोपण—लगाना या थोपना जैसे किसी इलज़ाम का।
आरोपित—आरोपण किया हुआ
आवर्त्तित—बार बार को।
आश्वासन—तसल्ली, दिल की ठण्डक।
आसन्न—आनेवाला, निकटका।
आह्वान—चिल्लाकर कहना।

ई

ईप्सित—चाहा हुआ।

उ

उग्रतम—बहुत तेज़।
उत्तरदातृत्व—ज़िम्मेवारी।
उत्तरफल—नतीजा।
उत्तराधिकारी—पीछे हक़दार होनेवाला, जानशीन।
उत्ताप—जोश।
उत्पात—विचित्र घटना।
उदासीनता—बेपरवाही।
उद्दीपक—भड़काने वाला।
उद्दीप्त करना—भड़काना।
उद्धत—गुस्ताख़, घमण्ड से भरा हुआ।
उद्धृत—किसी पुस्तक से कोई वाक्य आदिक नक़ल करना।
उद्यान—बाग़।
उन्मूलन—जड़ उखेड़ना
उपकरण—आडम्बर (Paraphernalia)
उपचार—इज़्ज़त, सेवा, ख़ब-रदारी।
उपजीवी—जिसकी जीविका दूसरे के सहारे हो।
उपनिवेश—जहां कोई दूसरे स्थान से आकर रहने लगे (Colony)
उपमार्थ—उपमा यानी मिसाल के लिये।
उपयुक्त—मुनासिब।
उपयोगिता—लाभ, फ़ायदा।
उपेक्षा—बेपरवाही चश्मपोशी।
उल्लंघक—उल्लङ्घन करने वाला यानी किसी नियम आदिक को तोड़ने वाला।

ऐ

ऐहिक—सांसारिक, इस दुनिया का।

ओ

ओजस्विनी—जोशीली, जोश दिलाने वाला या वाली।

क

कटिबद्ध—कमर कसे हुए, तय्यार।
कतिपय—कुछ।
कदापि—कभी भी।
करुणात्मक—जिससे करुणा या दया उत्पन्न हो।
किंवदन्ती—अफ़वाह (rumour)
कुविचारणी—बुरीसलाह (Conspiracy)
कुशासन—बुरी हकूमत, बद-इन्तज़ामी।
कृतकार्य—कामयाब।
कृतघ्नता—नाशुकरी, किये को न मानना।
कृतज्ञता—अहसानमन्दी, किये को मानना।
कृत्य=काम।
कृपणधी—तंग अक़ल, तंग दिल।
केन्द्र-मरकज़, बीच की जगह।
क्रमागत—क्रम से आया हुआ जैसे पिता से पुत्र को।
क्रियात्मक—अमली, करने करने के (Practical)
...—सख़्ती, ज़ुल्म।

ग

गणिका—कंजरी, वेश्या।
गद्यात्मक—जिसमें गद्य अर्थात नसर हो।
गर्हणीय—लानतका मुस्तहक़।
गौरवान्वित—गौरववाला,शानदार।

घ

घटना स्थिति—हालात।
घन—घना।
घनिष्ट—गहरा।
घृणार्ह—घृणा या नफ़रत योग्य।
घोषणापत्र—ऐलान (Proclmation)

च

चाटूक्ति—ख़ुशामदकी बात
चिकित्सा—इलाज।
चित्तोत्तेजक—चित्तको उत्तेजित करने या उभारने वाला
चिरस्थायी—देर तक रहने वाला
चेष्टा—तहरीक (movement)
चैत्य—किसी मृत पुरुष की छतरी (cenotaph)

छ

छिद्रान्वेषी—दूसरे के छिद्र अर्थात् नुक़्स ढूंढनेवाला।

ज

जागरूकता—जागरूक या ख़बरदार रहना।
ज़ीर्णता—पुरानापन, खण्डर।

त

तटस्थ—पृथक, अलहदा।
तत्काल—उसही समय।
तरुणी—कुमारी, जवान स्त्री।
तिरस्कार्य—तिरस्कार या बेइज़्ज़ती के लायक़।
तिरस्कृत—बेइज़्ज़त।
तुण्डी—शरासन जिसमें तीरें रखी जाती हैं।
तेजोत्पादक—तेज उत्पन्न करने वाला (inspiring).

द

दमननीति—दबाने की चाल। (Repressive Policy)
दक्षता—होशियारी।
दार्शनिक—दर्शन जानने वाले, फ़िलासोफ़र।
दुरारोहता—कठिनाई से चढ़ा जा सकना।
दुर्जयता—कठिनाई से जीता जा सकना।
दूष्यरचना—ख़ेमे लगाना (Tent Pegging)
दृढांग—मज़बूत अंगो वाला।
देदीप्यमान—शानदार (Magnificent)

ध

धात्रेय—धात्री अर्थात् धाया का पुत्र।

न

नपुंसकता—नामर्दी।
नवयवस्क—नयी उमर का, जवान।
नश्वरता—नाश हो जाने का गुण।
निग्रह—रोक टोक, दब जाना।
निज—अपना।
नित्ययुवती—सदा जवान रहने वाली स्त्री।
निबिडता—ठोसपन (Compactness)
निमंत्रित—बुलाया हुआ।
नियत—मुक़र्रर, बंधा हुआ।
नियंत्रण—वश (Control)
निरुपद्रव—शान्त, जो उपद्रव न करे।

निरोध—हिरासत (Custody)
निर्घात—चोट, ज़र्ब।
निर्दिष्ट—निर्देश किया हुआ या तै किया हुआ।
निर्देश—तै करना या इशारे से बताना।
निर्मुक्त—छुटा हुआ।
निर्लक्ष—जिसका कोई लक्ष या मक़सद न हो।
निर्वासन—जलावतनी।
निवारण—हटाना, टलाना।
निश्चलता—हरकतका न होना।
निश्वास—आह!
निष्क्रिय प्रतिरोध—शान्ति के साथ विना हथियारों के मुक़ाबला करना (Passive resistance)
निष्ठुर शासन—ज़ालिमाना या सख़्त हकूमत।
निस्तार—छुटकारा, निजात।
नीतिज्ञता—नीति या चालों को जानना।
नूतन—नया।

प

पटल—सात छिलका या खोल (Crust)।
पण्डितोचित—पण्डितों यानी विद्वानों के योग्य।
पतन—गिरना।
पत्री—शाहीन, बाज़ (एक पक्षी)।
परतंत्रता—दूसरे की अधीनता गुलामी।
परलोकनिष्ट—परलोक की ओर लगा हुआ।
पराजित—दूसरों से जीता गया
परिचित—वाक़िफ़।
परिच्छद—ऊपरी टीप टाप, उपकरण।
परिच्छेद—पृथक पृथक करना जैसे नाज और भूसी को।
परिमाण—नाप, मिक़्दार।
परिमित—महदूद।
परिवर्तन—तबदीली, इनक़लाब
परिवर्तित—बदला हुआ।

परिशिष्ट—पुस्तक के अन्त में ऊपर से जुड़ा हुआ कुछ विशेषभाग (Appendix)
परिहार—विशेष पोध।
पर्याप्त—काफ़ी।
पारितोषिक—इनाम।
पार्ष्णित्र सेना—जो सेना केवल समय पड़ने पर ही लड़ने को आजावे (Reserves)
पुनरुज्जीवित—फिर से जान फूंकी हुई।
पुनरुद्धार—फिर से उभारना (Revival)
पूर्वज—पहिले के लोग।
पूर्वाधिकारी—पहिले के अधिकारी अर्थात् जो इस से पहिले अधिकार पाये हुये थे।
पूर्वाभिनय—नाटक से पहिले जो केवल अभ्यास के लिये खेलते हैं (Rehearsal)
पूर्वोपाय—जो उपाय पहिले से किया जावे।
पैतृक—पितासे पुत्र को प्राप्त, मौरूसी।
पौर जीवन—एक नागरिक वा नगरनिवासी का जीवन।
पौरुषी—मरदाना।
प्रचोदित—उत्तेजित।
प्रजातांत्रिक राज्य—जिस राज्य में अधिकार प्रजा ही के हाथों में हो।
प्रजा प्रभुत्व राज्य—जिस राज्य में प्रजा का प्रभुत्व हो।
प्रतिकार—बदला।
प्रतिपक्षी—दूसरे पक्ष वाला।
प्रतिभू—गारण्टी Guarantee
प्रतियोगिनी—प्रतियोगी का स्त्री लिङ्ग।
प्रतियोगी—वे मनुष्य एक दूसरे के प्रतियोगी होते हैं जिनमें किसी एक विषय में एक दूसरे से बढ़ने के लिये लाग हो (Rival)
प्रतिरोध—मुकाबला।
प्रतिष्ठापन—कायमकियाजाना
प्रतिहिंसा—बदले में मारना।
प्रतीक्षा—इन्तज़ार।
प्रत्युत्पन्नता—तत्परता, तय्यार रहना।
प्रदर्शक—दिखाने वाला
प्रभविष्णु—हर बात पर क़ाबू रखने वाला।
प्रयाण—चलना, रवाना होना।

प्रवर्तक—ईजाद करने या चलाने वाला।
प्रसार—फैलाव।
प्रस्ताव—तजवीज़।
प्रस्तुत—चलाया हुआ, मौजूद।
प्रक्षालन—धोना।
प्राकार—क़िले के चारों ओर की दीवार।
प्राकृतिक—क़ुदरती।
प्राच्य—पूर्वीय, मशरिक़ी, एशियाई।
प्राथमिक—पहिले का।
प्रामाणिक—मानने योग्य।
प्रासाद—महल।
प्रेरकशक्ति—जिस शक्ति द्वारा काम करने की उत्तेजना हो (motive power)
प्रेरणा—उत्तेजना।
प्रोत्साहन—हौसला, उत्साह मिलना।

फ

फलोत्पादकता—फल उत्पन्न करने या देने का गुण।

ब

बन्दि या बन्दी—क़ैदी।
बन्दि—भट्ट (bards)
बंधक—मनुष्य के रूप में ज़मानत (hostage)
बाधित—मजबूर।

भ

भागविन्यस्त—हिस्सों में बटा हुआ।
भौतिकी—माद्दी, शारीरिक, सांसारिक, स्थूल।
भ्रान्तचित्त—जिस का चित्त भ्रान्त हो, विह्वल हो अर्थात् भ्रममें पड़ा हुआ हो।

म

मतावलम्बन—किसी मत को अथवा दूसरे मतको ग्रहण करना।
मरुस्थल—रेगिस्तान।
मल्लयुद्ध—कुश्ती।
मार्ग प्रदर्शन—रास्ता दिखलाना।
मूढविश्वासी—जिसके विश्वास अन्धे अथवा मूर्खता के हों।
मृगया—शिकार।
मृतप्राय—मरे हुये के बराबर।
मृदुशासनमृदु—अर्थात् नरम हुकूमत जिसमें किसी पर कड़ाई न हो।

य

यशस्कर—जिसके कारण यश अर्थात् नाम हो।

यशस्कामी—यश अर्थात् नाम की इच्छा करनेवाला।

यान्त्रिक—यंत्र के समान या यंत्र की सी (mechanical)

याज्ञिक—यज्ञ कराने वाला, पुरोहित।

युग—जुआ बैल के कंधों पर का।

र

रंग भूमि—स्टेज जिसपर नाटक होता है।

राज्यक्रान्ति—राज्य का प्रबल परिवर्तन (Revolution)

राज्यापहारी—बिना अधिकार राज्य छीन लेने वाला।

रूपक—इस्तआरा (Metaphor)

ल

लेखन पद्धति—लिखने की पद्धति या ढंग।

लोकोक्ति-लोगों में प्रसिद्ध कहावत।

लौकिक—लोगों में प्रचलित।

व

वक्तृत्व—गुफ़्तगू, स्पीच(Speech)

वज्रशासन—कठोर या सख़्त हकूमत।

वशवर्ती—वश में रहने वाला, अधीन, आयत्त।

वस्तुतः—असल में।

वस्तुरचना—नाटक की प्लाट (plot) का बनाना।

वास्तव—असलीयत, हक़ीक़त।

वास्तविक—असली।

वाह्य—बाहर का।

विकल्प से—दोनों में से एक पक्ष यह या वह।

विकिरण—किरणों का निकलना या फैलना।

विद्युच्छक्ति—बिजली की ताक़त।

विन्यास—इन्तज़ाम। (System, organization)

विप्लव—बलवा।

विभक्त—बटा हुआ।

विरहित—पृथक, अलहदा।

विवर—ख़ाली जगह (gap)।

विविक्तता—विविक्त अर्थात् संसार त्यागी होना।

विशिष्ट—ख़ास, बहुत अच्छा।

विश्वासघात—दग़ा, धोका।

विश्वासशीलता—दूसरों पर विश्वास सहज ही करलेने की आदत।

विषयासक्ति—विषयों में फंसे होना।
विस्तार—फैलाव।
विस्तारक्रम—धीरे धीरे फैलने या उन्नति करने का क्रम। (Process of evolution)
विस्तृत—फैला हुआ।
विस्मयान्वित—जिस से विस्मय अर्थात हैरानी उत्पन्न हो।
विस्मयावह—विस्मयान्वित।
विह्वल—घबड़ाया हुआ, गड़बड़ में।
विक्षिप्त—उलट पुलट, विह्वल।
विक्षोभ—तूफ़ान, प्रबल गोलमाल।
विज्ञता—अक़्लमंदी।
वेतन—तनख़ाह।
वैतनिक—तनख़ाह पाने वाला।
वैभव—शोभा, महत्व।
व्यक्ति—एक मनुष्य, फ़र्द। An individual.
व्यक्तिगत—ज़ाती, Individual व्यक्ति का
व्यग्रता—तेज़ी, जोश।
व्यथित—दुःखी।
व्यवस्था—ज़ाब्ता (constitution)।
व्यवस्थित—बाज़ाब्ता।
व्यवहारक्रम—काम करने की नीति plan।

श

शताब्दी—सदी।
शरीर व्यंगीकरण—शरीर के अंगों को काट काट कर पृथक कर देना।
शुष्कता—सूखापन, ख़ुश्की।
शून्य—ख़ाली।

स

संकीर्ण—तंग, थोड़ी दूर में के फैली हुई।
संकुचित—तंग, तंगदिल,।
संकेत—इशारा।
संगठित या संघटित—एकत्रित करके तरतीब दिया हुआ।
संगत—मुनासिब, मौक़े का, मेल का।
संघठन—तरतीबदेना (organisation)
संचार—इकट्ठा करना, प्राप्त करना।
सत्ता—ताक़त, हकूमत।
सन्नद्धशरीर—गठे हुए शरीर वाला।
संशयात्मक—जिस से संशय या शक उत्पन्न हो।

संशयापन्न—संशय में पड़ा हुआ ।
संस्था—कोई रिवाज अथवा संघविशेष (Institution)
संस्थापक—क़ायम करनेवाला।
संक्षोभ—बहाव, तूफ़ान ।
सभ्यता—तहज़ीब (civilization)
समकालीन—एक ही समय का ।
समरस्थल—लड़ाईका मैदान।
समरासक्त—लड़ाईका शौक़ीन।
समस्थल—हमवार मैदान (plains)
समाज संशोधक—समाज को सुधारने वाला । (Social reformer)
समृद्ध—ख़ुश हाल, विपुल, बहुत सा या बहुत अच्छा ।
समृद्धि—ख़ुशहाली ।
सम्पर्क—तआल्लुक़, छूना ।
संभवतः—मुमकिन है कि ।
संभवता—सम्भावना,इमकान।
सम्मिलित—मिला हुआ ।
सम्राज्ञी—सम्राट अर्थात् शहन्शाह की स्त्री ।
संविधान—तरतीब देना, संघटन (Oarganisation)
सर्वग्राही—सब के ऊपर हावी
सर्वात्मना—पूरे दिल के साथ।
सशस्त्र प्रतिरोध—हथियारों के साथ मुक़ाबला।
सहकालीन—एक ही समय का
सहसा—जल्दी से, झट से ।
सांग्रामिक—संग्राम का, युद्ध का ।
सातत्य वार बार होना।
सामंत—सम्राट के अधीन छोटे राजे आदिक (Feudatory chiefs)
सामयिक—उस समय का ।
सामरिक—समर अर्थात युद्ध का ।
सामान्य राष्ट्रीयता—एक ही राष्ट्र के होना ।
सामोपचार—ख़ुश कर लेने की बात (Conciliation)
साम्प्रदायिक—सम्प्रदाय का ।
संकीर्ण—तंग ।
साम्राज्य—सम्राट की सलतनत । (Empire)
सारलोह—फ़ौलाद ।
सार्वजनिक—सब लोगों का, सब किसी का ।
सार्वलौकिक—सब लोगों का, सब किसी का ।
साहचर्य—साथ रहना ।

साहसिक—हौसले वाला।
साहित्य—पुस्तकें आदिक (Literature)
साक्षेप—आक्षेप अर्थात् ताने के साथ।
सीमा सम्बन्धी—सरहद्दी।
सुगमतार्थ—आसानी के लिये।
सुसहत—एक हुआ हुआ (Consolidated)
सूक्ष्मदृष्टि—बारीकियां छांटने वाला (Scrupulous)
सैनिक—सिपाही।
सैनिक शासन- फ़ौजी हकूमत
सैन्य निवास—फौजका रहना।
स्थायी—पक्का, मुस्तक़िल।
स्थायी रूपसें—मुस्तक़िल तौर पर, बहुत दिनों के लिये।
स्थिति—हालत
स्थितिपालन—लकीर के फ़क़ीर बने रहना।
स्थितिस्थापकता—हालातके अनुसार अपने का बदल लेना।
स्वच्छन्द—आज़ाद।
स्वस्थ—तन्दरुस्त।
स्वेच्छाचारी—अपनी ही इच्छा अनुसार सब कुछ करने वाला (Autocrat)
स्वेच्छाशासन—वह हकूमत जिसमें हाकिम बिना रोक टोक जो चाहे करले (Autocracy)

ह

हस्तगत—हथियाना, अपने हाथ में करना।
हस्तक्षेप—दख़ल देना।
हृदयंगम—दिलपर असर करने वाला।

क्ष।

क्षंतव्य—माफ़ी के क़ाबिल।
क्षमता—ताक़त।
क्षीरपा—दूध पीनेवाला, बहुत छोटा बच्चा।
क्षेमकर—अच्छा, कुशल करने वाला।
क्षोभित—तूफ़ान वाले Stormy

त्र

त्रास—डर, भय।

प्रस्तावना ।

इस पुस्तक को हिन्दी पाठकों की सेवा में उपस्थित करते समय हमें किसी लम्बी प्रस्तावना की आवश्यकता अनुभव नहीं होती। पुस्तक की उपयोगिता का अनुमान तथा उस अद्भुत खोज का अनुमान जिसके पश्चात् डाक्टर गोकलचन्द जी जैसे विद्वान ने उस अंगरेज़ी पुस्तक की रचना की, जिसका अनुवाद हम इस समय पाठकों के सन्मुख रख रहे हैं केवल दो साधारण बातों से किया जा सकता है। एक यह कि डाक्टर साहब ने अंगरेज़ी, फ़ारसी, संस्कृत, गुरुमुखी तथा हिन्दुस्तानी की जिन अगणित पुस्तकों को पढ़कर तथा मथकर अपने ग्रन्थ की रचनाकी है उनमें से केवल मुख्य मुख्य के नाम उन्होंने अंगरेज़ी पुस्तक के छै. पृष्ठोंमें दे रखे हैं और दूसरे यह कि इस पुस्तक रुपी निबंध की रचना करने पर ही योरुप की बर्न (Bern) नामक युनीवर्सिटीने लेखक को डाक्टर (PH,D.) की उपाधि प्रदान की है।

अनुवादक को इस बात का थोड़ासा दुःख है कि उसे प्रूफ पढ़ने का अवसर नहीं मिलसका जिसके कारण विशेषर पुस्तक के पूर्वार्द्ध में छापे की अशुद्धियां रह गयी हैं। इन मुख्य अशुद्धियो का एक शुद्धि पत्र बनाकर पुस्तक के साथ लगा दिया गया है। आशा है कि इस छोटी सी त्रुटि से पुस्तक की उपयोगिता में अधिक कमी न आवेगी।

संस्कृत न जानने वाले अथवा हिन्दी भाषा से अधिक परिचय न रखने वाले पाठकों की सुगमता के लिये हमने एक सुयोग्य मित्र के सुझाने पर पुस्तक के साथ पुस्तक के कठिन कठिन लग भग चारसौ शब्दों की अर्थ सहित शब्दावलि भी अन्त में देदी है। शब्दावलि के शब्द हिन्दी वर्णमाला के क्रम में दिये हुए हैं और प्रत्येक शब्दके सामने उसके अर्थ हैं। अन्तमें अपने परिश्रम के फल तथा पुस्तक की उपयोगिता का निर्णय हम पाठकों के ऊपर छोड़ते हैं।

विनीत—अनुवादक तथा प्रकाशक।

भूमिका

सिक्खमत सम्बन्धी इस छोटे से निबन्ध को पाठकों के सन्मुख उपस्थित करने में लेखक का उद्देश्य यह रहा है कि सामान्य पाठक को उन विविध गतियों का संक्षिप्त किन्तु पूर्ण बोध हो जावे जिनके द्वारा सिक्खमत धीरे धीरे एक धार्मिक सम्प्रदाय से बदलकर एक राजनैतिक संघ के रूप में परिवर्तित हो गया। यह पुस्तक न सिक्खों का इतिहास होने का मिथ्याभियोग करती है और न सिक्खमत की व्याख्या होनेका इस पुस्तक में केवल उन विविध अवस्थाओं तथा परिवर्तनों का संक्षिप्त वृतान्त दिया गया है जिनमें से कि पंजाब में प्रधान राज्यसत्ता लाभ करने से पूर्व सिक्खों को होकर निकलना पड़ा। लेखक ने एक विपक्षी छिद्रान्वेषी के भाव से इस निबन्ध की रचना नहीं की और यद्यपि वह अपने बालकपन से गुरुओं का एक परम प्रशंसक रहा है तथा जीवन भर सिक्खमत के अनेक ग्रन्थों का अध्ययन करता रहा है तथापि उसने सिक्खमत के एक भक्त अथवा उपासक रूप से भी इस पुस्तक को नहीं रचा। उसने निर्पक्ष भाव से अपने सिक्खों के प्रारम्भिक इतिहास के दीर्घकालिक तथा अवहित अध्ययन*के परिणामों को सर्वसाधारण के सन्मुख उपस्थित करने का प्रयत्न किया है। इस बात का निर्णय करना कि लेखक को अपने इस प्रयत्न में कहां तक सफलता प्राप्त हुई है पाठकोंका कार्य है। इस पुस्तक का विषय स्वभाव से ही कुछ ऐसा है कि इस में अपूर्व कल्पनाशक्ति का अधिक परिचय नहीं दिया

---

* लेखक ने सिक्ख इतिहास से सम्बन्ध रखने वाली प्रत्येक पढ़ने योग्य पुस्तक अथवा हस्तलिप को जो उसे आक्सफ़ोर्ड के बोडलिएन पुस्तकालय तथा लण्डन के इण्डिया आफ़िस ब्रिटिश म्यूज़ियम और रायल एशियाटिक सोसाइटी के पुस्तकालयों में मिलसकी पढ़डालीं।

जा सकता तथापि लेखक इस बात की आशा करनेका साहस करता है कि उसे अपने सामने की उपस्थित सामग्री को एक अपूर्व ढंग से वर्णन करने में कुछ दर्जे तक सफलता प्राप्त हुई है और इन पृष्ठों को एकवार पढ़ चुकने के पश्चात् पाठक का उन शक्तियों का बहुत कुछ स्पष्ट तथा ठीक २ ज्ञान होजायेगा जिन्होंने कि सिक्खमत की रचना में इतना प्रबल परिवर्तन उत्पन्न कर दिया। लेखक ने न प्रतिवाद करने की चेष्टा की है और न प्रचार करने की और न उत्तेजित तथा उद्दीप्त करने की ही वरन् उसने केवल शिक्षा देने तथा समाधान करने का प्रयत्न किया है।

परिवर्तन की गति सन् १७६८ ई० तक अर्थात् सिक्खों के लाहौर हस्तगत कर लेने के समय तक सम्पूर्ण हो चुकी थी और इस निबन्ध को उस स्थान पर ही समाप्त किया जा सकता था। किन्तु लेखक का विचार है कि अपनी सिक्ख इतिहास की दूसरी पुस्तक को महाराजा रणजीतसिंह के उत्थान के समय से आरम्भ करें इस लिये उसने सिक्खों के लाहौर हस्तगत कर लेने तथा रणजीतसिंह के सिंहासन पर आरूढ़ होने के बीच के विवर की पूर्ति के लिये यह उचित समझा कि इस पुस्तकमें ही उन मिसलों का संक्षिप्त वृत्तान्त देदेते जो उस बीच के समय में पंजाब के विविध भागों पर साथ साथ राज्य कर रही थीं।

सामान्य पाठक को सिक्खों के धर्मग्रन्थों के विषयों तथा सिक्खमत के धार्मिक तथा सामाजिक स्वरूप का कुछ बोध करादेने के उद्देश्य से इस पुस्तक के साथ तीन परिशिष्ट भी जोड़ दिये गये हैं।

९ फरवरी १९१२ गोकुलचन्द नारङ्ग

अध्याय १

आध्यात्मिक निस्तार

श्री गुरूनानकजी का उद्देश्य

(१४६६—१५३८)

प्रायः यह कहा जाता है कि गुरुनानकजी का स्थापन किया हुआ सिक्खमत आरम्भ में केवल एक निरुपद्रव शिष्यों का मत था और जिस समय तक कि गुरू की पदवी गुरू गोविन्दसिंह जी को प्राप्त नहीं हुई उस समय तक उस मत का यही आदिम स्वरूप बना रहा। यह भी कहा जाता है कि गुरु गोविन्द सिंह जी एक यशस्कामी मनुष्य थे और उन्होंने ही इस प्रशान्त भक्तों की समाज को बदल कर उसे धर्मोन्मत्त योधाओं का एक समूह बना दिया।

यद्यपि इस बात की सत्यता में कोई सन्देह नहीं होसकता कि सिक्खों की राजनैतिक आकांक्षाओं ने दशवें गुरू के नेतृत्व में ही अधिक स्पष्ट रूप धारण किया तथापि यदि सिक्खों के इतिहास को ध्यान पूर्वक पढ़ाजावे तो उससे इस बात का स्पष्ट पता लगता है कि सिक्खों के धार्मिक सम्प्रदाय से राजनैतिक सम्प्रदाय में परिवर्तन होना गुरू गोविन्द सिंहजी के समय से अति पूर्व ही आरम्भ होचुका था। वास्तव में स्वयम्

गुरू गोविन्द सिंह तथा उनका कार्य्य दोनों उस विस्तारक्रम के प्राकृतिक उत्तर फल थे जोकि सिक्खमत के स्थापन के समय से ही बराबर चला आता था। वह फ़सल जोकि गुरू गोविन्द सिंह के समय में पक कर तय्यार हुई गुरू नानकजी की बोई हुई थी तथा गुरू नानक जी के उत्तराधिकारियोंने उसे सींचा था। निस्सन्देह वह खड्ग जिसने ख़ालसा के मार्ग को साफ़ कर उन्हें विजय का भागी बनाया गुरू गोविन्दसिंह की गढ़ी हुई थी किन्तु उस खड्ग के लिये सारलोह गुरू नानकजी का दिया हुआ था और गुरू नानक जी ने मानों हिन्दुओं के कच्चे लोहे को पिघलाकर तथा उस धातु से जनसमूह की उदासीनता और अंधविश्वासों तथा पुरोहितों के कपट दम्भ रूपी मल को जलाकर उस शुद्ध सारलोह को तय्यार किया था।

जर्मन देश के सम्राट ने एक समय कहा था कि "समस्त धार्मिक चेष्टाएं वास्तव में राजनैतिक चेष्टाएं ही होती हैं"। यह बात निस्सन्देह इस हद तक सच है कि धर्म द्वारा ही मनुष्य में समस्त सार्वजनक चेष्टाओं के लिये उत्साह उत्पन्न होता है। बौद्धमत जैसे क्षमा, शील, और दयालु मत ने भी भारत वर्ष में एक इतना बड़ा गौरवान्वित तथा संगठित साम्राज्य स्थापन कर दिखाया जितना कि इस देश के बृटिश साम्राज्य स्थापन होने से पूर्व कभी भी देखने में न आया था। अशिक्षित अरब निवासी मुहम्मदसाहब के उपदेशों द्वारा उत्तेजित हो समस्त पश्चिमी दुनियां के गुरु बन गए और उनकी विजय पताका एक ओर बंगाल तक तथा दूसरी ओर स्पेन तक लहराने लगी। योरोप अपनी वर्तमान सभ्यता को केवल तब ही प्राप्त कर सका जबकि लूथर ने योरोप निवासियों की बुद्धि को स्वतंत्र किया, उनके धर्म का सशोधन किया,

और उन बेड़ियों को तोड़ कर जिन्होंने कि योरोप निवासियों को पोपों के सिंहासन के साथ बांध रक्खा था उन्हें गुलामी की नीच अवस्था से बाहर निकाल कर स्वतंत्रता, आत्मगौरव तथा आत्म प्रतिपादन की उच्च पदवी तक पहुंचाया। प्योरिटन-मत (Puritanism) ने इंगलिस्तान में वास्तविक स्वतंत्रता स्थापन की। इसी मत ने नई दुनियां अर्थात् अमरीका की नींव रक्खी और यही मत था जिसने कि अमरीकावालों से स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये युद्ध करवाया तथा उन्हें विजय दिलवाई। हर प्रकार की राजनैतिक उन्नति के लिये, उच्च आकांक्षाओं, उत्साह भरे भावों "दृढ़ संकल्प तथा निर्भीक आत्मा" और व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक जीवन की पवित्रता तथा शुद्धता इन समस्त गुणों का होना अत्यन्त आवश्यक है, और जिस किसी सार्वजनिक चेष्टा द्वारा किसी राष्ट्र के लोगों में ये सब गुण उत्पन्न होते तथा बढ़ते हों वह चेष्टा उस राष्ट्र के लोगों को राजनैतिक प्रयत्न करने तथा राजनैतिक गौरव के पथ पर आगे को पग बढ़ाने के योग्य बनाती है।

इन गुणों का संचार करने के लिये प्रोत्साहन या तो साहित्य द्वारा प्राप्त होता है अथवा किसी राष्ट्र के लोगों को निज राष्ट्र की असामान्य स्थिति द्वारा प्राप्त होता है। उदाहरण के लिये यदि कोई राष्ट्र अन्याय तथा प्रजापीड़न के भार से दबा हुआ हो तो उस राष्ट्र के लोगों के हृदयों में उस अन्याय तथा प्रजापीड़न की ओर जो स्वाभाविक घृणा उत्पन्न होती है वह घृणा इन लोगों में इस प्रकार के गुण संचार करने का उत्साह उत्पन्न करदेती है। तथापि सामान्य रीति से ये गुण मनुष्यों में धर्म द्वारा ही अधिक उत्पन्न होते रहे हैं। संसार के अन्य किसी भी देश में राजनैतिक आन्दोलनों का धर्म के साथ

इतना घनिष्ट सम्बन्ध नहीं रहा है जितना कि भारतवर्ष में। सन् १८५० ई० का गदर अधिकतर हिन्दू तथा मुसलान सिपाहियों के उस धार्मिक क्रोध का ही परिणाम था जोकि चर्बीवाली कारतूसों के कारण उत्पन्न होगया था। वहाबियों की वह चेष्टा जिसके द्वारा एक समय समस्त भारत के एक घोर सीमा सम्बन्धी युद्ध में फंस जाने का भय था एक धार्मिक चेष्टा ही बतलाई जाती थी, जिसका उद्देश्य कि काफ़िरों के विरुद्ध धर्म युद्ध करना था। कूकों के विप्लव जिनके परिणामरूप भाई रामसिंह को देश निकाला मिला तथा उनके बहुत से देश अनुयायियों को तोप से उड़ा दिया गया मुख्यकर धर्मोन्माद के ही उत्तरफल थे। और इस सब के अन्त में किन्तु उतने ही बल के साथ बंगाल का नूतन विक्षोभ भी इसी सत्यता का प्रकाश करता है। इस नाटक के समस्त अभिनेता धार्मिक पुरुष ही हुए हैं और वे मनुष्य भी जोकि एक हाथ में बम्ब का गोला लेजाते थे दूसरे हाथ में भगवद्गीता रखते थे। यदि हम इससे अधिक पूर्व के भारतवर्ष की ओर दृष्टि डालें तो भी यही दृश्य हमारे नेत्रों के सन्मुख आता है। शिवाजी ने कोई नया मत स्थापन नहीं किया। तथापि उसे निज कार्य के लिये उत्तेजना *गुरु रामदास द्वारा प्राप्त हुई थी और गुरु रामदास को "महाराष्ट्र देश का गुरुनानक" कहना ही उचित प्रतीत होता है। शिवाजी ने लोगों के धर्म भावों को भड़काया तथा अपने आपको हिन्दू धर्म का रक्षक और गऊ ब्राह्मण का प्रतिपालक बतलाया। इन्हीं उपायों द्वारा शिवाजी

*समस्त महाराष्ट्र देश में गुरु रामदास जी का आदर सहित स्मरण किया जाता है और सितारा के समीप पराली में इनकी समाधि पर हमारों यात्री एकत्रित होते हैं।

को एक साम्राज्य स्थापन करने में सफलता प्राप्त हुई। भारत वर्ष के जनसमूह में राजनैतिक ज्ञान का अभाव है और पौर-जीवन के अधिकारों तथा जिम्मेवारियों का इनको कभी बोध तक नहीं हुआ। अति प्राचीन समय से ये लोग दृढ़ धार्मिक पुरुष ही रहे हैं और इसलिये इनके समस्त महान कार्यारम्भों तथा कार्यसिद्धियों में धर्म ही प्रधान प्रेरक शक्ति रहा है।

प्रतीत होता है कि गुरु नानक ने अपने समय की हिन्दू जाति के रोगों का पूरी तरह निर्णय कर लिया था और इस बात का पता लगा लिया था कि केवल धार्मिक पुनरुद्धार ही एक मात्र चिकित्सा थी जिसके द्वारा उस जाति को आसन्न विनाश से बचाया जा सकता था। यदि उनकी प्रवृत्ति राजनीति की ओर भी होती तो भी राजनैतिक कार्य्यसिद्धि के जो दो मार्ग हैं उनमें से किसी मार्ग से चलकर भी उन्हें हिन्दुओं की दशा सुधारने में सफलता प्राप्त न होती। व्यवस्था अनुसार आन्दोलन करना अवश्य व्यर्थ होता क्योंकि उस समय भारतवर्ष में किसी प्रकार की भी राज्य व्यवस्था न थी। साथ ही स्वेच्छाचारी शासकों के खुल्लम खुल्ला विरोध करने का प्रश्न ही न उठ सकता था क्योंकि उस समय की हिन्दू-जाति में विरोध करने की शक्ति न थी। वास्तव में उस समय पंजाब के हिन्दुओं की अवस्था अत्यंत शोचनीय थी। भारत का यह प्रान्त सब प्रान्तों से पहले पराजित हो चुका था। यह देश मुसलमानों की दो प्रबल राजधानियां अर्थात देहली तथा काबुल के बीच में था। मुसलमानी राज्य यहां अत्यंत दृढ़ता के साथ जमा हुआ था। अन्य मतावलंबन की तरंग यहां बड़े वेग से चल चुकी थी और पंजाब में ही सब से अधिक संख्या ऐसे लोगों की थी जिन्होंने अपना धर्म छोड़ कर इसलाम मत

स्वीकार कर लिया था। हिन्दू मन्दिरों को गिराकर बराबर कर दिया गया था और हिन्दू पाठशालाओं तथा विद्यालयों की जगह मसजिदें खड़ी कर दी गई थीं। अर्थात हिन्दू गौरव के समस्त चिन्ह मिटा दिये गये थे। राजा अनंगपाल के परास्त होने के समय से गुरू नानकजी की उत्पत्ति के समय तक साढ़े चार शताब्दियों के इतिहास में पञ्जाब के किसी भी हिन्दू का नाम नहीं आता। जो लोग कि मतावलंबन से किसी प्रकार बच गये थे उनसे भी प्रायः वे समस्त पदार्थ छीने जा चुके थे जो कि मनुष्य जीवन के मान तथा गौरव को बनाए रखते हैं और वास्तविक धर्म को अंधविश्वासी तथा कपट से पृथक करते हैं।

हिन्दू धर्म ने जो जो नयी बातें कि बौद्ध तथा जैन मतों से ग्रहण करली थीं वे सब उस धर्म से कभी भी पृथक नहीं हो सकती थीं। इसलाम के आगमनसे पूर्वही यह धर्म मूर्तिपूजा को अंगीकार कर चुका था, जैन मत से इस धर्म ने अवतारवाद को ग्रहण कर लिया था। परन्तु इसलाम ने हिन्दू धर्म पर वेग के साथ धावा किया तथा उस धावे ने हिन्दूजाति के बीच ऐसी खलबली डाल दी कि पुनर्विचार अथवा संशोधन करने के समस्त अवसर हाथ से जाते रहे। समस्त जाति में आत्मरक्षा का विचार ही मुख्य तथा सर्वग्राही दिखाई देता था चाहे वह रक्षा किसी भी रूप में की जाय तथा उसे सिद्ध करने में कुछ भी खो देना पड़े। प्रतीत होता था कि यह संक्षोभ अपने सन्मुख अन्य समस्त विचारों को उड़ा लेजावेगा। यह बात स्पष्ट है कि इस अवसर पर हिन्दुओं ने गेहूं तथा भूसी के परिच्छेद द्वारा दोनों को खो बैठने की अपेक्षा इन दोनों ही की रक्षा करना अधिक उचित समझा।

ये समस्त लोग जिन्हें अपने पूर्वजों द्वारा ही क्रमागत उच्च पदवियां तथा अधिकार प्राप्त हो जाते हैं सदैव आलसी तथा निर्जीव होजाया करते हैं। इस ही प्रकार हिन्दू धर्म के पैतृक रक्षक अर्थात् पुरोहित लोग भी आलसी तथा निर्जीव हो गये थे। ये लोग समस्त हिन्दुओं को एक मत कर समयुक्त प्रतिरोध द्वारा उस इसलामी आक्रमण की तरंगों को पीछे न हटा सके। इन लोगों में चार्लस मार्टल अथवा पीटर दी हरमिट (योरोप के दो ईसाई पुरोहित जिन्होंने मुसलमानों के साथ धर्म के नाम पर युद्ध किये) के समान खुले मैदान में युद्ध करने की शक्ति न थी। इसलिये ही उन्होंने अपने आपको जाति भेद के अछेद्य दुर्ग में बन्द कर लिया। उन्होंने केवल विशेष अधिकारियों को ही दुर्ग के भीतर आने दिया तथा शेष समस्त जनसमूह को यथाशक्ति अपनी अपनी रक्षा करने के लिये छोड़ दिया।*

इस दुर्ग के भीतर पुरोहितों ने स्वयं अधिष्ठाता की पदवी ली और जिस किसी ने इनकी व्यवस्था या इनके नियमों का नाम मात्र भी उल्लघन किया उसको कठोर दण्ड दिया गया अथवा प्रायः दुर्ग से बाहर निकाल दिया गया।†

* परिणाम यह हुआ कि जब कि हिन्दू द्विजों में से अधिकांश बचा लिये गये, जो शेष रहे उनमें से अधिकांश इसलाम के धर्मप्रचार रूपी टरराइ की सहज ही भेंट होगये॥

† यह बात प्रसिद्ध है कि अब भी जहां कहीं स्थिति पालन अथवा सनातनत्व का पद प्रबल है वहां जो लोग बिरादरीके नियमों का नाम मात्र भी उल्लंघन करते हैं वे सदैव के लिये जाति बाहर कर दिये जाते हैं जिसका परिणाम प्रायः यह होता है कि उलंघक को इसलाम अथवा ईसाई मत ग्रहण करना पड़ता है॥

गुरु नानक जी की उत्पत्ति के समय सार्वजनिक अथवा लौकिक धर्म खाने पीने की विचित्र विधियों, स्नान करने और तिलक लगाने के विचित्र नियमों तथा अन्य ऐसी ऐसीही यान्त्रिक रीतियों के पालन करने तक परिमित था। जो हिन्दू-धर्म उस समय जनसमूह में प्रचलित था उसमें निम्न लिखित बातों के अतिरिक्त और प्रायः कुछ भी न था—मूर्त्ति पूजन उन स्थानों में जहां कि मूर्त्तियां रहने दी जाती थीं; गङ्गा तथा अन्य तीर्थों की यात्रा जब कभी कि यात्रा करने की आज्ञा मिल जाती थी, विवाह तथा अन्त्येष्ठि आदिक संस्कारों का पालन, ब्राह्मणों की आज्ञाओं का पालन तथा उन्हें बड़े बड़े दान देना।

केवल पुरोहितों ही को धर्मशास्त्रों के पढ़ने का अधिकार था और केवल वे ही हिन्दू अध्यात्म के उच्च सिद्धान्तों तथा उनसे उत्पन्न होने वाली शान्ति को लाभकर सकते थे। किन्तु वे लोग भी अपनी मर्यादा से गिरकर केवल सत्वहीन Scribes तथा Pharisees के समान रह गये थे। अभी तक उनमें से कुछ को शास्त्र कठाग्र थे परन्तु अपने क्रियात्मक जीवन में भी उन्हीं शास्त्रों की आज्ञाओं के सर्वथा विरुद्ध आचरण करते थे। शास्त्रानुसार उनको अपनी गौओं के सच्चे गोपाल बनना चाहिये था किन्तु वे गोपालन का नाममात्र कार्य्य पूरा करते थे अर्थात् अपना गौओं को दुहलेना तथा हिन्दुओं की आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के विषय में केवल यह ही कहा जा सकता है कि—"भूखी भेड़ें (गौएं) अपने रक्षकों का मुँह ताकती थीं परन्तु उन्हें चारा नहीं दिया जाता था!"

वास्तविक धर्म के स्रोत निर्थक रीतों, अवनति मूलक

अंधविश्वासों, पुरोहितों की स्वार्थ बुद्धि तथा जनसमूह की उदासीनता रूपी घासपात से बन्द कर दिये गये थे। सच्चे धर्म का स्थान केवल कर्मकाण्ड के नियमों ने ले रक्खा था और हिन्दूधर्म का उच्च आध्यात्मिक स्वरूप मतमतान्तरों के आडम्बरी परिच्छद के नीचे दब गया था। शताब्दियों के आक्रमणों तथा विदेशियों के कुशासन और प्रजापीड़न ने लोगों के हृदयों को सर्वथा मुरझा रक्खा था। और धार्मिक परतन्त्रता तथा निश्चलता ने लोगों की आचारभ्रष्टता तथा उत्साहहीनता को भयंकर रूप में बढ़ा रक्खा था।

ठीक यही दशा थी जिसमें कि गुरू नानक जी ने पंजाब के हिन्दुओं को पड़ा हुआ पाया। बालकपन से ही उनके हृदय में उस धर्मसम्बन्धी छल कपट की ओर क्रोध उत्पन्न होगया था जो कि उस समय समस्त देश में फैला हुआ था। गुरू नानक जी ने तुरन्त यह दृढ संकल्प करलिया कि 'मैं अपना समस्त जीवन निजराष्ट्र की सेवा में व्यतीत करूँगा और उपदेश द्वारा तथा निज आदर्श जीवन द्वारा, हिन्दूजाति को फिर एक बार सरलता तथा सत्यता के धर्म पर लाऊँगा तथा पाषाण (पत्थरों) की पूजा से हटाकर उनमें प्राचीन पूर्वजों की सी शुद्ध उपासना को प्रचलित करूँगा,' तथा उन्हें पूर्व के समान एक प्रबल राष्ट्र हो अपने पावों खड़े होने के योग्य बनाऊँगा"।

गुरूनानक जी से पूर्वभी अनेक हिन्दू समाज संशोधक हिन्दुओं की पूजाविधि तथा उनके धर्म विश्वासों को संशुद्ध करने के यत्न कर चुके थे परन्तु निम्न लिखित कारणों से वे लोग जनसमूह के ऊपर कोई विशेष प्रभाव न डालसके:—

सब से पहिला कारण यह था कि गुरुनानकजी से पूर्व जो

जो संशोधन की चेष्टाएं की गयी थीं उनमें से अधिकांश सार्वजनिक होने के स्थान पर अत्यन्त साम्प्रदायिक अर्थात् संकीर्ण थीं और बहुधा इन चेष्टाओं ने हिन्दूजाति की अस्त-व्यस्त अवस्था को और भी अधिक विक्षिप्त करदिया। उदाहरण के लिये रामानन्द, जिसकी चेष्टा द्वारा काशी में हिन्दुओं के पुनरुद्धार को एक प्रबल उत्तेजना मिली, अवतार के सिद्धान्त को न छोड़ सका और गुरुनानकजी के समान एक अजन्मा तथा अमर परमात्मा की उपासना का उपदेश देने के स्थान पर उसने केवल राम की पूजा का उपदेश देकर उपस्थित सम्प्रदायों अथवा मतों की संख्या में एक और नये सम्प्रदाय की वृद्धि करदी। रामानन्द ने अपने अनुयायियों को बाहिरी कर्मकाण्ड के बन्धनों से भी मुक्त न किया। इन लोगों को एक विचित्र प्रकार के वस्त्र पहनने पड़ते थे, विशेष प्रकार की माला रखनी पड़ती थी और समस्त अन्यमतावलम्बियों से अपना खान पान पृथक रखना पड़ता था।

गुरुगोरखनाथने भी योग* का गूढ़ विद्या के उपदेश द्वारा कर्मकाण्ड तथा बाहिरी संस्कार रूपी घनपटल को तोड़ने का प्रयत्न किया। परन्तु वे भी अपने आप को सांप्रदायिकता के संकुचित बना देने वाले प्रभावों से न बच सके। उनका मत स्वभाव से ही ऐसा था कि उस मत का एक सार्वजनिक मत बनजाना असम्भव था। दूसरी ओर योगियों

---

* यह ठीक नहीं कहा जा सकता कि गोरखनाथ किस समय में हुआ था। परन्तु कनिंघम कहता है कि वह ईसा की १४वीं शताब्दि में जीवित था। बार्थ (Barth) तथा होपकिन्स (Hopkins) उसे बौद्ध मत का बताते हैं। उसके अनुयायी समस्त भारत में पाये जाते हैं। पञ्जाब में उनका एक बड़ा मठ जेहलम ज़िले में तिल्ला नामक स्थान पर है।

की अत्युच्च पदवी तथा उनकी अलौकिक विचार के आचार्यों की महती प्रतिष्ठा तथा वे विस्मयावह उपकरण जो कि गुरु गोरखनाथ ने दूसरे मतों के चिन्हों की जगह बना रक्खे थे, इन सब बातों ने मिलकर कपट धर्मियों के लिये उनकी, सम्प्रदाय में सम्मिलित होजाना सहज तथा चित्ताकर्षक बना दिया। परिणाम यह हुआ कि हिन्दू मतमतान्तरों की संख्या में एक नया मत और जोड दिया गया। और सैकडों महन्त भगवे वस्त्र पहरे कानों में कांच के बड़े बड़े बाले लटकाये लम्बी तथा पेचदार तुरइयें अपनी अपनी बगलों में दबाये और नोकीले तथा चमकीले चिमटे हाथों में लिये तीर्थस्थानों तथा सड़कों पर यात्रियों को कष्ट देने लगे। किन्तु राष्ट्र के साधारण जनसमूह पर उनकी तुरइयों की ध्वनि का इतना ही कम प्रभाव पडता था जितनी कि उनके शरीर पर की भस्म तथा उनके कानों के बाले उनके अपने जीवन को पवित्र बना सकते थे। और जितनी धार्मिक चेष्टाएं गुरु नानक पहिले की गयीं उन सब के विषय में भी न्यूनाधिक यही सब जी से बातें कही जा सकती हैं। वे समस्त चेष्टाएं थोड़ी वा बहुत साम्प्रदायिक, कर्मकाण्ड प्रधान; कृपणधी तथा पक्षपात पूर्ण थीं।

दूसरी बात जिसके कारण कि ये चेष्टाएं राष्ट्रीय उन्नति में पूरी पूरी सहायता न देसकीं यह थी कि इनमें से प्रायः प्रत्येक इस लोक को छोड़कर परलोक की ओर ही विशेष ध्यान दिलाती थी।

वल्लभाचार्य* के अतिरिक्त अन्य प्रत्येक नेता संसार के

* वल्लभाचार्य एक ब्राह्मण था जिसने ईसा की १६वीं शताब्दि के आरम्भ में वैष्णवों की एक सम्प्रदाय स्थापन की। "उसने वैराग्य के

त्याग को ही सब से उच्च धार्मिकता बतलाता रहा है। रामानन्द वैरागियों से जैसा कि उनके नाम से प्रकट होता है, यह आशा की जाती थी कि वे वैराग्य अथवा त्याग की मूर्ति हैं। गुरु गोरखनाथ के योगियों को सदा के लिये पूर्ण ब्रह्मचारी रहने की कठोर आज्ञा थी। कबीर स्वयं एक गृहस्थ था किन्तु संसार औ समस्त सांसारिक पदार्थों को वास्तविक घृणा की दृष्टि से देखने में वह सबसे बढ़ चढ़कर था। उसका एक वचन है:—

जिसका अर्थ है:—'कबीर के खोटे भाग्य हैं कि उसके कमाल जैसा पुत्र उत्पन्न हुआ है जो घर में परमात्मा के नाम के बदले धन ही लावेगा।'

औरों के विपरीत कबीर सांप्रदायिकता अथवा मत भेद से रहित था, परन्तु प्रथम तो उपदेश परलोक की ओर ही ले जाते थे। दूसरे उसका जन्म एक नीच जाति में हुआ था और इससे भी बढ़कर वह बनारस जैसे नगर में उत्पन्न हुआ था जोकि जातिभेद तथा सनातन धर्म्म का सब से प्रबल दुर्ग है। इनसब कारणोंसे उसकी चेष्टा कुछ भी अधिक सफलता प्राप्त न कर सकी। रामानन्द, गोरखनाथ, कबीर तथा चैतन्य इन सब के हृदयों में यह बात जमी हुई थी कि ऐहिक जीवन सर्वथा मिथ्या है। "इन सबका मुख्य उद्देश्य पुरोहितों के कपट दंभ तथा मूर्त्ति पूजन और बहुत से देवताओं की पूजा रूपी जड़ता से लोगों को स्वतंत्र करना था। इन्होंने भावी राष्ट्रों की नींव रखने के स्थान पर खण्डन की विधियों को

सिद्धान्तों का धुरलम खुल्ला खण्डन करने का साहस करने में बड़े भारी बुद्धिबल तथा वीरता का प्रमाण दिया।" Religions of India by Barth P. 231.

पक्का किया और उनकी स्थापित कीहुई सम्प्रदायें आज तक वैसी ही हैं जैसी कि वे उन्हें छोड़ गये थे* ।"

समाज संशोधन के सत्यसिद्धान्तों का पता लगाना तथा उस नींव को रखना जिस नींव पर कि गुरु गोविन्दसिंहजी ने एक नये राष्ट्र को खड़ा किया और "इस सिद्धान्त को कि छोटे से छोटे तथा बड़े से बड़े समस्त मनुष्य जाति, धर्म, राजनैतिक अधिकारों तथा पारलौकिक आशाओं में एक तुल्य हैं क्रिया द्वारा सिद्ध कर दिखाया।"† यह समस्त कार्य गुरु नानक जी ही के लिये छूटा हुआ था।

एक सत्वहीन, आचारभ्रष्ट, मूढ़विश्वासी तथा पुरोहितों से दबी हुई जाति को जगाने के महान कार्य को सिद्ध करने के लिये गुरु नानकजी में वे गुण उपस्थित न थे जिनकी कि आजकल के समाज संशोधकों में खोज की जाती है। गुरु नानक जी को पाठशाला भेजा गया था परन्तु शिक्षा के साधारण अर्थों में उन्होंने कुछ भी शिक्षा प्राप्त नहीं की। कनिंघम के अनुसार "इस बात का विश्वास कर लेना युक्त प्रतीत होता है कि गुरू नानक जी को युवावस्था में ही हिन्दुओं तथा मुसलमानों दोनों के प्रचलित मतों का अच्छा बोध होगया था और उन्होंने ब्राह्मणों के शास्त्रों तथा कुरान दोनों का एक साधारण ज्ञान

---

* Cunningham "History of Sikhs" p. 36.
इसके अतिरिक्त यह भी स्मरण रखना चाहिये कि पंजाब में कोई बड़ा समाज संशोधक उत्पन्न नहीं हुआ था और दूसरे प्रान्तों के संशोधकों की चेष्टाएं न्यूनाधिक भारतवर्ष के दूसरे प्रान्तों ही तक परिमित रहीं।

† Cunningham p. 36.

थीं प्राप्त कर लिया था* ॥ परन्तु गुरु नानक जी की यह योग्यता जिसके बल उन्होंने अपनी जाति का उद्धार किया प्रान्तों के उस थोड़े से ज्ञान द्वारा उत्पन्न हुई थी जो कि उन्होंने किसी पाठशाला अथवा मसजिद में प्राप्त किया हो । वे जन्म से ही महान थे और यद्यपि वे प्रायः अशिक्षित समान हो थे तथापि हज़रत मोहम्मद के समान वे स्वभाव से ही अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धि वाले तथा प्रबल विवेकी थे । उन्होंने कोई नयी शिक्षा नहीं

---

* सिक्खों का इतिहास पृ० १७। यह ज्ञान पुस्तकों के यथाविधि पाठ द्वारा प्राप्त किया हुआ नहीं हो सकता था क्योंकि जिस प्रकार दसवें गुरु के पन्थ में विविध मतों की धर्म्म पुस्तकों के विषयों का वर्णन मिलता है उस प्रकार आदि ग्रन्थ में नहीं मिलता । इसके अतिरिक्त गुरुनानक ने द्वारा मतों की जो समालोचनाएं की हैं वे पण्डितोचित नहीं हैं। क्योंकि गुरुनानक ने उस समय के मतों के सिद्धान्तों को छोड़कर केवल उनके कर्मकांड अथवा संस्कारों पर ही आक्षेप किए हैं । कनिंघम एक फ़ारसी हस्तलिपि के प्रमाण पर लिखता है कि गुरुनानक का प्रथम गुरु एक मुसलमान था । प्रतीत होता है कि मुसलमान लेखक इस प्रकार के उल्लेख द्वारा यह सिद्ध किया चाहता है कि गुरुनानक को पीछे से जो महत्व प्राप्त हुआ वह इसलाम ही की शिक्षा का प्रताप था । गुरुनानक का पिता कालू एक ग्राम का पटवारी था इसलिये उसकी यह स्वाभाविक आकांक्षा रही होगी कि उसका पुत्र वह भाषा सीखे जिसके द्वारा कि पिता की मृत्यु पर वह उसकी पदवी को प्राप्त कर सके । यह भाषा वास्तव में हिन्दी थी क्योंकि सरकारी दफ़्तरों में फ़ारसी का प्रचार अकबर बादशाह के प्रसिद्ध मंत्री टोडरमल के समय से पूर्व न हुआ था "पंथ प्रकाश" का लेखक लिखता है कि सात वर्ष की आयु में गुरुनानक पाठशाला में गोपाल पण्डित से हिन्दी गणित सीखने गये थे और नौ वर्ष की आयु में उन्होंने संस्कृत सीखनी आरम्भ करदी थी ।

दी तथापि उनके उपदेशों या उनकी अद्भुत कल्पना-शक्ति का ठप्पा लगा होता था और उन उपदेशों से एक महान' आचार्य की विलक्षण बुद्धिमत्ता का परिचय मिलता था। अपने पक्ष का मण्डन करने तथा विपक्षियों के पक्ष का खण्डन करने के लिये उन्होंने कोई लम्बे चौड़े लेख अथवा निबन्ध नहीं रचे न कभी उन्होंने मनु, व्यास, कुरान, अथवा हदीस के हवाले दिये परन्तु जब कभी वे किसी विषय पर वाद विवाद करते थे तो उनकी क्रियात्मक बुद्धि तथा प्रबल विवेक शक्ति उनके विपक्षियों के तर्क तथा अध्यात्म पर विजय प्राप्तकर लेती थीं। सुलतानपुर का नवाब, *

. 'सैर-उल- मुताख़रिन' का लेखक वर्णन करता है कि गुरुनानक को मोहम्मद हसन नामक एक मनुष्य ने शिक्षा दी थी जो कि उसके पिता का पड़ौसी था और अलन्तान होने के कारण गुरुनानक से बड़ा प्रेम रखता था

इस बात की सभवता को स्वीकार करते हुए भी कि गुरुनानक ने। गोपाल तथा मोहम्मद हसन दोनों के चरणों में बैठकर शिक्षा पायी होगी मैं यह विश्वास नहीं कर सकता कि गुरुनानक ने संस्कृत अथवा फ़ारसी किसी में भी कुछ योग्यता प्राप्त करली हो। मुझे विश्वास है कि मेरे इस कथन का प्रमाण गुरुनानक के हिन्दी लेखों तथा उनके एक दो फ़ारसी पदों से मिल सकता है।

*नवाब ने एक दिन गुरुनानक को बुलाकर कहा कि मेरे साथ नमाज़ पढ़ो। गुरुनानक राज़ी होगये परन्तु जब नवाब नमाज पढने लगा तो गुरुनानक एक ओर खड़े रहे। जब उनसे पूछा गया कि तुमने साथ में नमाज़ क्यों नहीं पढी तो उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया कि "मैं तुम्हारा साथ क्योंकर दे सकता था जब कि तुम काबुल में घोड़े ख़रीदते फिर रहेथे और क़ाज़ी अन्त तक इस ही सोच में था कि कहीं मेरा बछेड़ा कुएँ मेंन जा पड़ा हो।" यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि नवाब और क़ाज़ी दोनों गुरुनानक के इस स्पष्ट तथा निर्भीक उत्तर को सुनकर चुप होगये।

मक्के के क़ाज़ी,* हरिद्वार के पण्डित† तथा कुरुक्षेत्र के पण्डे‡ सब के सब गुरु नानक की पौरुषी वीरता और उसकी निर्भय तथा क्रियात्मक युक्तियों के सन्मुख शिर झुकाते थे।

---

*गुरुनानक की समस्त जीवनियों में यह लिखा है कि वे एक बार मक्के गये और वहां काबे की ओर पैर करके लेट गये। जब क़ाज़ीने उन्हें बुरा भला कहा तो उन्होंने पूछा कि मैंने क्या अपराध किया है। क़ाज़ीने उत्तर दिया कि, । "तुम ख़ुदा के घर की ओर पैर करके सो रहे हो और पूछते हो कि मैंने क्या अपराध किया है ! " गुरु नानक ने कहा। "क्षमा कीजिये, आप मेरे पैर उस ओर कर दें जिस ओर आप समझते हों कि ख़ुदा का घर नहीं है।" Sohan Lal Ms. Or. 1817 से पता लगता है कि यह घटना मदीने में हुई थी। हमें इस बात की अधिक खोज लगाने से कुछ लाभ नहीं क्योंकि समय तथा स्थान का प्रश्न हमारे प्रस्तुत मंतव्य के साथ अधिक सम्बन्ध नहीं रखता।

‡ एकबार गंगाजी में कुछ ब्राह्मणों को सूर्य को जल चढ़ाते देख गुरु नानक भी जलमें उतर गये और अपने हाथों से पश्चिम की ओर जल फेंकने लगे पंडितों ने उन्हें गँवार समझकर पूछा कि तू यह क्या मूर्खता कर रहा है ? गुरुनानकने उत्तर दिया कि—"करतारपुर (पंजाब)में मेरा एक छोटासा खेत है। मैं उसे पानी दे रहा हूँ।" पण्डित लोग बोले। कैसा मूर्ख है, क्या तू समझता है कि यह जल २०० मील पर तेरे खेत में पहुँच जावेगा? "गुरु नानक ने पलट कर उत्तर दिया। "यदि यह जल जो मैं अपने दोनों हाथों से फेंक रहा हूं २०० मील भी नहीं पहुंचेगा तो तुम कैसे आशा रखते हो कितुम्हारा एकहाथभर जल इतनी दूर सूर्य तक पहुंच जावेगा।

‡ एकबार सूर्यग्रहण के अवसर पर गुरुनानक कुरुक्षेत्र के मेले में गये। सनातनधर्मी हिन्दू············ग्रहण के समय पूर्ण उपास करते हैं और दान आदिकदेते हैं। गुरु नानक ने उस समय आग जलाकर भोजन पकाना आरम्भ कर दिया। यह देख पंडे उन पर टूट पड़े और गालियों तथा

गुरु नानक स्वभाव से ही विचारवान तथा बुद्धिमान थे। तथापि जीवन भर यात्रा करने तथा हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों के विद्वानों तथा सन्तों के साथ वाद विवाद करते रहने के कारण वे अत्यन्त बुद्धिमान और ज्ञानी होगये थे।

गुरु नानक के मुख्य मुख्य कार्य निम्न लिखित शब्दों में वर्णन किये जा सकते हैं।

(१) गुरु नानक अर्वाचीन समय का पहिला हिन्दू समाज संशोधक था जिसने हिन्दुओं के विचारों को पुराणों की बेड़ियों से पूर्णतया मुक्त करा देने का प्रयत्न किया। शताब्दि की भ्रान्ति के पीछे गुरुनानक ने ही हिन्दुओं को यह उपदेश दिया कि परमात्मा केवल एकही है जो जन्म और मरण के बन्धनों से रहित है। तथा वह ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों से बढ़कर है और राम और कृष्ण को पैदा करने वाला है।

(२) गुरुनानक ने हिन्दुओं की पूजन विधि का संशोधन किया और यह प्रगट किया कि केवल एक परमात्मा ही उपासना के योग्य है। और उसको मूर्तियां बनाकर तथा उन मूर्तियों का पूजन कर परमात्मा का तिरस्कार करना उचित नहीं हैं। परमात्मा के नाम का निरन्तर ध्यान करने तथा प्रत्येक स्थान और प्रत्येक काल में उसके अस्तित्व को समझने तथा अनुभव करने द्वारा केवल उसके निराकार रूप को पूजा करना ही उचित है।

भिखारों की बौछाड़ करने लगे। इस पर गुरु नानक ने उनको सारी बात समझादी और पूर्ण विश्वास करा दिया कि आकाशके उस उत्पात का इस पृथ्वी पर के मनुष्यों के कार्यों से कोई सम्बन्ध नहीं है।

(३) गुरुनानक ने यह प्रकाश किया कि सत्य समस्त यज्ञों तथा तीर्थ यात्राओं से बढ़कर है और परमात्मा की भक्ति समस्त कर्मकाण्डों तथा संस्कारों से श्रेष्ठतर है।

(४) गुरुनानक ने इस बात का उपदेश दिया कि केवल परमात्मा की भक्ति तथा उत्तम कार्यों द्वारा ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। ब्रह्मभोजों, गोदानों, वेदों अथवा कुरान के पाठ या केवल संध्या या नमाज द्वारा मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

(५) गुरुनानक ने बड़ी दृढ़ता के साथ इस बात का उपदेश दिया कि वे ब्राह्मण तथा मुल्ला लोग जिन्होंने धर्म को निज जीविका का साधन बना रक्खा है, सत्यमार्ग के वास्तविक प्रदर्शक नहीं हो सकते। वे लोग ऐसे ही हैं जैसे कि एक अंधा दूसरे अंधे को मार्ग दिखलाना चाहे। मुक्ति का मार्ग अथवा परमात्मा की भक्ति में अपने आपको लीन कर देने का मार्ग केवल वह सतगुरु ही दिखला सकता है जो कि स्वयं उस मार्ग पर चल चुका हो।

(६) गुरु नानक ने हिन्दू तथा मुसलमान दोनों जातियों के पुरोहितों पर प्रबल आक्षेप किये और यह उपदेश दिया कि परमात्मा की दृष्टि में मनुष्य मात्र एक तुल्य हैं। परमात्मा समस्त मनुष्यों का पिता है। समस्त मनुष्यों को आपस में एक दूसरे के साथ व्यवहार करने में भाइयों के समान न्याय तथा प्रेम के साथ ही वर्तना चाहिये।

(७) शताब्दियों की पराधीनता के पश्चात् गुरु नानक पहिला हिन्दू था जिसने कि निष्ठुर शासन तथा अन्याय* के विरुद्ध अपनी ध्वनि उठाई।

*गुरु नानक प्रायः मुसलमानों के बढ़कर धर्मोन्माद के विरुद्ध बड़ी दृढ़ता के साथ अपने विचार प्रकट किया करते थे और कष्टात्मक शब्दों

(८) गुरु नानक ने एक ओर स्वार्थपरायणता लोभ तथा सामान्य सांसारिकता का निषेध किया और दूसरी ओर उन लोगों के आचरण को भी निन्दनीय बतलाया जो कि संसार के जीवन संग्राम में भाग लेने की इच्छा न रखते हुए आध्यात्मिक उन्नति करने के बहाने संसार से तटस्थ हो बैठते हैं। गुरु नानक के घोरतम कटाक्षों में से अनेक उन लोगों के विरुद्ध हैं जो कि भगवे वस्त्र धारण कर साधु बनजाते थे और मनुष्य जीवन की ज़िम्मेवारियों से बचने के लिये संसार तथा निर्लज्ज भ्रमण की आ शरण लेते थे। गुरु नानक ने त्याग स्वयं विवाह किया और उनके सन्तान भी थी। वे निज जीवन के अधिकतर भाग में एक गृहस्थ व्यापारी के समान रहते रहे और इस प्रकार उदाहरण द्वारा उन्होंने यह दिखा दिया कि मनुष्य गीता के निम्नलिखित उपदेश अनुसार व्यवहार करता हुआ संसार के बीच रहता हुआ भी संसार से पृथक रह सकता है।

में हिन्दुओं के दुःखों का रोना रोया करते थे। एक स्थान पर वह लिखते हैं :—"समय कटार के समान है, शासक हत्यारे हैं। धर्म पर लगाकर उड़ गया है। असत्यता की अमावस्या सब के ऊपर राज्य कर रही है। सत्य का चन्द्रमा किसी को दिखाई नहीं दे सकता।" वे पद भी जो भाई लल्लू से अमीनाबाद में कहे गये थे देखने योग्य हैं।

पंथ प्रकाश का रचयिता लिखता है कि एक बार गुरुनानक को सिकन्दर लोधी ने इसलिये क़ैद कर लिया था कि गुरुनानक ने उसे चमत्कार दिखलाने से इन्कार कर दिया था। किन्तु यह बात अधिक युक्ति सिद्ध प्रतीत होती है कि गुरुनानक के निर्भीक आक्षेप जिन्हें आजकल की परिभाषा में राजविद्रोह कहा जावेगा उनके बन्दी किये जाने के वास्तविक कारण थे।

ब्राह्मण्याधाय कर्माणि संगंत्यक्त्वाकरोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥
(भगवद्गीता अ० ५ श्लो०१०)

इस प्रकार गुरुनानक की शिक्षा में दो मुख्य विशेषताएं हैं जो उनकी समस्त शिक्षा पद्धति को समाज संशोधन की अन्य चेष्टाओं से विभिन्न करती हैं।

एक उस शिक्षा में सांप्रदायिकता का अभाव और दूसरे सांसारिक अथवा ऐहिक जीवन के साथ उसका विरोध न होना। इसलिये उस शिक्षा के निम्न लिखित दो परिणाम होने आवश्यक थे :—

(१) इस शिक्षा ने पंजाब के समस्त हिन्दुओं के विचारों को प्रचोदित किया और समस्त जाति के सदाचार तथा उनकी आध्यात्मिक अवस्था को उन्नति दी। शताब्दियों के विरोध तथा विवाद के पश्चात् गुरू नानक ही पहिला वीर उत्पन्न हुआ जिसे प्रत्येक हिन्दू अपना कह सकता था और प्रत्येक हिन्दू* जिसके लिये उचित अभिमान प्रकट कर सकता था। गुरु नानक के आगमन ने हिन्दुओं में एक सामान्य राष्ट्रीयता का बोध उत्पन्न होने में बहुत बड़ा सहायता दी। जिस समय कि हिन्दू राजाओं का पतन हुआ था उस समय के पश्चात् गुरु नानक ही पहिला हिन्दू वीर था जिसे समस्त दलों के लोग अपना नेता समझते थे क्योंकि उसने स्वयं निज व्यक्तिता को किसी भी दलविशेष के साथ मिला न रक्खा था। यद्यपि गुरु-

---

*पुजारियों को छोड़कर जिनकी प्रतिष्ठा तथा आयको इस नवीन समाज संशोधक की लोकप्रियता से हानि पहुंचती थी।

नानक ने समस्त दलों अथवा मतों पर आक्रमण किये और उनके प्रियविश्वासों के धुर्रे उड़ादिये तथापि वहे एक सर्वप्रिय वीर बन गया। कारण यह कि लोगों को शीघ्र इस बात का पता लग गया कि गुरु नानक ने जो कुछ विध्वंस किया वह उनका सच्चा धर्म न था बरन् उस धर्म के ऊपर थोपा हुआ केवल निरर्थक मल ही था।

(२) दूसरा परिणाम जो गुरुनानक की शिक्षा से उत्पन्न हुआ वह हिन्दुओं को यह दिखलाना था कि बड़ी से बड़ी सांसारिक आकांक्षा का पवित्र से पवित्र तथा अत्यन्त पारमार्थिक जीवन के साथ कुछ भी विरोध नहीं है। बौद्ध, जैन तथा पिछले दिनों के हिन्दूमत ने जिसपर कि बौद्ध तथा जैन दोनों मतों का प्रभाव पड़ चुका है सदा से त्याग को ही सर्वोच्च धर्म मान रक्खा है। सांसारिक बल तथा सम्पत्ति की ओर से मत घृणा दर्शाते रहे हैं और किसी किसी अवस्था में इस बल तथा सम्पत्ति को केवल अनिवार्य अवगुण समझ कर ही इन्हें क्षंतव्य बतलाते रहे हैं। गुरु नानक ने ये समस्त विचार पलट दिये। उसने समस्त सांसारिक व्यापारों पर अपनी सम्मति, तथा निज अनुमोदन की मोहर लगा दी इस शर्त पर कि उन व्यापारों के करने में न्याय तथा सत्य का उल्लङ्घन न किया जावे।

यह बात प्रत्यक्ष है कि यही बीज था जो कि गुरु नानक के उत्तराधिकारियों के अविरत प्रयत्नों द्वारा बढ़कर 'खालसा' दल का एक अति महान वृक्ष बन गया।

अध्याय २

सिक्खों का पृथक समाज बनना।

समाज संगठन के प्रारम्भिक प्रयत्न।

(१५३८—१५७५)

गुरु नानक की आयु लगभग ७० वर्ष की हुई। और अपने जीवन के अन्त के दिनों में समस्त भारत वर्ष तथा अन्य कई देशों में भ्रमण करने के पश्चात् वे कर्तारपुर नामक एक ग्राम में रहने लगे जो उनका अपना स्थापन किया हुआ था। कर्तारपुर में गुरु नानक ने एक धर्मशाला बनवायी और मनुष्यों के संघ के संघ पञ्जाब के समस्त भागों से आकर इस स्थान पर एकत्रित होने लगे। गुरुनानक जी उन्हें धर्म उपदेश देते रहे। सन् १५३८ ई० में गुरुनानक जी ने चोला छोड़ा किन्तु शरीर त्याग से पूर्व वे उन सहस्रों ही हिन्दुओं के जीवन में एक प्रबल परिवर्तन उत्पन्न कर चुके थे जो कि उनके व्यक्तिगत संपर्क में आचुके थे। गुरुनानक ने अपने उत्कृष्ट जीवन तथा तेजोत्पादक उपदेशों द्वारा देश में एक नवीन आकाश (प्रभाव) उत्पन्न कर दिया और कोई भी मनुष्य ऐसा न हो सकता था जो इस आकाश में एक बार श्वास लेकर अपनी आत्मा को अधिक नीरोग तथा अधिक बलवान न कर लेता हो। गुरुनानक ने पञ्जाब के हिन्दुओं

को जिस अवस्था में पाया था उससे कहीं अधिक उत्तम अवस्था में छोड़ा। लोगों के विश्वास अधिक उदार कर दिये गये थे, उनकी पूजाविधि का संशोधन किया जा चुका था, जाति पांति के बन्धन बहुत कुछ तोड़ दिये गये थे। लोगों के विचारों में बहुत कुछ स्वतन्त्रता उत्पन्न करदी गयी थी और अब ये लोग पूर्व की अपेक्षा राष्ट्रीय उन्नति के उस पथ पर प्रवेश करने के कहीं अधिक योग्य हो गये थे जिसपथ पर कि गुरुनानक के उत्तराधिकारी उन्हें अवश्य लेजाने वाले थे। बीज बोया जा चुका था। यह बीज एक उत्तम भूमि पर पड़ा था और सप्रयत्न उपचार द्वारा आवश्यक था कि समय आने पर इस बीज सेही एक समृद्ध फ़सल खड़ी हो जावे।

यद्यपि गुरुनानक का उद्देश्य केवल हिन्दुओं के सामाजिक तथा धार्मिक विचारों को उत्तेजित करना और सामान्यतया उनके आचारों तथा उनके आध्यात्मिक जीवन को उन्नति देनाही था और यद्यपि उन्हें एक नवीन सम्प्रदाय स्थापन करने का कभी भी विचार नहीं किया तथापि उन्हें इस बात को उत्कण्ठा थी कि उनकी मृत्यु के पश्चात् उनका कार्य बराबर जारी रहे।*इस उद्देश्य को सामने रख गुरु-

*इसमें सन्देह नहीं कि मृतप्राय हिन्दू जाति को पुनरुज्जीवित करने में गुरुनानक को बहुत दर्जे सफलता प्राप्त हो चुकी थी। और अब वह जाति धीरे धीरे स्वास्थ्य प्राप्ति की अवस्था तक पहुंच रही थी परन्तु चारों ओर के हालात अभी तक इतने प्रतिकूल थे तथा सनातनधर्मी पुरोहितों का बल अभी तक इतना बड़ा हुआ था कि गुरुनानक को भय था कि यदि रोगी की अपेक्षा के लिये किसी को नियुक्त न किया गया तो सम्भव है कि रोग उसे फिर से आघेरे। यदि गुरुनानक बिना किसी उत्तराधिकारी के ही मर जाता होता आज दिन सिक्ख मत न होता और

नानक ने लहना नामक एक भक्त को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। लहना गुरु नानक के शिष्यों में से था और गुरु नानक जी ने उसे अपने पुत्रों से अधिक उत्तम समझा क्योंकि वह अपने आदर्श चरित्र असामान्य धार्मिकता तथा अनन्य *भक्ति द्वारा गुरुनानक का पद ग्रहण करने की योग्यता प्रकट कर चुका था।

लहना का नाम अब अंगद रख दिया गया और वह अपने गुरु के अस्तित्व का मानों एक आवश्यक अंग बन गया। ज्यूंही कि वह गद्दी पर बैठा उसने इस बात को अनुभव किया कि उसके स्वामी का मिशन एक प्रकार की संशयात्मक अवस्था में था। व्यवहार की दृष्टि से लोग अब भी उतने ही स्थिति-पालक थे जितने कि गुरु नानक की उत्पत्ति के समय उन्होंने हिन्दू धर्म के कर्म काण्ड तथा संस्कारों में कुछ भी हस्त क्षेप न किया था। ये समस्त कर्म तथा संस्कार प्राचीन विधि के अनुसार तथा प्राचीन पुरोहितों द्वारा ही संपादन किये जाते थे। और यद्यपि उन लोगों की दृष्टि में जो गुरुनानक के सम्पर्क में आ चुके थे इन क्रियाओं तथा संस्कार आदिक की महिमा पूर्वकी

यदि होता भी तो अधिक से अधिक कबीर पंथ के समान केवल एक छोटा सा पथ होता।

*पंथ प्रकाश तथा अन्य पुस्तकों में लहना की भक्ति की अनेक कथाएं दी हुई हैं। उदाहरण के लिये उसका गुरुनानक के कहने पर प्याला निकालने के लिये एक कीचड़ के तालाब में कूद पड़ना। गुरु के आज्ञा देने पर उसका एक मृत शरीर तक को खाने के लिये उद्यत हो जाना। गुरु के बनावटी पागलपन के दिनों में जब कि उनके पुत्रों तक ने उसे छोड़ दिया था लहना का श्रद्धा पूर्वक गुरुनानक के साथ लगा रहना, इत्यादि।

अपेक्षा अत्यन्त कम होचुकी थी तथापि ये लोग अभी तक इन क्रियाओं तथा संस्कारों का पालन अवश्य करते थे।

गुरुनानक की व्यक्तिगत आकर्षण शक्ति इतनी बढ़ी हुई थी कि वे सहस्रों ही मनुष्य जो उनके साक्षात् प्रभाव में आचुके थे उनके भक्त तथा अनुयायी वन गये थे। और इस में अणुमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता कि यदि वे चाहते तो सुगमता के साथ अपनी एक पृथक सम्प्रदाय स्थापन कर सकते थे जिसमें कि वे अपनी समाज संहिता तथा अपना ही धर्मशास्त्र प्रचलित कर लेते और एक स्वाधीन समाज बना लेते जो कि जातिबंधन तथा हिन्दू पुरोहितों के प्रभुत्व से सर्वथा स्वतंत्र होती। परन्तु गुरुनानक का यह उद्देश्य न था। वे हिन्दू समाज से अपने को पृथक कर लेना न चाहते थे। उनकी यह इच्छा थी कि वह हिन्दुओं के भीतर रहें, हिन्दुओं के साथ कार्य करें और अपने उत्कृष्ट उदाहरण तथा महान उपदेशों द्वारा हिन्दुओं के सामाजिक तथा धार्मिक जीवन को उन्नति दें। गुरुनानक के उत्तराधिकारी ने भी इसही नीति का अनुसरण किया किन्तु साथही उसने यह भी अनुभव किया कि गुरु नानक के मिशन का कुछ न कुछ विशेष स्वरूप होना तथा उनके अनुयायियों का, प्रधान हिन्दू समाज के केवल एक अंग होते हुए भी एक पृथक अस्तित्व होना आवश्यक था। उसने इस बात की आवश्यकता को अनुभव किया कि गुरु नानक के अनुयायियों को हिन्दू जनसमूह में मिलकर सर्वथा एक न होने देना चाहिये।

इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये कि गुरु नानक के प्रस्तुत किये हुए प्रभाव बराबर अपना कार्य्य करते रहें यह आवश्यक था कि उन प्रभावों को चिरस्थायी बना

नानक ने लहना नामक एक क्षत्री को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। लहना गुरु नानक के शिष्यों में से था और गुरु नानक जी ने उसे अपने पुत्रों से अधिक उत्तम समझा क्योंकि वह अपने आदर्श चरित्र असामान्य धार्मिकता तथा अनन्य *भक्ति द्वारा गुरुनानक का पद ग्रहण करने की योग्यता प्रकट कर चुका था।

. लहना का नाम अब अंगद रख दिया गया और वह अपने गुरु के अस्तित्व का मानों एक आवश्यक अंग बन गया। ज्योंही कि वह गद्दी पर बैठा उसने इस बात को अनुभव किया कि उसके स्वामी का मिशन एक प्रकार की संशयात्मक अवस्था में था। व्यवहार की दृष्टि से लोग अब भी उतने ही स्थिति-पालक थे जितने कि गुरु नानक का उत्पत्ति के समय उन्होंने हिन्दू धर्म के कर्म काण्ड तथा संस्कारों में कुछ भी हस्त क्षेप न किया था। ये समस्त कर्म तथा संस्कार प्राचीन विधि के अनुसार तथा प्राचीन पुरोहितों द्वारा ही संपादन किये जाते थे। और यद्यपि उन लोगों का दृष्टि में जो गुरुनानक के सम्पर्क में आचुके थे इन क्रियाओं तथा संस्कार आदि कर्ी महिमा पूर्वका

यदि होता भी तो शक्ति में अधिक कबीर पंथ के समान केवल एक छोटा सा पंथ होता।

*पंथ प्रकाश तथा अन्य पुस्तकों में लहना की भक्ति की, अनेक कथाए दी हुई हैं। उदाहरण के लिये उसका गुरुनानक के कहने पर प्याला निकालने के लिये एक कीचड़ के तालाब में कूद पड़ना। गुरु के आज्ञा देने पर उसका एक मृत शरीर तक को खाने के लिये उद्यत हो जाना। गुरु के बनावटी पागलपन के दिनों में जब कि उसके पुत्रों तक ने उसे छोड़ दिया था लहना का श्रद्धा पूर्वक गुरुनानक के साथ लगा रहना, इत्यादि।

अपेक्षा अत्यन्त कम होचुकी थी तथापि ये लोग अभी तक इन क्रियाओं तथा संस्कारों का पालन अवश्य करते थे।

गुरुनानक की व्यक्तिगत आकर्षण शक्ति इतनी बढ़ी हुई थी कि वे सहस्रों ही मनुष्य जो उनके साक्षात् प्रभाव में आचुके थे उनके भक्त तथा अनुयायी बन गये थे। और इस में अणु मात्र भी सन्देह नहीं हो सकता कि यदि वे चाहते तो सुगमता के साथ अपनी एक पृथक सम्प्रदाय स्थापन कर सकते थे जिसमें कि वे अपनी समाज सहिता तथा अपना ही धर्मशास्त्र प्रचलित कर लेते और एक स्वाधीन समाज बना लेते जो कि जातिबंधन तथा हिन्दू पुरोहितों के प्रभुत्व से सर्वथा स्वतन्त्र होती। परन्तु गुरुनानक का यह उद्देश्य न था वे हिन्दू समाज से अपने को पृथक कर लेना न चाहते थे उनकी यह इच्छा थी कि वह हिन्दुओं के भीतर रहें, हिन्दुओं के साथ कार्य करें और अपने उत्कृष्ट उदाहरण तथा महान उपदेशों द्वारा हिन्दुओं के सामाजिक तथा धार्मिक जीवन की उन्नति दें। गुरुनानक के उत्तराधिकारी ने भी इसही नीति का अनुसरण किया किन्तु साथही उसने यह भी अनुभव किया कि गुरु नानक के मिशन का कुछ न कुछ विशेष स्वरूप होना तथा उनके अनुयायियों का, प्रधान हिन्दू समाज के केवल एक अंग होते हुए भी एक पृथक अस्तित्व होना आवश्यक था। उसने इस बात की आवश्यकता को अनुभव किया कि गुरु नानक के अनुयायियों को हिन्दू जनसमूह में मिलकर सर्वथा एक न होने देना चाहिये।

इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये कि गुरु नानक के प्रस्तुत किये हुए प्रभाव बराबर अपना कार्य्य करते रहें यह आवश्यक था कि उन प्रभावों को चिरस्थायी बन

दिया जाये और एक ऐसी समाज की रचना की जाये जोकि हिन्दुओं की मर्दानी सेना का एक अंग होते हुए भी उस सेना से कुछ पृथक उसके अग्रगामी *सैनिकोंके समान प्रयाणकरें।

गुरु अंगद ने उन लोगों के अस्तित्व की पृथकता को बनाये रखने के लिये जिन्होंने कि नानक के मिशन को स्वीकार कर लिया था निम्न लिखित तीन उपायों का प्रयोग किया।

(१) सबसे प्रथम तथा सबसे बढ़कर उपाय गुरुमुखी अक्षरों की †रचना करनाथा। ये अक्षर सिक्खोंकी लिपिविशेष बनगये और इन्हीं में सिक्खों की समस्त धर्म पुस्तकें लिखी हुई हैं। आदि ग्रन्थ में तथा साधारण रीति से पंजाब में गुरु मुख उन लोगों को कहा जाता है जो कि श्रद्धा पूर्वक गुरु की आज्ञाओं का पालन करते हैं और उसके विपरीत मनमुख उस मनुष्य को कहा जाता है जो अपनी ही संकल्प शक्ति को अपना सहायक तथा मार्ग प्रदर्शक समझता है। इस

*इन अशिक्षित लोगों को हिन्दूजाति के अग्रगामी कहना कुछ आश्चर्यजनक प्रतीत होता होगा किन्तु सच यह है उन अन्धकारमय दिनों में भी हिन्दुओं में विद्वता तथा ब्रह्म विद्या तथा दर्शन शास्त्र की कदापि कमी न थी। हिन्दुओं में कमी केवल सत्यता श्रद्धा तथा प्रेम की थी। और यद्यपि आरम्भ के सिक्ख शिक्षित न थे तथापि इन गुणों के रखने के कारण ये नेता बनकर समस्त पंजाब को अपने पीछे ले चलते थे।

†राष्ट्रीयता की दृष्टि से यह आक्षेप किया जा सकता है कि इस नयी लिपि ने हिन्दुओं तथा सिक्खों के बीच एक नयी भेद की रेखा उत्पन्न करदी तथा समस्त हिन्दूजाति को एक करनेवाले भी भावी हिन्दूजाति संशोधकों के कार्य को और भी अधिक कठिन कर दिया यह भी आक्षेप किया जा सकता है कि गुरु मुखी के अक्षर असंस्कृत तथा असम्पूर्ण हैं और उनकी कोई आवश्यकता न थी। दूसरी ओर यह स्वीकार करना पड़ता है कि दूसरे

प्रकार नयी लिपि के नाम से ही उसका प्रयोग करने वालों को गुरु की ओर अपने कर्तव्यों का ध्यान आ जाता था। यह लिपि उन्हें निरन्तर इस बात का बोध कराती रहती थी कि वे हिन्दुओं के साधारण जन समूह से पृथक एक पुनरुज्जीवित, निस्तारित तथा रक्षित समाज थे। इस लिपि ने पुरोहितों के प्रभुत्व को भी एक प्रबल हानि पहुंचाई। इस से पूर्व संस्कृत ही हिन्दुओं की धर्म भाषा थी और ब्राह्मणों का गौरव अधिकतर संस्कृत जानने पर ही निर्भर करता था। जब कि इसके थोड़े दिनों पीछे ही गुरुमुखी अक्षरों में लिखी हुई पंजाबी भाषा भी उतनी ही पवित्र समझी जाने लगी तब ब्राह्मणों के गौरव का कम हो जाना अनिवार्य था। इस नयी लिपि के प्रचार का तीसरा परिणाम यह हुआ कि देशमें शिक्षितों की संख्या बढ़ने लगा, जन समूह को अपनी मातृभाषा में धार्मिक पुस्तकें पढ़ने को मिलने लगीं और गुरुओं का समाज संशोधन का कार्य पहिले की अपेक्षा सुगम होगया।

(२) दूसरा कार्य जो गुरु अंगद ने अपने ऊपर लिया वह गुरु नानक के चरित्र वृत्तान्त का संग्रह करना था। बाला नामक एक मनुष्य जीवन भर स्वर्गवासी गुरु के साथ रहचुका था और गुरु की प्रायः समस्त यात्राओं में उनके साथ गया था। बाला ने गुरुनानक के बालकपन से लेकर

अक्षरों की अपेक्षा ये अक्षर अधिक सुगमता के साथ सीखे जा सकते हैं जब कि सिक्खों की पृथकता को प्रतिपादन करने के उपाय रूप इन अक्षरों की महिमा जितनी बतायी जावे उतनी ही थोडी है। ब्राह्मणों के प्रभुत्व को नष्ट करने का इससे उत्तम उपाय सोचा जाना असम्भव था और यदि इस समय तक भी सिक्खों तक में ब्राह्मण श्रेष्ठ समझे जाते हैं तो इसका कारण ब्राह्मणों की स्वाभाविक श्रेष्ठता है।

दिया जावे और एक ऐसी समाज की रचना की जावे जोकि हिन्दुओं की महती सेना का एक अंग होते हुए भी उस सेना से कुछ पृथक उसके अग्रगामी *सैनिकोंके समान प्रयाणकरें।

गुरु अंगद ने उन लोगों के अस्तित्व की पृथक्ता या बनाये रखने के लिये जिन्होंने कि नानक के मिशन को स्वीकार कर लिया था निम्न लिखित तीन उपायों का प्रयोग किया।

(१) सबसे प्रथम तथा सबसे बढ़कर उपाय गुरुमुखी अक्षरों की †रचना करनाथा। ये अक्षर सिक्खोंकी लिपिविशेष बनगये और इन्हीं में सिक्खों की समस्त धर्म पुस्तकें लिखा हुई हैं। आदि ग्रन्थ में तथा साधारण रीति से पंजाब में गुरु मुख उन लोगों को कहा जाता है जो कि श्रद्धा पूर्वक गुरु की आज्ञाओं का पालन करते हैं और उसके विपरीत मनमुख उस मनुष्य को कहा जाता है जो अपनी ही संकल्प शक्ति को अपना सहायक तथा मार्ग प्रदर्शक समझता है। इस

*इन अशिक्षित लोगों का हिन्दूजाति के अग्रगामी कहना कुछ आश्चर्यजनक प्रतीत होता होगा किन्तु सच यह है उन अन्धकारमय दिनों में भी हिन्दुओं में विद्वत्ता तार्किक ब्रह्म विद्या तथा दर्शन शास्त्र की कदापि कमी न थी। हिन्दुओं में कमी केवल सत्यता श्रद्धा तथा प्रेम की थी। और यद्यपि आरम्भ के सिक्ख शिक्षित न थे तथापि इन गुणों के रखने के कारण वे नेता बनकर समस्त पंजाब को अपने पीछे ले चलते थे।

†राष्ट्रीयता की दृष्टि से यह आक्षेप किया जा सकता है कि इस नयी लिपि ने हिन्दुओं तथा सिक्खों के बीच एक नयी भेद की रेखा उत्पन्न करदी तथा समस्त हिन्दूजाति को एक करनेवाले भी भावी हिन्दूजाति संशोधकोंके कार्य को और भी अधिक कठिन कर दिया यह भी आक्षेप किया जा सकताहै कि गुरु मुखी के अक्षर असंस्कृत तथा असम्पूर्ण हैं और इनकी कोई आवश्यकता न थी। दूसरी ओर यह स्वीकार करना पड़ता है कि दूसरे

प्रकार नयी लिपि के नाम से ही उसका प्रयोग करने वालों को गुरु की ओर अपने कर्तव्यों का ध्यान आ जाता था। यह लिपि उन्हें निरन्तर इस बात का बोध कराती रहती थी कि वे हिन्दुओं के साधारण जन समूह से पृथक एक पुनरुज्जीवित, निस्तारित तथा रक्षित समाज थे। इस लिपि ने पुरोहितों के प्रभुत्व को भी एक प्रबल हानि पहुंचाई। इस से पूर्व संस्कृत ही हिन्दुओं की धर्म भाषा थी और ब्राह्मणों का गौरव अधिकतर संस्कृत जानने पर ही निर्भर करता था। जब कि इसके थोड़े दिनों पीछे ही गुरुमुखी अक्षरों में लिखी हुई पंजाबी भाषा भी उतनी ही पवित्र समझी जाने लगी तब ब्राह्मणों के गौरव का कम हो जाना अनिवार्य था। इस नयी लिपि के प्रचार का तीसरा परिणाम यह हुआ कि देशमें शिक्षितों की संख्या बढ़ने लगी, जन समूह को अपनी मातृभाषा में धार्मिक पुस्तकें पढ़ने को मिलने लगीं और गुरुओं का समाज संशोधन का कार्य पहिले की अपेक्षा सुगम होगया।

(२) दूसरा कार्य जो गुरु अंगद ने अपने ऊपर लिया वह गुरु नानक के चरित्र वृत्तान्त का संग्रह करना था। बाला नामक एक मनुष्य जीवन भर स्वर्गवासी गुरु के साथ रहचुका था और गुरु की प्रायः समस्त यात्राओं में उनके साथ गया था। बाला ने गुरुनानक के बालकपन से लेकर

अक्षरों की अपेक्षा ये अक्षर अधिक सुगमता के साथ सीखे जा सकते हैं जब कि सिक्खों की पृथकता को प्रतिपादन करने के उपाय रूप इन अक्षरों की महिमा जितनी बनायी जावे उतनी ही थोडी है। ब्राह्मणों के प्रभुत्व को नष्ट करने का इससे उत्तम उपाय सोचा जाना असम्भव था और यदि इस समय तक भी सिक्खों तक में ब्राह्मण श्रेष्ठ समझे जाते हैं तो इसका कारण ब्राह्मणों की स्वाभाविक श्रेष्ठता है।

उनके शरीर त्याग के समय तक उनके विषय में जो कुछ सुना तथा देखा था वह सब अपने स्मरण अनुसार कह सुनाया और गुरु अंगद ने उसे लेखबद्ध कर लिया। गुरु नानक सबसे पहिला पंजाबी कवि था जिसने थोड़ी बहुत कीर्ति तथा प्रतिष्ठा लाभ की और गुरु अंगद का संग्रह किया हुआ गुरु-नानक का चरित्र वृतान्त पंजाबी भाषा का पहिला गद्यात्मक ग्रन्थ था*। यह ग्रन्थ शीघ्रही गुरुनानक के अनुयायियों का प्रीतिपात्र बन गया और क्योंकि इस ग्रन्थ में गुरुनानक के उपदेश तथा उनका चरित्र वृत्तान्त दोनों दिये हुए थे इस कारण वह तुरन्त सिक्खों के धर्म ग्रन्थ की पदवी तक पहुँच गया†। रामायण तथा महाभारत तक साधारण जन समूह की पहुँचन था इस कारण उन सहस्रों मनुष्योंके लिये जो संस्कृत का एक शब्द भी न जानते थे या देना न चाहते थे उन सब के लिये यह ग्रन्थ ही आचार सम्बन्धी तथा धर्म सम्बन्धी शिक्षा का एक मात्र स्थान बन गया।

(३) गुरुनानक के मिशन को सर्वप्रिय बनाने तथा उनके अनुयायियो क उत्साह को बनाये रखने का तीसरा उपाय जो अंगद ने किया वह एक लंगर (अर्थात् एक विना मूल्य भण्डारा देना अथवा भोजन गृह) का स्थापन करना था। इससे पूर्व गुरुनानक ने ही इस कार्य को आरम्भ कर रक्खा

---

*यह ग्रन्थ केवल पंजाबी साहित्य में सब से पहिला गद्यात्मक ग्रन्थ ही न था वरन् जहां तक मुझे पता लगा है यह पहिला धार्मिक ग्रन्थ था जो कि इस प्रान्त की सार्वजनिक भाषा में लिखा गया।

†इस दृष्टि से यह ग्रन्थ हिन्दुओं की धर्म पुस्तकों की अपेक्षा ईसाइयों की "न्यूटेस्टामेंट" से अधिक मिलता जुलता था इन्जील के समान उपमार्थ कहानियों तथा चमत्कारों का भी इस ग्रन्थ में अभाव न था।

था। अंगद ने केवल उसको बढ़ाकर अधिक विस्तृत कर दिया। यह संस्था मत प्रचार के कार्य में एक प्रबल सहायता देनेवाली संस्था सिद्ध हुई। सब से प्रथम इस संस्था ने ठीक वही काम किया जो कि ईसाई पादरियों के स्थापन किये हुए अनाथालय, अस्पताल, आश्रम तथा अन्य धर्मार्थ संस्थाएँ करती हैं अर्थात् इसके द्वारा न केवल दरिद्रों तथा अनाथों को सहायता ही मिली वरन् साथही यह संस्था विज्ञापन तथा लोकप्रियता लाभ करने का एक अत्यन्त अमोघ उपाय भी सिद्ध हुई। दूसरे इस संस्था ने गुरु के अनुयायियों के दान पुण्य के लिये एक नया मार्ग निकाल दिया। हिन्दु व्यक्तियों के चलाये हुये भण्डारे अथवा भिक्षागेह सदा अनेक रहे हैं और उस समय भी अनेक थे किन्तु प्रतीत होता है कि गुरु का लंगर अपने इस ढंग का पहिला भण्डारा था जिसे एक समाज के संयुक्त चन्दों से चलाया जाता था और इस लंगर ने सिक्खों को एक सामान्य (अथवा जातीय) पूंजी के लिये चन्दा देने का पहिला पाठ पढ़ाया। तीसरे क्योंकि दान धर्म की जड़ है और सिक्खों के दान गुरु की पूंजी में जाने लगे इस कारण सिक्खों के धार्मिक भाव किसी दूसरी ओर न जा सकते थे। परिणाम यह हुआ कि लंगर को चलता रखने के कर्तव्य विशेष ने सिक्खों के ध्यान को गुरु के ऊपर एकाग्र करदिया। तथा इसके अतिरिक्त क्योंकि यह लंगर समस्त सिक्खों की सामान्य सहायता तथा दान का पात्र था इस कारण वह सिक्खों की नयी विरादरी में एकता बनाये रखने का एक प्रबल साधन बनगया। चौथे हिन्दू जाति भेद के पटल को तोड़ने के लिये यह संस्था एक प्रबल शस्त्र सिद्ध हुई क्योंकि यहां पर धनी तथा दरिद्र ब्राह्मण तथा

शूद्र समस्त सिक्ख* बिना किसी भेद के सहभोजन करते थे

इन उपायों द्वारा तथा सोद्योग प्रचार द्वारा गुरु अंगद ने सफलता के साथ गुरुनानक के मिशन को एक प्रकार का स्थान विशेष तथा एक नाम विशेष प्रदान किया। सिक्ख लोग अब धीरे धीरे सनातन धर्मी हिन्दुओं से पृथक होने लगे और अपनी एक समाज अर्थात् एक प्रकार को नई बिरादरी बनाने लगे। धार्मिक कर्म काण्ड के पालन करने में वे अपने समकालीन हिन्दुओं के समान थे तथा हिन्दुओं के अनेक मूढ़ विश्वास भी उन में अभीतक प्रचलित थे किन्तु अपने धार्मिक विश्वास की सरलता तथा अपने उत्साह और सत्यता में वे समकालीन हिन्दुओं की अपेक्षा अपने आर्य पूर्वजों के साथ अधिक मिलते जुलते थे। आचार विचार की निरर्थक बारीकियों से अदूषित, जाति भेद की शृङ्खला से निर्मुक्त ये लोग अपने शुद्ध तथा आदिम धार्मिक विश्वासों में सरल, धीर तथा उत्साही थे।

दूसरे गुरु के इन उपायों ने बहुत दर्जे तक एक नयी समाज स्थापन करदी तथा सिक्खों में एक प्रकार के समाज संगठन के पहिले बीज बो दिये। परन्तु उस समय तक सिक्ख समाज केवल एक धार्मिक समाज ही थी और जिन अगणित अन्य धार्मिक सम्प्रदायों में उस समय की हिन्दू जाति विभक्त थी उन सम्प्रदायों से सिक्ख समाज की भिन्नता

---

*यद्यपि यह लंगर विशेष कर दरिद्रों के लिये था तथापि उसमें उन अनुयायियों को भी भोजन दिया जाता था जोकि गुरु के दर्शनों के लिये आते थे। यहां तक कि राजा लोग भी गुरु के लंगर में बैठकर समस्त उपस्थित वर्ण तथा जाति के मनुष्यों के साथ भोजन करने को अपना धर्म तथा एक पुण्य का कार्य समझते थे।

को स्पष्ट करने वाले उस समय तक इस समाज में कोई विशेष लक्षण न थे। हिन्दूधर्म स्वभाव से ही पारलौकिक है। और जब कि एक ओर धार्मिक उत्साह एक मुसलमान को युद्ध क्षेत्र तक ले जाता है तथा एक ईसाई को इनजील का प्रचार करने के लिये अफ्रीका के मरुस्थल तक पहुचा देता है दूसरी ओर वेही प्रबल धार्मिक भाव जब तक हिन्दू के हृदय में उत्पन्न होता है तो उसका ध्यान अपने अन्तर की ओर जाता है और उसके चित्त में इस प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं जिनके कारण वह इस संसार का मिथ्या तथा समस्त मानुषिक इच्छाओं को व्यर्थ तथा असार समझने लगता है। इसमें सन्देह नहीं कि वैदिक समय के हिन्दुओं की अवस्था इस से भिन्न थी उस समय का एक हिन्दू हर प्रकारके सांसारिक सुखों, सन्तान, धन, पौरुष, स्वतन्त्रता, राज्य विजय, कीर्ति और सब के अन्त में किन्तु उतने ही बल के साथ अपने शत्रुओं के नाश के लिये भी परमात्मा से प्रार्थना करने में कदापि लज्जा अथवा अपमान अनुभव न करता था। अर्वाचीन समय का एक हिन्दू शताब्दियों तक के हतवीर्य का देनेवाले जैनमत के प्रभावों द्वारा तथा पौरुष तथा आचार का नाश कर देने वाली राजनैतिक पराधीनता के कारण अपने आर्य पूर्वजों में एक सर्वथा भिन्न प्राणी दिखाई देता है। जब उसमें धर्म की प्रेरणा होती है तो उस के हृदय में वीरता, उत्साह, लोकसेवा तथा मिशनरी भावों की अपेक्षा चित्त की कोमलता, सन्तोष तथा असांसारिकता के भाव ही अधिक बल के साथ उत्पन्न होने लगते हैं। ऊपर लिखे हुये कारणों से आरम्भ के दिनों में सिक्ख मत एक अत्यन्त संशयापन्न अवस्था में था। गुरु अँगद ने अपनी शक्ति भर सिक्खों को फिर से सनातनत्व में

गिरने से बचाने का प्रयत्न किया किन्तु सिक्खमत को केवल एक यही भय न था इससे बढ़कर दूसरा भय इस मत को यह था कि सिक्ख समाज अपने वास्तविक धर्म से पतित होकर धर्मोन्मत्त पुरुषों अथवा संसार त्यागी उत्साहियों की एक अनुदार सम्प्रदाय न बन जावे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि गुरुनानक स्वयं विवाहित थे तथा उन्होंने विवाहित जीवन का वर्णन अपमान अथवा निन्दा के शब्दों में नहीं किया किन्तु यह भी समस्त सांसारिक सुखों और पदार्थों की नश्वरता तथा समस्त सांसारिक प्रेम तथा मैत्री की असारता पर निरंतर इतना अधिक ज़ोर दे चुके थे कि सांसारिक व्यापारों के लिये क्रियात्मक उत्साह अब भी एक हिन्दू के हृदय से लगभग उतना ही दूर था जितना कि गुरुनानक के आगमन से पूर्व उनके अनुयायी अभी तक इसही विश्वास की ओर झुकते थे कि यह समस्त संसार मिथ्या तथा केवल माया ही है।

उस समय पंजाब देश में एक और सम्प्रदाय उपस्थित थी जोकि सदा दृष्टि में उतनीही प्रमाणिक प्रतीत होती थी तथा उतनी ही पवित्र ज्ञान का दावा करती थी जितनी कि स्वयं सिक्ख सम्प्रदाय। इस प्रतियोगिनी सम्प्रदाय के साथ २ उपस्थित होने के कारण सिक्खमत को और भी अधिक भय

---

* पंथ प्रकाश में लिखा है कि गुरुनानक ने इस विषय को अपने अनुयायियों के हृदयों पर अंकित करने के लिये संसार की एक नव्य युवती तथा चित्त को लुभानेवाली तरुणी के साथ तुलना की जो कि सदा मनुष्यों को अपनी चालाकियों में फंसाने का यत्न करती रहती है अधिकांश मनुष्य उसके प्यार में फस जाते हैं। केवल धीर तथा वीर पुरुष ही उसके प्रलोभनों से बच सकते हैं।

था। गुरूनानक के दो पुत्र थे एक श्री चन्द्र और दूसरा लक्ष्मी चन्द्र। लक्ष्मीचन्द्र विवाह करके एक गृहस्थ के समान रहने लगा। किन्तु श्रीचन्द्र संसार को त्यागकर साधू बनगया। उसने 'उदासी' सम्प्रदाय की स्थापना किया और अपने अनुयायियों को इस बात का आदेश किया कि वे अविवाहित रहें तथा किसी प्रकार के व्यवस्थित मकान द्रव्य आदिक से सम्बन्ध न रक्खें। इस सम्प्रदाय के शेष विश्वास आदिक ठीक वैसे ही थे जैसे कि सिक्ख सम्प्रदाय के तथा इस सम्प्रदाय के लोग गुरूनानक को उतना ही आदर की दृष्टि से देखते थे जितने कि सिक्ख। श्रीचन्द्र एक अत्यंत वृद्ध अवस्था तक जीवित रहा और जबकि सिक्ख सम्प्रदाय का संस्थापक मर चुका था उदासी सम्प्रदाय अपने संस्थापक की व्यक्तिगत रक्षा तथा उसके मार्गप्रदर्शन में बहुत दिनों तक फलती फूलती रही। भारतवर्ष में किसी सम्प्रदाय का संस्थापक तथा उसके अनुयायी जितने अधिक आत्मत्याग तथा वैराग्य का परिचय देते हैं उतना ही लोग उस सम्प्रदाय का मान करते हैं और उतना उतनी ही उसके मानने वालों की संख्या बढ़ती जाती है। इस कारण 'उदासी' सम्प्रदाय प्रतिदिन बढ़ती गयी। इस के पश्चात् तीसरे गुरू के समय में एक और घटना हुई जिसके द्वारा यह प्रश्न एक व्यक्तिगत प्रश्नसा बनगया। तीसरा गुरु अमरदास गुरूअंगद का नियुक्त किया हुआ था और अब यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि गुरुनानकके निज पुत्र (श्रीचन्द्र) का पक्ष लेकर उसका अनुसरण किया जावे अथवा गुरुनानक के नियुक्त किये हुए मनुष्य द्वारा नियुक्त तीसरे मनुष्य (अमरदास) का अनुसरण किया जावे। निस्सन्देह अमरदास एक धर्मपरायण मनुष्य था। किन्तु उसका प्रतियोगी धर्मपरायण होने के

का पता नहीं लग सका। 'सूरज' प्रकाश के लगभग ३००० बड़े बड़े तथा छोटे अक्षरों वाले पृष्ठों में केवल गुरुओं का इतिहास दिया हुआ है किन्तु उस ग्रन्थ में इन मंजों में से किसी का कुछ भी वर्णन नहीं आता। पंथ प्रकाश का लेखक केवल इन मंजों की अकबर के २२ प्रान्तों तथा साहूकारों और सौदागरों की शाखाओं के साथ तुलना देता है और लिखता है कि ठीक इसही प्रकार गुरु ने भी सिक्खों की धार्मिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये २२ उपगद्दियें अथवा केन्द्र स्थापन कर दिये।

यह बात स्पष्ट है कि तीसरे गुरू के इस उपाय द्वारा सिक्ख सम्प्रदाय की नीति बहुत कुछ पक्की हो गई होगी तथा देश के समस्त भागों में प्रचार का कार्य करने में बहुत बड़ी सहायता मिली होगी। आगे चल कर हमें पता लगेगा कि किस प्रकार पाँचवें गुरु ने इसही नींव पर मुगल स्वराज्य के बीच में सिक्खों के लिये स्वराज्य का सुन्दर भवन खड़ा कर दिया।

था। गुरुनानक के दो पुत्र थे एक श्री चन्द्र और दूसरा लक्ष्मीचन्द्र। लक्ष्मीचन्द्र विवाह करके एक गृहस्थ के समान रहने लगा। किन्तु श्रीचन्द्र संसार को त्यागकर साधू बनगया। उसने 'उदासी' सम्प्रदाय को स्थापन किया और अपने अनुयायियों को इस बात का आदेश किया कि वे अविवाहित रहें तथा किसी प्रकार के व्यवस्थित मकान द्रव्य आदिक से सम्बन्ध न रक्खें। इस सम्प्रदाय के शेष विश्वास आदि कठीक वैसे ही थे जैसे कि सिक्ख सम्प्रदाय के तथा इस सम्प्रदाय के लोग गुरूनानक को उतने ही आदर की दृष्टि से देखते थे जितने कि सिक्ख। श्रीचन्द्र एक अत्यन्त वृद्ध अवस्था तक जीवित रहा और जबकि सिक्ख सम्प्रदाय का संस्थापक मर चुका था उदासी सम्प्रदाय अपने संस्थापक की व्यक्तिगत रक्षा तथा उसके मार्गप्रदर्शन में बहुत दिनों तक फलती फूलती रही। भारतवर्ष में किसी सम्प्रदाय का संस्थापक तथा उसके अनुयायी जितने अधिक आत्मत्याग तथा वैराग्य का परिचय देते हैं उतना ही लोग उस सम्प्रदाय का मान करते हैं और उतना उतनी ही उसके मानने वालों की संख्या बढ़ती जाती है। इस कारण उदासी' सम्प्रदाय प्रतिदिन बढ़ती गयी। इस के पश्चात् तीसरे गुरू के समय में एक और घटना हुई जिसके द्वारा यह प्रश्न एक व्यक्तिगत प्रश्नसा बनगया। तीसरा गुरू अमरदास गुरूअंगद का नियुक्त किया हुआ था और अब यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि गुरूनानकके निज पुत्र (श्रीचन्द्र) का पक्ष लेकर उसका अनुसरण किया जावे अथवा गुरूनानक के नियुक्त किये हुए मनुष्य द्वारा नियुक्त तीसरे मनुष्य (अमरदास) का अनुसरण किया जावे। निस्सन्देह अमरदास एक धर्मपरायण मनुष्य था। किन्तु उसका प्रतियोगी धर्मपरायण होने के

का पता नहीं लग सका। 'सूरज' प्रकाश के लगभग २००० बड़े बड़े तथा छोटे आकारों वाले पृष्ठों में केवल गुरुओं का इतिहास दिया हुआ है किन्तु उस ग्रन्थ में इन मंजों में से किसी का कुछ भी वर्णन नहीं आता। पंथ प्रकाश का लेखक केवल इन मंजों की अकबर के २२ प्रान्तों तथा सूबेदारों और सौदागरों की शाखाओं के साथ तुलना देता है और लिखता है कि ठीक इसही प्रकार गुरु ने भी सिक्खों की धार्मिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये २२ उपगद्दियें अथवा केन्द्र स्थापन कर दिये।

यह बात स्पष्ट है कि तीसरे गुरु के इन उपाय द्वारा सिक्ख सम्प्रदाय की नींव बहुत कुछ पक्की हो गई होगी तथा देश के समस्त भागों में प्रचार का कार्य करने में बहुत बड़ी सहायता मिली होगी। आगे चल कर हमें पता लगेगा कि किस प्रकार पांचवें गुरु ने इसही नींव पर मुगल स्वराज्य के बीच में सिक्खों के लिये स्वराज्य का सुन्दर भवन खड़ा कर दिया।

अध्याय ३

गुरुओं का बढ़ता हुआ बल तथा उनका बढ़ता हुआ प्रभाव।

गुरु रामदास का कार्य (१५७५-१५८२)

सिक्खों का अब एक पृथक समाज बन चुका था। उनकी संख्या सहस्रों तक पहुंच गयी थी और गुरु अमरदास ने उनको २२ 'मंजों' में विभक्तकर प्रत्येक मंजे को अपने एक धर्माध्यक्ष के अधीन कर दिया था। इस नवीन सम्प्रदाय का प्रभाव अब दिनों दिन बढ़ता जा रहा था। अन्य घटनाओं के साथ साथ निम्न लिखित घटनाओं ने गुरुओं के बल तथा प्रभाव के बढ़ाने में वस्तुतः बहुत बड़ा भाग लिया।

१—सार्वजनिक भवनों तथा नगरों का संस्थापन।

(अ) स्वयं गुरुनानक ने कर्तारपुर नामक एक नये ग्राम को स्थापन किया था जहां पर कि उन्होंने सिक्खों की पहिली धर्मशाला बनायी थी। इस धर्मशाला के साथ साथ उन्होंने एक लंगर भी जारी कर रक्खा था और यहां पर भारत तथा अन्य देशों में जीवन भर भ्रमण करने के पश्चात् अपनी जीवन यात्रा के अन्तिम वर्षों में फिर एक बार अपने कुटुम्बियों सहित रहकर वे अपने अनुयायियों को उपदेश देते रहे।

(२) गुरु अमरदास ने गुरु अंगद की आज्ञानुसार सन् १५४६ ई० में व्यास नदी के तट पर 'गोविन्दवाल*' नामक

---

*वास्तव में एक ग्राम की भूमि मारवाह जाति के एक गोविन्द नामक क्षत्री की थी। गोविन्द ने उस स्थान पर एक ग्राम बसाने का

सम्बन्ध अत्यंत दीर्घकाल के हैं अर्थात् पंजाब में ब्रिटिशराज्य के आगमन से बहुत पूर्व से चले आते हैं। महाराजा रणजीतसिंह के समय में अमृतसर से केवल व्यापार शुल्क अर्थात् चुंगी की आय ९ लाख रु० वार्षिक की थी।

जबकि पाँचवें गुरू अर्जुन के समय में यह नगर सिक्खों का मक्का बनगया तथा यह और भी अधिक पवित्र समझा जाने लगा और इसके साथ २ इस नगर में यात्रा के लिये आने वाले मनुष्यों का संख्या भी अधिक होगयी तो अमृतसर का व्यापार सम्बन्धी महत्त्व गुरुओंके लिये एक बहुत बड़ी वार्षिक आय का स्थान सिद्ध हुआ।

(३) यह दूसरी घटना जिसने बहुत दर्जे तक गुरुओं की बढ़ती हुई प्रतिष्ठा तथा अकेले बढ़ते हुए प्रभाव में सहायता दी अकबर की मित्रता थी। यह बात ध्यान देने योग्य है कि गुरुओं ने उस समय के राजकुल के अनुग्रहपात्र बनने अथवा उस कुल की मित्रता तक लाभ करने का कदापि तनिकमात्र भी प्रयत्न नहीं किया। गुरुओं की धार्मिकता तथा उनके निस्वार्थ सिद्धान्तों के कारण बड़े तथा छोटे दोनों प्रकार के लोग उनकी ओर खिंचे चले आते थे और जबकि वे अत्यन्त नीच तथा तिरस्कृत मनुष्यों को भी अपनी सम्प्रदाय में सदैव स्वागत पूर्वक भरती करते थे वे कदापि इतने अविज्ञ न थे कि उच्च पदवीवाले तथा शक्तिशाली मनुष्यों को अपने अहंकार युक्त तथा घृणासूचक भावों द्वारा अपना शत्रु बना लें। आज दिन पर्यंत भारत के अनेक टायोजनीज़ इन अहंकारयुक्त तथा घृणासूचक भावों द्वारा धन तथा सांसारिक प्रभुत्व के अपने लिये अत्यन्त तुच्छ पदार्थ समझते हैं तथा इन पदार्थों की अवज्ञापूर्वक हंसी उड़ाते हैं।

अध्याय ३

गुरुओं का बढ़ता हुआ बल तथा उनका बढ़ता हुआ प्रभाव।

गुरुरामदास का कार्य (१५७४-१५८२)

सिक्खों का अब एक पृथक समाज बन चुका था। उनकी संख्या सहस्रों तक पहुंच गयी थी और गुरु अमरदास ने उनको २२ 'मंजी' में विभक्तकर प्रत्येक मंजे को अपने एक धर्माध्यक्ष के अधीन कर दिया था। इस नवीन सम्प्रदाय का प्रभाव अब दिनों दिन बढ़ता जा रहा था। अन्य घटनाओं के साथ साथ निम्न लिखित घटनाओं ने गुरुओं के बल तथा प्रभाव के बढ़ाने में वस्तुतः बहुत बड़ा भाग लिया।

१—सार्वजनिक भवनों तथा नगरों का संस्थापन।

(अ) स्वयं गुरुनानक ने कर्तारपुर नामक एक नये ग्राम को स्थापन किया था जहां पर कि उन्होंने सिक्खों की पहिली धर्मशाला बनायी थी। इस धर्मशाला के साथ साथ उन्होंने एक लंगर भी जारी कर रक्खा था और यहां पर भारत तथा अन्य देशों में जीवन भर भ्रमण करने के पश्चात् अपनी जीवन यात्रा के अन्तिम वर्षों में फिर एक बार अपने कुटुम्बियों सहित रहकर वे अपने अनुयायियों को उपदेश देते रहे।

(३) गुरु अमरदास ने गुरु अंगद की आज्ञानुसार सन १५४६ ई० में व्यास नदी के तट पर 'गोविन्दवाल*' नामक

---

*वास्तव में एक ग्राम की भूमि मारवाह जाति के एक गोविन्द नामक खत्री की थी। गोविन्द ने उस स्थान पर एक ग्राम बसाने का

सम्बन्ध अत्यंत दीर्घकाल से हैं अर्थात् पंजाब में बृटिशराज्य के आगमन से बहुत पूर्व से चले आते हैं। महाराजा रणजीत-सिंह के समय में अमृतसर से केवल व्यापार शुल्क अर्थात् चुंगी की आय ९ लाख रु० वार्षिक की थी।

जबकि पाँचवें गुरु अर्जुन के समय में यह नगर सिक्खों का मक्का बनगया तथा यह और भी अधिक पवित्र समझा जाने लगा और इसके साथ २ इस नगर में यात्रा के लिये आने वाले मनुष्यों का संख्या भी अधिक होगयी तो अमृतसर का व्यापार सम्बन्धी महत्त्व गुरुओं के लिये एक बहुत बड़ी वार्षिक आय का स्थान सिद्ध हुआ।

(३) वह दूसरी घटना जिसने बहुत वर्षों तक गुरुओं की बढ़ती हुई प्रतिष्ठा तथा अरते बढ़ते हुए प्रभाव में सहायता दी अकबर की मित्रता थी। यह बात ध्यान देने योग्य है कि गुरुओं ने उस समय के राजकुल के अनुग्रहपात्र बनने अथवा उस कुल की मित्रता तक लाभ करने का कदापि तनिकमात्र भी प्रयत्न नहीं किया। गुरुओं की धार्मिकता तथा उनके निस्वार्थ सिद्धान्तों के कारण बड़े तथा छोटे दोनों प्रकार के लोग उनकी ओर खिंचे चले आते थे और जबकि वे अत्यन्त नीच तथा निरस्कृत मनुष्यों को भी अपनी सम्प्रदाय में सदैव स्वागत पूर्वक भरती करते थे वे कदापि इतने अविज्ञ न थे कि उच्च पदवीवाले तथा शक्तिशाली मनुष्यों को अपने अहंकार युक्त तथा घृणासूचक भावों द्वारा अपना शत्रु बना लें। आज दिन पर्यंत भारत के अनेक डायोजनीज़ इन अहंकारयुक्त तथा घृणासूचक भावों द्वारा धन तथा सांसारिक प्रभुत्व को अपने लिये अत्यन्त तुच्छ पदार्थ समझते हैं तथा इन पदार्थों को अवज्ञापूर्वक हँसी उड़ाते हैं।

गुरु अमरदास के अनुयायियों में अनेक पहाड़ी राजा भी थे जोकि उस सम्प्रदाय के सामान्य कोष में सहस्त्रों रुपये दान देते थे। किन्तु लोगों की दृष्टि में इस सम्प्रदाय की सबसे बड़ी विजय उस दिन प्राप्त हुई जिस दिन कि गुरू की प्रतिष्ठा सुन कर सम्राट अकबर भी गुरू के द्वार तक आ पहुंचा *।

लाहौर के शासक मिर्जाजाफ़र बेग के चित्त पर गुरु की धार्मिकता तथा उनके उत्कृष्ट चरित्र का गहरा प्रभाव पड़ चुका था। जाफ़र बेग का पुत्र ताहिर बेग चित्तौड़ दुर्ग के परिवेष्टन में अकबर की सेना के साथ गया। चित्तौड़ का परिवेष्टन सम्राट अकबर के हाथों में भी एक अत्यन्त दुष्कर कार्य सिद्ध हुआ। और अकबर ने ईश्वरीय सहायता की आवश्यकता अनुभव की। †

---

*यह विचार किया जाना सम्भव है कि सिक्ख सम्प्रदाय की ओर राज्याधिकारियों का विशेष अनुग्रह दर्शाना उस सम्प्रदाय के लिये अन्त में हानिकारक सिद्ध हो सकता था क्योंकि एक न एक दिन अकबर के स्थापन किये हुए साम्राज्य को गिरा देने में इस सम्प्रदाय को ही एक बहुत बड़ा भाग लेना था। किन्तु गुरु ने समस्त जागीरों तथा अन्य प्रकार की सहायताओं को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। उनका सामयिक सरकार के साथ केवल मित्रता का व्यवहार था और वह किसी प्रकार भी सरकार की सहायता के अधीन न थे। तथा केवल इतनी ही बात से इस सम्प्रदाय को इसके आरम्भ के दिनों में कुछ भी हानि न पहुंच सकती थी।

†निस्सन्देह अकबर एक प्रबुद्ध शासक था किन्तु प्रतीत होता है कि वह अपने समय के धार्मिक मूढ़ विश्वासों से बचा हुआ न था। यद्यपि वह अपने सरपर लुई ११वें के समान अपनी टोपीमें समस्त ईसाई सेण्टों की तसवीरें लेकर न चलता था तथापि यह बात असंदिग्ध है कि आपत्ति के समय में वह सहायता के लिये साधुओं तथा पवित्र मन्दिरों तक पहुंचा करता था। सम्भव है कि उसने ज्वालामुखी के मन्दिर की यात्रा केवल

(२) दूसरा उदाहरण इससे भी कहीं अधिक महत्व का है और यद्यपि पंथप्रकाश में इसका वर्णन नहीं पाया जाता तथापि लतीफ रचित "पंजाब का इतिहास" पृष्ठ २५७ पर यह घटना दी हुई है। एक बार सम्राट अकबर एक बड़ी सेना सहित लगभग एक वर्ष पर्यन्त लाहौर में ठहरा रहा। परिणाम यह हुआ कि चीज़ों के मूल्य बहुत बढ़ गये और पंजाब के निर्धन कृषकों को अन्न की न्यूनता के कारण बहुत कष्ट उठाना पड़ा। जिस समय अकबर लाहौर से प्रस्थान करने की तय्यारियां कर रहा था फ़सल काटने का समय निकट आगया। गुरु ने इस बात को अनुभव किया कि अकबर के जाते ही चीज़ों के मूल्य सहसा घट जावेंगे और वे कृषक लोग जो कि अन्न की न्यूनता के कारण पिछले वर्ष के भीतर ऋणी हो चुके थे सर्वथा नष्ट हो जावेंगे। इस कारण जिस समय अकबर अपने प्रस्थान से पूर्व गुरु को देखने के लिये आया और प्राच्य देशों की रीति के अनुसार अकबर ने गुरु से अपने लिये कोई सेवा पूछी तो गुरु ने सम्राट के सम्मुख कृषकों की अवस्था कह सुनायी और उससे यह प्रार्थना की कि एक वर्ष के लिये समस्त भूमि कर माफ़ कर दिया जावे। अकबर ने सहर्ष स्वीकार कर लिया और इस प्रकार वह निकटवर्ती आपत्ति आने से रोकदी गयी। गुरुकी इस समयोचित मध्यस्थताने उसकी सर्वप्रियताको अत्यन्त बढ़ा दिया विशेष कर माझा तथा मालवा के कृषक इस समय से गुरु को अपना पूज्य समझने लगे। समय बीतने पर माझा तथा मालवाके इन कृषकोंमेंसे ही गुरुसिंहजी गोविन्दसिंहजीके समस्त योद्धा उत्पन्न हुए और अन्त में इन लोगों ने ही सिक्ख मतको एक सामरिक शक्ति बना दिया।

गुरुअमरदास के अनुयायियों में अनेक पहाड़ी राजा भी थे जोकि उस सम्प्रदाय के सामान्य कोष में सहस्रों रुपये दान देते थे। किन्तु लोगों की दृष्टि में इस सम्प्रदाय की सबसे बड़ी विजय उस दिन प्राप्त हुई जिस दिन कि गुरू की प्रतिष्ठा सुन कर सम्राट अकबर भी गुरू के द्वार तक आ पहुंचा * ।

लाहौर के शासक मिर्जाजाफ़र बेग के चित्त पर गुरु की धार्मिकता तथा उनके उत्कृष्ट चरित्र का गहरा प्रभाव पड़ चुका था। जाफ़र बेग का पुत्र ताहिर बेग चित्तौड़ दुर्ग के परिवेष्टन में अकबर की सेना के साथ गया। चित्तौड़ का परिवेष्टन सम्राट अकबर के हाथों में भी एक अत्यन्त दुष्कर कार्य सिद्ध हुआ। और अकबर ने ईश्वरीय सहायता की आवश्यकता अनुभव की। †

*यह विचार किया जाना सम्भव है कि सिक्ख सम्प्रदाय की ओर राज्याधिकारियों का विशेष अनुग्रह दर्शाना उस सम्प्रदाय के लिये अन्त में हानिकारक सिद्ध हो सकता था क्योंकि एक न एक दिन अकबर के स्थापन किये हुए साम्राज्य को गिरा देने में इस सम्प्रदाय को ही एक बहुत बड़ा भाग लेना था। किन्तु गुरू ने समस्त जागीरों तथा अन्य प्रकार की सहायताओं को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। उनका सामयिक सरकार के साथ केवल मित्रता का व्यवहार था और वह किसी प्रकार भी सरकार की सहायता के अधीन न थे। तथा केवल इतनी ही बात से इस सम्प्रदाय को अपने आरम्भ के दिनों में कुछ भी हानि न पहुंच सकती थी।

†निस्सन्देह अकबर एक प्रबुद्ध शासक था किन्तु प्रतीत होता है कि वह अपने समय के कतिपय मृदु विश्वासों से बचा हुआ न था। यद्यपि वह अपने सरपर लुई ११वें के समान अपनी टोपीमें समस्त ईसाईसेण्टों की तसवीरें लेकर न चलता था तथापि यह बात असंदिग्ध है कि आपत्ति के समय में वह सहायता के लिये साधुओं तथा पवित्र मन्दिरों तक पहुंचा करता था। सम्भव है कि उसने ज्वालामुखी के मन्दिर की यात्रा केवल

(२) दूसरा उदाहरण इससे भी कहीं अधिक महत्व का है और यद्यपि पंथप्रकाश में इसका वर्णन नहीं पाया जाता तथापि कर्नाफ़ रचित "पंजाब का इतिहास" पृष्ठ २५० पर यह घटना दी हुई है। एक बार सम्राट अकबर एक बड़ी सेना सहित लगभग एक वर्ष पर्यन्त लाहौर में ठहरा रहा। परिणाम यह हुआ कि चीज़ों के मूल्य बहुत बढ़ गये और पंजाब के निर्धन कृषकों को अन्न की न्यूनता के कारण बहुत कष्ट उठाना पड़ा। जिस समय अकबर लाहौर से प्रस्थान करने की तय्यारियां कर रहा था फ़सल काटने का समय निकट आगया। गुरु ने इस बात को अनुभव किया कि अकबर के जाते ही चीज़ों के मूल्य सहसा घट जावेंगे और वे कृषक लोग जो कि अन्न की न्यूनता के कारण पिछले वर्ष के भीतर ऋणी हो चुके थे सर्वथा नष्ट हो जावेंगे। इस कारण जिस समय अकबर अपने प्रस्थान से पूर्व गुरु को देखने के लिये आया और प्राच्य देशों की रीति के अनुसार अकबर ने गुरु से अपने लिये कोई सेवा पूछी तो गुरु ने सम्राट के सम्मुख कृषकों की अवस्था कह सुनायी और उससे यह प्रार्थना की कि एक वर्ष के लिये समस्त भूमि कर माफ़ कर दिया जावे। अकबर ने सहर्ष स्वीकार कर लिया और इस प्रकार वह निकटवर्ती आपत्ति आने से रोकदी गया। गुरुकी इस समयोचित मध्यस्थताने उसकी सर्वप्रियताको अत्यन्त बढ़ा दिया विशेष कर माझा तथा मालवा के कृषक इस समय से गुरु को अपना पूज्य समझने लगे। समय बीतने पर माझा तथा मालवाके इन कृषकोंमेंसे ही गुरुसिंहजी गोविन्दसिंहजीके समस्त योद्धा उत्पन्न हुए और अन्त में इन लोगों ने ही सिक्ख मतको एक सामरिक शक्ति बना दिया।

(३) तीसरी घटना जिसने गुरुओं के बल तथा उनकी प्रतिष्ठा में वृद्धि की वह गुरुओं के अपने उत्तराधिकारी नियुक्त करने की नीति को बदल देता था। सिक्ख मत के संस्थापक का कदापि यह अर्थ न था कि गुरु की पदवी किसी भी गुरु के वंश में पैतृक करदी जावे। किन्तु यह नियम एक विचित्र प्रकार से तोड़ डाला गया। तीसरे गुरु के एक पुत्र था किन्तु गुरु अपनी पुत्री के साथ इतना अधिक प्रेम रखता था तथा उसका जमाई इतना अधिक आज्ञाकारी धर्मात्मा तथा बुद्धिमान सिद्ध हुआ कि गुरु ने अपनी पुत्री के प्रेम तथा अपने जमाई की भक्ति तथा योग्यता के पारितोषिक रूप निज पुत्र* को छोड़कर गद्दी अपने जमाई के नाम करदी। किन्तु प्रतीत होता है कि गुरु का पुत्री अपने पिता के इस अनुग्रह से सर्वथा सन्तुष्ट न हुई।

गुरु इस समय अत्यन्त वृद्धावस्था को पहुंच चुके थे और प्रतीत होता है कि उनकी पुत्री जो सर्वदा अपने पिता की सानुराग भक्ति में लगी रहती थी अब गुरु के आश्वासन का एक मात्र अवलम्बन रहगयी। यह युवती अपने पिता के शारीरिक सुखों की ओर निरन्तर ध्यान देती रही और अत्यन्त प्रेम तथा सावधानी के साथ उनकी सेवा सुश्रूषा करती रही। कहते हैं कि एक दिन जब कि गुरु स्नान कर

*इस युवक का नाम मोहन था। तथा गुरु लोग अपने उत्तराधिकारियों में जिन जिन गुणों का होना आवश्यक समझते थे वे सब उसमें न थे क्योंकि वह अत्याधिक परलोक निष्ठ था और अपने रात्रि दिन पूर्ण एकान्त में योगाभ्यास तथा तप करने में बिताया करता था।

अध्याय ६

धर्म द्वारा सिक्खों की सत्ता का प्रतिष्ठापन ।

गुरु अर्जुन का सामाजिक संविधान (१५८१-१६०६)

इस समय सिक्ख लोग अपनी पृथक सामाजिक व्यक्तिता का प्रतिपादन कर चुके थे। उनकी महत्वाकांक्षाओं को एक स्पष्ट सांसारिक स्वरूप दिया जा चुका था। गुरू अमरदास के २२ प्रदेशों अथवा 'मंजों' के संस्थापन द्वारा सामाजिक संविधान संगठन की थोड़ी बहुत नींव रक्खी जा चुकी थी। और गुरू अमरदास तथा उसके उत्तराधिकारी द्वारा स्थापित सार्वजनिक संस्थाओं ने तथा सम्राट अकबर की मित्रता द्वारा प्राप्त हुई प्रतिष्ठा ने सिक्ख सम्प्रदाय की नींवों को बहुत कुछ पुष्ट कर दिया था। ठीक इस समय रंगभूमि में एक ऐसे मनुष्य ने प्रवेश किया जो कि जन्म से ही कवि था क्रियात्मक दार्शनिक था एक प्रबल समाज रचयिता था तथा एक महान राजनीतिज्ञ था। जब कि पांचवां गुरु अर्जुन अपने किसी भी उत्तराधिकारी से धार्मिकता तथा आध्यात्मिक उन्नति में कम न था वह उन गुणों में अपने प्रत्येक उत्तराधिकारी बढ़ कर था जो कि राज्य सत्ता प्राप्त करने के लिये आवश्यक है। अभी तक सशस्त्र प्रतिरोध का समय न आया था। अकबर की उदारता तथा उस के पुत्र के मृदु सौजन्य के कारण स्वेच्छाचारी मुगलों का युग अभी तक मर्मभेदी न प्रतीत होता था। इस कारण क्रियात्मक प्रतिरोध की इतनी अधिक आवश्यकता अनुभव न की जाती थी और अकबर तथा

(३) तीसरी घटना जिसने गुरुओं के यश तथा उनकी प्रतिष्ठा में वृद्धि की वह गुरुओं के अपने उत्तराधिकारी नियुक्त करने की नीति को बदल देना था। सिक्ख मत के संस्थापक का कदापि यह अर्थ न था कि गुरु की पदवी किसी भी गुरु के वंश में पैतृक करदी जावे। किन्तु यह नियम एक विचित्र प्रकार से तोड़ डाला गया। तीसरे गुरु के एक पुत्र था* किन्तु गुरु अपनी पुत्री के साथ इतना अधिक प्रेम रखता था तथा उसका जमाई इतना अधिक आज्ञाकारी धर्मात्मा तथा बुद्धिमान सिद्ध हुआ कि गुरु ने अपनी पुत्री के प्रेम तथा अपने जमाई की भक्ति तथा योग्यता के पारितोषिक रूप निज पुत्र को छोड़कर गद्दी अपने जमाई के नाम करदी। किन्तु प्रतीत होता है कि गुरु की पुत्री अपने पिता के इस अनुग्रह से सर्वथा सन्तुष्ट न हुई।

गुरु इस समय अत्यन्त वृद्धावस्था को पहुंच चुके थे और प्रतीत होता है कि उनकी पुत्री जो सर्वदा अपने पिता की सानुराग भक्ति में लगी रहती थी अब गुरु के आश्वासन का एक मात्र अवलम्बन रहगयी। यह युवती अपने पिता के शारीरिक सुखों की ओर निरन्तर ध्यान देती रही और अत्यन्त प्रेम तथा सावधानी के साथ उनकी सेवा सुश्रूषा करती रही। कहते हैं कि एक दिन जब कि गुरु स्नान कर

---

*इस युवक का नाम मोहन था। तथा गुरु लोग अपने उत्तराधिकारियों में जिन जिन गुणों का होना आवश्यक समझते थे वे सब उसमें न थे क्योंकि वह अत्याधिक परलोक निष्ठ था और अपने रात्रि दिन पूर्ण एकान्त में योगाभ्यास तथा तप करने में बिताया करता था।

अध्याय ४

धर्म द्वारा सिक्खों की सत्ता का प्रतिष्ठापन।

गुरु अर्जुन का सामाजिक संविधान (१५८१-१६०६)

उन समय सिक्ख लोग अपनी पृथक सामाजिक व्यक्तिमत्ता का प्रतिपादन कर चुके थे। उनकी महत्वाकांक्षा का एक स्पष्ट सांसारिक स्वरूप दिया जा चुका था। गुरु अमरदास के २२ प्रदेशों अथवा 'मंजों' के संस्थापन द्वारा सामाजिक संविधान संगठन की गाढ़ी बहुत नींव रक्खी जा चुकी थी। और गुरु अमरदास तथा उसके उत्तराधिकारी द्वारा स्थापित सार्वजनिक संस्थाओं के तथा सम्राट अकबर की मित्रता द्वारा प्राप्त हुई प्रतिष्ठा ने सिक्ख सम्प्रदाय की नींवों को बहुत कुछ पुष्ट कर दिया था। ठीक इस समय रंगभूमि में एक ऐसे मनुष्य ने प्रवेश किया जो कि जन्म से ही कवि था क्रियात्मक दार्शनिक था एक प्रबल समाज रचयिता था तथा एक महान राजनीतिज्ञ था। जब कि पांचवां गुरु अर्जुन अपने किसी भी उत्तराधिकारी से धार्मिकता तथा आध्यात्मिक उन्नति में कम न था वह उन गुणों में अपने प्रत्येक उत्तराधिकारी बढ़ कर था जो कि राज्य सत्ता प्राप्त करने के लिये आवश्यक है। अभी तक सशस्त्र प्रतिरोध का समय न आया था। अकबर की उदारता तथा उसके पुत्र के मृदु सौजन्य के कारण स्वेच्छाचारी मुगलों का युग अभी तक मर्मभेदी न प्रतीत होता था। इस कारण क्रियात्मक प्रतिरोध की इतनी बड़ी आवश्यकता अनुभव न की जाती थी और अकबर तथा

जहांगीर का बल इतना बढ़ा हुआ था कि अभी तक किसी भी राजनैतिक नेताको महत्त्वाकांक्षाका पूरा होनेका खुला अवकाश न मिल सकता था। और यदि अर्जुनको राजनैतिक सत्ता लाभ करनेकी कुछ आकांक्षा होगी भी तामी उसने इस बातको अनुभव कर लिया होगा कि उस आकांक्षाको पूरा करने का अभी समय न आया था इस कारण उसने स्वाभाविक दूरदर्शिता तथा धैर्य के साथ अपने अनुयायियों को प्रशान्त रीति से संगठित करने का कार्य आरम्भ किया।

इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये गुरुअर्जुन ने जिन २ उपायों का प्रयोग किया वे इस प्रकार वर्णन किये जासकते हैं।

(१) 'आदिग्रंथ'का संग्रह करना–उस समय तक सिक्खों के पास अपने मत की केवल एकही पुस्तक थी अर्थात् गुरुनानक का वह जीवनचरित्र जिस को कि दूसरे गुरु ने बाला के वर्णन किये हुए वृत्तान्तोंसे संग्रह किया था। ज्योंही कि गुरु अर्जुन गद्दी परबैठा उसने अपने अनुयायियों के हाथों में किसी न किसी प्रकार की एक "इञ्जिल" देना आवश्यक समझा और सबसे पहिले उसने इसही न्यूनता को पूरा करने की ओर ध्यान दिया। पहिले तीन गुरुओं के लेखों की प्रतियां तीसरे गुरु के पुत्र मोहन से प्राप्त कीगईं। गुरुरामदास के लेख गुरु अर्जुनने स्वयं अपने पाससे उपस्थित कियेछ। इनके साथ

छयह एक अत्यन्त विचित्र बात है कि चार गुरुओं को छोड़कर जिन में से एक ने बाल्यावस्था में ही शरीर त्याग दिया था शेष समस्त गुरु कवि थे तथा उनमें से कई अत्यन्त उच्च श्रेणी के कवि थे। निस्सन्देह इस बात से यह प्रतीत होता है कि 'ग्रन्थ' के विविध भागों के रचयिता जो जो मनुष्य बताये जाते हैं वास्तव में वे वे मनुष्य ही उन उन भागों के रचयिता थे। ग्रंथ प्रकाश में यह विचार किया गया है कि गुरु अर्जुन ने

अर्जुन के अपने लेख, कतिपय प्रसिद्ध भक्तों के लेखोंमें से छांटे हुए कुछ लेख तथा स्वयं गुरुओं की प्रशंसा में कुछ कवियों तथा वन्दियों की स्तुतियां भी मिला दीगयीं। इस संग्रह के कार्य में गुरुअर्जुन के जीवन के कई वर्ष व्यतीत हुए और जिस समय यह संग्रह समाप्त हुआ तुरन्त सिक्खों की दृष्टि में यह वेदों, इञ्जील अथवा कुरान से बढ़कर समझा जाने लगा* ।

(२) आदि ग्रन्थ के संग्रह करने के साथ साथ गुरु अर्जुन ने सिक्खों के लिये एक मक्का बना देने का भी प्रयत्न किया। अमृतसर का नगर जिसकी नींव गुरू रामदास ने रक्खी थी पञ्जाब प्रान्त के केन्द्र में उपस्थित है तथा वर्तमान सिक्ख मत के कोट माझा प्रदेश के शिरे पर है। उस समय इस नगर के स्थान पर एक छोटा सा ग्राम था जिसको उसके संस्थापकके नामपर रामदासपुर कहा जाता था। गुरू अर्जुनने इस अत्यन्त माकूले स्थान पर एक समृद्ध नगर रखनेके महत्व को अनुभव किया और इस छोटे से ग्राम को बढ़ा कर उसे एक महान नगर बना देनेका कार्य आरम्भकर दिया। गुरूरामदास ने यहां पर अमृत का वह सर बना दिया था जो कि उस समय भी सिक्खों की दृष्टि में पवित्र गंगा का प्रतियोगी बनता जारहा था†। गुरूअर्जुन ने इस विशाल तड़ागके मध्यमें

अपने कई लेखों को अथवा निबन्धों को कुछ ऐसे भक्तों के लेखों के नाम से ग्रन्थ में सम्मिलित कर दिया जोकि ग्रन्थ के लेखकों में गिने जाते हैं किन्तु इन लेखों की भाषा इस विचार को मिथ्या सिद्ध करती है।

* इस पुस्तक का अधिक वृत्तान्त "सिक्खों के धार्मिक ग्रन्थ" शीर्षक परिशिष्ट में देखो।

† यद्यपि सिक्ख लोग आजदिन तक अपने मुर्दों के फूल हरिद्वार को ले जाते हैं तथापि अमृतसर उनका विशेष तीर्थस्थान है और आजकल

हर मन्दिर बनवा कर उस स्थान की पवित्रता तथा उसके वैभव को और भी अधिक बढ़ा दिया यही मन्दिर अपने वर्त्तमान स्वरूप में अमृतसर के स्वर्णमय मन्दिर के नाम से भारत तथा संसार के अद्भुत पदार्थों में से एक गिना जाता है।

(३) गुरू अर्जुनने केवल इस नये नगरको सिक्खोंका विशेष तीर्थस्थान बनाकर ही उसके महत्व को नहीं बढ़ाया वरन उसने उसे अपना प्रधान निवास स्थान बनाकर उसे सिक्खों के समस्त व्यापारों का केन्द्र बना दिया। वास्तव में यह नगर उस प्रजातांत्रिक राज्य की राजधानी बन गया जो कि अभी तक केवल बाल्यावस्थामेंही था तथा जिसको कि गुरूअर्जुनकी असाधारण बुद्धिमत्ता धीरे धीरे तथा शान्ति के साथ निर्माण कर रही थी। पंथ प्रकाश में लिखा है कि गुरू ने अपने मुख्य मुख्य अनुयायियों को भी अमृतसर में आकर बसने के लिये प्रेरणा की। भाई साहलो उस समय का एक सैटिलमेण्ट कमिश्नर था और अमृतसर का एक विशेष भाग अभीतक उसके नाम से प्रसिद्ध है।

(४) गुरू रामदास की प्रार्थना पर अकबर के पूर्ण एक वर्ष का भूमि कर माफ़ कर देने से पंजाब के कृषकों में सिक्ख मत अत्यन्त सर्वप्रिय बन गया था। किन्तु चेनाब नदी के उत्तर की ओर के कृषक प्रायः समस्त मुसलमान थे। और चेनाब तथा रावी के बीच में रहने वाले कृषकों में से लगभग आधे मुसलमान तथा आधे हिन्दू थे परन्तु लाहौर के निकट होने के कारण इन दोनों नदियों के बीच के प्रदेश में सामयिक शासकों का प्रभाव अत्यन्त बढ़ा हुआ था। इस कारण गुरुओं

उनमें से अधिकांश केवल मात्र अपने मुर्दों की अस्थियां प्रवाह करने के लिये ही गंगा की यात्रा करते हैं।

ने बारी दोआब* नामक प्रदेश की ओर विशेष ध्यान दिया। इस प्रदेश के कृषक प्रायः समस्त हिन्दू ही थे और आज दिन तक हिन्दू ही हैं। सम्भवतः गुरुओं के इस ओर ध्यान देने का एक कारण यह भी कहा है कि पंजाब के अन्य भागों की अपेक्षा गुरु लोग स्वयं इस भाग से अधिक परिचित थे तथा सर्वथा मार्मिक† होने के कारण यह प्रदेश मुसलमान शासकों की प्रत्यक्ष रोक टोक तथा अत्याचारों से अधिक बचा हुआ था। गुरु अर्जुन ने अमृतसर के नगर को संस्थापन कर उसे अपने व्यापारों का एक प्रधान केन्द्र बना लिया था। इस क्रिया द्वारा मांझा प्रदेश के जाटों में सिक्खमत के फैलने में बहुत बड़ी सहायता मिली थी। और अब गुरु ने इस प्रदेश के ठीक बीचमें एक दूसरे महान केन्द्रको स्थापनकर नवीन मत तथा विचारोंको मानों प्रजाके निज द्वारों तक हीं पहुँचा दिया। तरन तारन का नगर स्थापन किया गया और उसके निकट एक बहुत बड़ा तड़ाग‡ बनाया गया। "तरन तारन मांझा अथवा मध्य भूमि नामक प्रदेश की राजधानी है। यह प्रदेश

* रावी तथा व्यास नदियों के बीच का प्रदेश।

† मांझा प्रदेश के समस्त मुख्य मुख्य नगर यथा अमृतसर, अटारी तरनतारन, जण्डियाला, बाबानाना रामदास, मजिठा, राजसांसी या तो गुरुओं ही के स्थापन किये हुए हैं अथवा दूसरों ने गुरुओं के समय के निकट अथवा उनके पीछे उन्हें स्थापन किया है। अमृतसर ज़िले का गज़ेटी-यर देखो।

‡ इस तड़ाग के नाम पर ही नगर का नाम पड़ा। 'तरनतारन' का अर्थ 'तैरने में सहायक' अथवा "मोक्ष" या "पवित्रकारने वाला" जल है। सिक्खों में यह एक सामान्य विचार है कि इसके जल से कोढ़ अच्छा हो जाता है। इसही कारण यहां पर कोढ़ियों का एक बहुत बड़ा उपनिवेश बना हुआ है।

रावी से व्यास तक फैला हुआ है, हिन्दोस्तानी सेना के वीरों का पालन स्थान है और दृढ़ांग तथा बलवान कृषकों की जन्म भूमि है।† अमृतसर तथा तरन तारन से जिस ज्योति (की किरणों) का विकिरण हुआ उस ज्योति द्वारा कृषकों ने अपने बल को अनुभव कर लिया तथा उस ज्योति ने प्रशान्त तथा परिश्रमी कृषकों से बदल कर उन्हें प्रचण्ड योधा तथा उस भूमि के शासक बना दिया जिसको कि उनसे कुछ पीढ़ियां पूर्व ही उनके पूर्वजों ने जोता था।

(५) गुरूअमरदास देशके उस भागको जिसमें सिक्खमतका प्रचार था २२ भागोंमें विभक्त करना गुरू रामदासका गुरुत्वकी गद्दी को पैतृक बनादेना, अमृतसर का संस्थापन जोकि सिक्ख व्यापारों का विशेष केन्द्र बनगया और एक प्रकार की सिक्ख-राजधानी होगया और ग्रंथ साहब का संग्रहण जोकि धर्म-शास्त्र तथा लौकिक न्यायशास्त्र का काम देनेलगा,इन सब बातों ने मिलकर सिक्खजाति की रचना में एक ऐसे प्रारम्भिक धर्म प्रधान राज्य के प्राथमिक तत्व उत्पन्न करदिये थे जिस राज्य का कि गुरूही वास्तविक राजा (सच्चा बादशाह) था। अब गुरूअर्जुनने प्रजासे कर संग्रह करनेके कार्यको अधिक पुष्ट तथा असंदिग्ध नीव पर रखकर राजनैतिक संविधान के एक नये तथा कहीं अधिक महत्त्ववाले उपाय का प्रयोग किया। इस समय तक सिक्ख सम्प्रदाय की आय समाज के अयाचित चन्दों पर निर्भर करती थी। सिक्खों की संख्या बहुत कुछ बढ़ चुकी थी और अब वे लोग पेशावरसे दिल्ली तक पंजाबके समस्त भागोंमें फैले हुए थे। इस कारण इन चन्दों अथा भेंटों का एकत्रित करना अत्यन्त कठिन होगया और बहुधा ये भेंटें

† अमृतसर ज़िले का गज़ेटीअर देखो (१८८३-८४)

गुरुओंके कोश तक भी न पहुचती थीं। गुरु अर्जुनने इस कठिनाईको दो प्रकार से दूर किया।

(अ) सबसे पहिले इन भेंटों का परिमाण भेंट देनेवालों की अनुमति से नियत करदिया गया। जिससे कारण गुरु अपने वार्षिक आय तथा व्यय के हिसाबको पहिले की अपेक्षा अब कहीं अधिक असंदिग्धता के साथ व्यवस्थित कर सकता था। क्योंकि गुरुओं का कर मुगलों के कर की अपेक्षा भी अधिक उत्साह के साथ तथा अधिक नियमपूर्वक अदा किया जाता था।

(इ) दूसरे भेंट एकत्रित करने की कठिनाई दूर करने के लिये सिक्खमत के २२ प्रदेशों में से प्रत्येक में एक २ मसन्द अथवा करग्राहक नियुक्त कर दिया गया। प्रत्येक कर ग्राहक* के दिन का यह कर्तव्य था कि वह गुरु के कर को ग्रहण कर बैसाखी उसे गुरु के पास अमृतसर ले आवे। उस दिन अमृतसर में गुरु का एक बड़ा दरबार लगता था जिसमें कि समस्त धर्म परायण तथा धनाढय सिक्ख एकत्रित होते थे।

---

* आरम्भ में ये कर ग्राहक अपनी विशेष धार्मिकता सरलता तथा उच्च पदवी के कारण नियुक्त किये गये थे और सम्भवत. वेतन आदिक न पाते थे। किन्तु शीघ्रही यह अधिकार प्रथम अधिकारियों के वन्शों में पैतृक हो गया और धीरे धीरे अयोग्य मनुष्यों के हाथों में पड कर स्वार्थ सिद्धि तथा अन्याय का एक साधन बन गया। अन्तमें मसन्दोंके विरुद्ध शिकायतें इतनी बढ़गयीं कि गुरु गोविन्द सिंह को ये पद्धतियां सर्वथा तोड़ देनी पड़ी इस कारण आज दिन कोई सिक्ख मसन्द नहीं हैं यद्यपि बन्दा की स्थापन की हुई सम्प्रदायमें यह पद्धति अभी तक चली आरही है और मसन्द 'भाइयों' के नाम से उपस्थित हैं (बन्दा की जीवनी, प्राग्सादीवान) प्रतीत होता है कि "मसन्द" शब्द 'मसनद' का अपभ्रंश है। 'मसनद' 'मसनद-ए आली'

(६) एक और कार्य गुरू अर्जुनने आरम्भ किया जिसका उद्देश्य गुरू को अनुयायियों को साहस वाले विकट तथा दुष्कर कार्य करने के लिये उत्तेजित करना था। इस उद्देश को सामने रखते हुये गुरू ने अपने बहुत से अनुयायियों को तुरकिस्तान भेजा ताकि वे वहां से घोड़े मोल लें और उन्हें आकर भारत में वेचें। यह कार्य यद्यपि बाहिरी दृष्टि में अत्यन्त साधारण* प्रतीत होता है तथापि सिक्ख राज्य के बढ़ते हुए बल को इस से अनेक प्रकार का लाभ पहुंचा।

का संक्षेप है जोकि मुग़ल शासकों (गवर्नरों) की उपाधि थी। यह बात सिक्खों के बढ़ते हुए बल का एक दूसरा प्रमाण है। जब गुरू 'सच्चा बादशाह' बन गया तो उसके वाइसरायों का 'मसनद्-ए आली' बनना स्वाभाविक था।

* एक बार एक शिक्षित सिक्ख से इस विषय में मेरा वार्तालाप हो रहा था। मैंने संकेत किया कि सम्भवतः घोड़ों का व्यापार आरम्भ करने में गुरु का कुछ राजनैतिक उद्देश्य था। वह सज्जन चकित रह गया क्योंकि अनेक सिक्खों के समान उसने कभी भी यह विचार न किया था कि गुरू अर्जुन की किसी भी चेष्टा अथवा साधनमें किसी प्रकारका भी राजनैतिक उद्देश्य किया हुआ था। किन्तु यह जानते हुए कि सिक्ख गुरुओं में अर्जुन ही सब से पहिला महान समाज सगठन था तथा वास्तव में वह ही सिक्ख राज्य का संस्थापक था यह समझना कि उसने अपने निर्माण किये हुए छोटे से राज्य की महती भावी सम्भावनाओं में कभी भी विश्वास नहीं किया उसकी बुद्धिमता का तिरस्कार करना है। इन्दस नदी के पार घोड़ों का व्यापार करने के विषय में लगभग समस्त इतिहास लेखकों का इस घटना को वर्णन करना ही प्रकट करता है कि यह एक महत्व की बात थी और इसके बढ़ाने में गुरु का कुछ विशेष उद्देश्य था।

(अ) सब से प्रथम इस कार्य ने उस बन्धन को तोड़ दिया जो कि हिन्दुओं को इन्दस के पार जाने से रोकता था और इस प्रकार जाति भेद की कठोरता तथा हिन्दुओं के मूढ़ विश्वासों को नपफलता के साथ एक और प्रबल निर्घात पहुंचाया। इस के अतिरिक्त इन्दस के पार के मुसलमानों जैसे धर्मोन्मत्त तथा हिंस्र लोगों में से बच कर निकल आने के लिये पूर्ण श्रद्धा तथा प्रबल चरित्र की आवश्यकता थी। इस कारण इस कार्य ने सिक्खों की श्रद्धा को परख कर उस श्रद्धा को अधिक पुष्ट कर दिया।

(इ) उन दिनों घोड़ों का व्यापार बड़े लाभ का व्यापार था इस कारण इस व्यापार ने सिक्ख व्यापारियों का धन बढ़ा दिया और गुरू के कोष में भी इस के द्वारा अधिक अधिक धन आया। *

(उ) इस कार्य ने सिक्खों में घोड़े की सवारी की ओर रुचि करदी और इस प्रकार खालसा की भावी सेनाओं की नींव रखी। धीरे धीरे ये लोग उत्तरीय भारत के सर्वोत्कृष्ट घुड़सवार बन गये।†

---

* प्रत्येक धर्मात्मा सिक्ख अपनी आयका 'दसवन्ध' अर्थात् दशमांश सम्प्रदाय के कोष के लिये पृथक कर दिया करता था। इस दसवन्ध ने ही साम्प्रदायिक कोषमें बहुत कुछ वृद्धिकी होगी किन्तु सम्भव है कि यह व्यापार अथवा कम से कम इसका एक बड़ा भाग सम्प्रदाय के सार्वजनिक धन से ही चलाया जाता था और इस लिये व्यापार के लाभ का अधिकांश साम्प्रदायिक कोष में ही जाता था

† रणजीतसिंह के समय से पूर्व समस्त सिक्ख सेना घुड़सवारों ही की होती थी।

(७) पैतृक हो जानेके कारण गुरु की गद्दी का स्वरूप उस समय बदल चुका था। अब अनुयायियों की संख्या बहुत अधिक हो गयी आय भी बहुत बढ़ गयी और यह सम्प्रदाय बढ़कर एक प्रकार का पृथक राज्य बन गया। इस कारण गुरू अर्जुन ने जिस समाज का कि वह अध्यक्ष था उस समाज की सामयिक अवस्था के अनुसार अपने रहन सहन के ढग को भी बदल दिया।* अर्थात गुरुनानक से लेकर रामदास पर्यन्त उसके समस्त पूर्वाधिकारी अत्यन्त सरल तथा तपस्वियों का सा जीवन व्यतीत करते रहे थे किन्तु अर्जुन ने गुरु की गद्दी का स्वरूपही सर्वथा बदल दिया। यद्यपि वह स्वयं एक सरल स्वभाव तथा अत्यन्त विनयशील● मनुष्य था तथापि उसका दरबार शोभा तथा वैभव का स्थान बन गया और विशाल भवनों डेरों, घोड़ों तथा कोश ने उसका राजकीय दरबार का सा स्वरूप बना दिया। •

*गुरु अर्जुन के धनाढ्य होने के विषय में 'पथ प्रकाश' का रचयिता एक लोक कथा को वर्णन करता है। कहते हैं कि संसार के धन तथा ऐश्वर्य को गुरुनानक ने अपने से १२ मील दूर रक्खा और अंगद ने अपने से ६ मील दूर रक्खा। वह बल तथा ऐश्वर्य से अमरदास के द्वार को खट खटाता रहा और गुरु रामदास के चरणों पर आ गिरा जब कि अर्जुन के समय में उसे घर के भीतर आने की अनुज्ञा देदी गयी। यह कल्पित कथा सिक्खों के सामाजिक तथा राजनैतिक बल के धीरे धीरे बढ़ने को बड़ी सुन्दरता के साथ वर्णन करती है।

●अर्जुन की दाढ़ी अत्यन्त लम्बी थी। गुरु नानक का संयमी पुत्र श्रीचन्द उस समय जीवित था और उसकी आयु लगभग १०० वर्ष की थी। जब अर्जुन उससे मिलने के लिये गये तो वृद्ध मुनि ने अर्जुन से पूछा कि आपने अपनी दाढ़ी इतनी क्यों बढ़ा रक्खी है। अर्जुन ने उत्तर दिया,

वास्तव में गुरू अर्जुन की गुरुत्व में सिक्खों ने बहुत बड़ी उन्नति की थी। धीरे धीरे एक प्रशान्त तथा अप्रगल्भ राज्य बन गया था और 'सच्चे बादशाह' गुरू के नेतृत्व में सिक्ख लोग "साम्राज्य के भीतर एक प्रकार के स्वराज्य के अभ्यस्त होगये थे"।* सिक्खों का बल तथा उनकी प्रतिष्ठा बढ़ गयी थी और वे वेग के साथ निज प्रान्त के राजनैतिक जीवन का एक आवश्यक अंग बनते जारहे थे। इस स्थान पर दो ऐसी घटनाओं का वर्णन करना उचित प्रतीत होता है जिनसे इस बात का पता लगता है कि गुरू अर्जुन के राज्य में सिक्ख लोग किसी उच्च पदवी तक पहुँच चुके थे।

पहिली घटना यह है कि जब शहज़ादा खुसरो अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह खड़ा करके पंजाब में भाग कर आया* और उसने वहां आश्रय लिया तो वह गुरू के पास सहायता मांगने के लिये आया। गुरू ने उस समय तक युद्ध के साधन सामग्री एकत्रित करना आरम्भ न किया था तथापि उसने शहज़ादे को बहुत कुछ धन दिया और युद्ध में उसकी विजय प्राप्ति के लिये प्रार्थना कर उसके साथ अपनी सहानुभूति प्रकट की। दूसरी घटना जिससे गुरु के राजनैतिक गौरव का पता लगता है वह यह है कि लाहौर के दीवान चन्दूशाह की सुन्दर कन्या को वरने के लिये गुरू के पुत्र को चुना गया।

"श्रीमान् जैसे सन्तों के चरण पोंछने के लिये।" भाईचन्द ने यह सुनकर कहा कि "इस विनयशीलता द्वारा ही आपको गुरुनानक का सिंहासन प्राप्त हुआ है।"

*मुहसिन फ़ानी 'दबिस्तान'

*१६०६ ई० में।

सिक्खों के इतिहास में ये दोनों घटनाएं अत्यन्त महत्व की हैं क्योंकि इन दोनों से जो जो परिणाम उत्पन्न हुए उन परिणामों ने ही स्पष्ट अथवा अस्पष्ट रूप से सिक्ख बल के बढ़ने में सहायता दी और उनके द्वारा ही सिक्खों का युद्ध की तय्यारियां करना पहिले पहल आरम्भ हुआ।

अध्याय ५

शासकों के अभिद्रोह से विवश हो सिक्खोंका शस्त्र संभालना

वह दूसरी बड़ी उत्तेजना जिसने सिक्ख बल के बढ़ने में सहायता दी तथा जिसने शीघ्र ही सिक्ख समाज को एक राजनैतिक समाज में परिवर्तित कर दिया उस समय की मुसलिम सरकार के उन अभिद्रोहों द्वारा प्राप्त हुई थी जो उन की ओर से सिक्खों पर नियमानुसार किये जा रहे थे। इन अभिद्रोहों का इतिहास उन समस्त उपायों का इतिहास है जिनका कि एक स्वेच्छाचारी सरकार को किसी हानिकर समाज की बढ़ती को रोकने के लिये प्रयोग करना पड़ता है। धमकियां, अभियोग, दण्ड, कारागार, देश निकाला, शारीरिक पीड़ाएं, फांसी, न्याय की रक्षा बाहर कर देना, वध, ये समस्त उपाय एक एक कर उस जाति के रचयिताओं के विरुद्ध काममें लाये गये जिस जाति के लिये एक दिन पंजाब का शासन मुग़लों के हाथ से छीन लेना बदा हुआ था। गुरु नानक के अनुयायियों ने इन समस्त कष्टों को बड़े धैर्य तथा वीरता के साथ सहन किया और प्रत्येक कठिन परीक्षा में से ये लोग पूर्वकी अपेक्षा अधिक शुद्ध तथा अधिक बलवान होकर निकले। इन कष्टों द्वारा उनका उत्साह और भी अधिक बढ़ गया और शासकोंकी ओर अशमनीय घृणा अनुभव करने के कारण उनका नाश करने के लिये उन्होंने और भी अधिक कठिन प्रण किये। वे इस विश्वास

पर चलते थे कि "निज प्राण की बल देने वाले सेवकों का रक्त ही प्रत्येक सम्प्रदाय की नींव को पक्का करने वाला चूना होता है, और उन्होंने इस विश्वास की सत्यता को अपनी अन्तिम विजय द्वारा सिद्ध कर दिखाया। उन्हें केवल एक ऐसी सम्प्रदाय के ही स्थापन करने में विजय प्राप्त नहीं हुई जिसे पंजाब के अधिकांश हिन्दू अभी तक मानते हैं, वरन् उन्होंने एक ऐसा राज्य स्थापन किया जिसने कि हिन्दू गौरव के उस शोभित दिन को सूर्यास्त का एक अत्यन्त देदीप्यमान दृश्य दिखला दिया।

पहिला अभियोग।

इन अभिद्रोहों का श्रीगणेश गुरू अर्जुन के समय में ही हो गया था। गुरू अर्जुन न केवल सिक्ख जाति का पहिला बड़ा रचयिता ही था वरन् सब से पहिले उसही के मस्तक यह बलिदान का शुभ तिलक लगना बदा था। किसी प्रकार की व्यवस्थित समाज भी स्वेच्छाचारी शासन के लिये भय का कारण होती है। और जो निबिड़ता कि उठती हुई सिक्ख समाज अर्जुन के आधीन प्राप्त कर रही थी वह स्वयम् ही गुरू के सिर पर राजकीय कोप लाने के लिये पर्याप्त थी। परन्तु दो विशेष घटनाओं के कारण यह विपत्ति और भी जल्दी आपड़ी जिन में से कम से कम एक घटना तो सर्वथा 'आकस्मिक' ही था। गुरु ने राजद्रोही शाहज़ादे खुसरो का खुल्लम खुल्ला साथ देने में बड़ी ग़लती की थी और जैसा कि हम पिछले अध्याय में लिख चुके हैं गुरु ने शाहज़ादे को धन से सहायता की थी। दूसरी घटना यह थी कि लाहौर के दीवान चन्दूशाह के इस प्रस्ताव को कि उसकी पुत्री के साथ गुरू

अपने पुत्र का सम्बन्ध कर देवे गुरू ने स्वीकार* नहीं किया था। लाहौर का प्रतिष्ठित दीवान इस अपमान को न सह सकता था। उसने बार बार यही प्रस्ताव उपस्थित किया परन्तु गुरू ने भी बार बार उसे अस्वीकार† किया। इस पर दीवान को बड़ा क्रोध आया और उसने इस धृष्टता के लिये गुरु को दण्ड देने का सङ्कल्प कर लिया। इस उद्देश्यको सामने रख दीवान ने सम्राट् को सूचना दी कि "गुरू अर्जुन के संग्रह किये हुए, आदि ग्रन्थ, में राजद्रोही विचार तथा हिन्दू और मुसलमान धर्मों पर द्वेष पूर्ण आक्षेप भरे हुए हैं। परन्तु उदार अकबर को ग्रन्थके अन्तर्गत विषयों की परीक्षा करनेसे इस बात का पूर्ण निश्चय होगया कि यह पुस्तक भक्ति विषयक तथा निरुपद्रवी ही थी।

---

*दीवान चन्दूशाह का पुरोहित जिसको कि दीवान की पुत्री के लिये वर ढूंढने का कार्य सौंपा गया था अर्जुन के यश तथा ऐश्वर्य और उसके पुत्र के व्यक्तिगत गुणों को देख मोहित हो गया था। इसही कारण दीवान की पुत्री के लिये उसने गुरु के पुत्र को चुन लिया था। अर्जुन यद्यपि ऐश्वर्यवान था तथापि उसकी आय उसके अनुयायियों की आय के दशांश मिलकर बनती थी, इस बात पर चन्द्र ने गुरु के लिये बड़े अपमान सूचक शब्दों का प्रयोग किया। अपने और गुरु में भेद बताते हुये उसने कहा कि "मैं एक प्रासाद की सब से ऊंच भूमि के समान हूं और गुरु मोरी के समान है।" गुरु को ये शब्द सुन कर बड़ा क्रोध आया और यद्यपि गुरु की इन ने ही उस के प्राण लिवाये तथापि उस के आत्मगौरव ने उसे यह प्रस्ताव स्वीकार करने की अनुज्ञा न दी।

† यह प्रस्ताव इतने बार बार इस लिये उपस्थित किया गया क्योंकि मान अपमान के एक मिथ्या विचार के कारण एक भद्र क्षत्री अपनी लड़की के लिये एक बार वर चुनकर फिर किसी दूसरे से उस का विवाह करने को उद्यत न हो सकता था।

इस तिरस्कार द्वारा अत्यंत निराश तथा व्यथित होकर चन्दू गुरू को नाश करने के अधिक उत्तम अवसर की ताक में रहा यहां तक कि उसके गुरू के राजद्रोही शाहज़ादे का साथ देने में एक अत्युत्तम अवसर हाथ आया। उसकी चालों द्वारा अब गुरु पर राजद्रोह* का दोष लगाया गया और इस अपराध में उस पर दो लाख रुपये जुरमाना किया गया। आज्ञाकारी सिक्खों ने यह दंड भरने के लिये तुरन्त चन्दा इकट्ठा करना आरम्भ कर दिया। परन्तु गुरू ने उन को रोक दिया और जुरमाना देने के स्थान पर कारावास में रहना अधिक उत्तम समझा। चन्दू ने गुरू की ज़मानत दे दी और गुरू को छुडाकर अपने निरोध में ले लिया और फिर उसही पुराने विवाह वाले प्रस्ताव को उसके सामने उपस्थित किया। परन्तु गुरू अपने हठ पक्का रहा। अंत को १६०६ ई० में अत्यन्त अमानुषिक पीड़ायें† देदेकर गुरूको मार डाला गया।

* गुरु पर यह भी दोष लगाया गया कि वह अपने आप को "सच्चा बादशाह" कहता था और उस ने एक बड़ी भारी सेना (समाज) सम्राट के साथ युद्ध करने के लिये बना रक्खी थी।

† "पंथप्रकाश" में लिखा है कि गुरु को पहिले खौलते हुए जल में बैठाया गया, फिर गरम २ रेत से उसका शरीर जलाया गया और अंत में उसको गाय की कच्ची खाल में सीदिये जाने की आज्ञा की गयी। यह निश्चय समझकर कि उसका अंतकाल आ पहुंचा था गुरुने स्नान करने की आज्ञा मांगी और यह प्रतिज्ञा की कि इसके पश्चात् मैं चन्दू के प्रस्ताव पर विचार करूंगा। गुरु को रावी नदी तक लेजाया गया जोकि उस समय क़िले की दीवारों के नीचे से बहती थी गुरु जल में कूद पड़ा और फिर न उभरा। मुंशी सोहनलाल का विचार है कि गुरु को चन्दू की आज्ञा से नदी में फेंका गया और वह धारके साथ बह गया। लतीफ़ कहता है कि यह

देश निकाला।

राजकीय कोप की दूसरी भेंट अर्जुन का निज पुत्र हरगोविन्द हुआ। हरगोविन्द, एक बढ़िया शिकारी था। और उसके मनोहर चरित्र तथा पौरुष योग्यता के कारण जहांगीर भी उसका आदर करने लगा। यहां तक कि वह सन् १६२० ई० में हरगोविन्द को अपने साथ कश्मीर लेगया परन्तु हरगोविन्द शीघ्र ही कतिपय कारणों से सम्राट के कोप का पात्र बनगया। सबसे प्रधान अपने स्वभाव की अत्यधिक स्वच्छन्दता के कारण दूसरे क्योंकि मृगया की ओर अत्यधिक रुची होने के कारण उसने जंगल के नियमों का उल्लंघन किया था और तीसरे क्योंकि उस धनको जो सम्राटने उसे उसके सैनिकों के लिये दिया था हरगोविन्द अपने निजके व्यय* में ले आया था। इसके अतिरिक्त जो दंड कि उसके पिता पर लगाया गया था वह अभी तक नहीं दिया गया था। परिणाम यह हुआ कि हरगोविन्द को पकड़ कर गवालियर निर्वासित कर दिया गया† जहां पर कि उसे कई वर्ष तक अपर्याप्त आहार देकर दुर्ग के भीतर बन्द रक्खा गया। अन्त को सुप्रसिद्ध मुसलमान सन्त मियांमीर की प्रार्थना पर जिसके नाम पर कि लाहौर की छावनी बसी हुई है हरगोविन्द को स्वतन्त्र किया गया।

कारागार के दिनों में ही मृगी के रोग में मर गया था। "पंथप्रकाश" का वर्णन यह है कि जो परम्परा से लोगों में प्रसिद्ध चला आता है।

* सम्राट गुरु-के अनुयायियों के भाव को नहीं समझ सका। गुरु की सेना में अधिक संख्या स्वयंसेवकों की थी जो वेतन की लालसा से नहीं वरन भक्ति तथा आज्ञा पालन के हेतु ही युद्ध करते थे।

† 'पंथप्रकाश' में यह घटना एक दूसरी तरह भी लिखी हुई है। लिखा है कि चन्दूशाह ने हरगोविन्द के बढ़ते हुए बल से भयभीत होकर सम्राटको

प्राणदण्ड।

अभियोग, जुर्माना, कारावास, तथा देश निकाला ये समस्त उपाय काम में लाये गये और कुछ समय के लिये इन से सफलता भी हुई। परन्तु प्रतीत होता है कि नवें गुरु ने खोये हुए बल को फिर से प्राप्त कर लिया था और खालसा समाज फिर एक बार कष्ट सहन के लिये उद्यत हो गया था। सन् १६६४ से १६७५ ई० तक पंजाब के समस्त हिन्दू तेग् बहादुर को अपना नेता स्वीकार करते थे। उसका व्यक्तिगत प्रभाव तथा उसका सर्वप्रिय धर्मप्रचार दोनों औरङ्ग़ज़ेब के मत प्रचार के मार्ग में बड़ी रुकावट थे। इसलिये १६७५ में गुरू को राजद्रोह के अपराध में देहली बुलाया गया था और उसको विकल्पसे दो आज्ञाएँ दी गयीं अर्थात् या तो वह इस्लाम मत स्वीकार करे, अथवा पर्दांतरमें मरना स्वीकार करे। गुरू ने स्वधर्मत्याग की अपेक्षा मरना अधिक उत्तम समझा, औरंगज़ेब की आज्ञा से उसका शिर शरीर से पृथक कर दिया

बहकाया कि वह हरगोविंद को गवालियर के दुर्ग में भेजदे ताकि वहां पर वह सम्राट पर आनेवाली आपत्ति को टालने के लिये ईश्वर से प्रार्थना करे और यह कि चन्दूशाह ने नजूमियों को रिश्वत देकर यह कहलवा दिया था कि सम्राट पर एक बड़ी आपत्ति आने वाली है 'सिक्खां दे राजदी विधया' और जोधसिंह की 'खड्गधारी हुल्लास" में भी ऊपर का वृत्तांत दिया हुआ है। इन में यह भी लिखा है कि गुरु की रिहाई के पीछे चन्दू को फांसी दी गयी। इन पुस्तकों के अनुसार गुरु केवल एक ही वर्ष क़ैद रहे, परन्तु मुंशी ज्ञानी अपनी 'दबिस्ता' में लिखता है कि वह बारहवर्ष क़ैद रहा। (Trumpp) भी यही लिखता है और मेरा भी यही विचार है कि यही ठीक है।

गया। उस मृतशरीर को देहली के बाज़ारों में घुमाया फिराया गया और बहुत दिनों तक वहाँ ही डाल रक्खा। यहाँ तक कि धर्म पर देह त्याग देनेवाले गुरु के कतिपय वीर अनुयायी उस शरीर को उठाकर उसके पुत्र के पास लेगये और पुत्र ने उसका अंत्येष्टि संस्कार पूरा किया।*

निर्दोष बालकों का वध।

खालसा का बल बढ़ने के साथ साथ मुग़लों की बदला लेने वाली कटार भी प्रतिदिन अधिकाधिक पैनी होती गयी। आनन्द पुर के परिवेष्टन के समय जहाँ पर कि गुरु गोविन्द सिंहको मुग़ल सेनाने बन्द कर रक्खा था।

गुरुकी माता अपने दो छोटे छोटे पोतों†के साथ स्वयम् गुरु

---

*"पंथ प्रकाश में लिखा है कि जीवन नाम का एक भंगी उसके सिर को गुरु गोविन्दसिंहके पास लेगया था और रात्री के समय लबाना जाति का एक लाखी नामक सिक्ख शेष धड़ को उठा लेगया और उसने उसे चुपके से अपने मकान के भीतर दाह कर दिया। जिस स्थान पर गुरु मारा गया था वहां उसकी याद में 'सीसगंज' नामका एक मन्दिर खड़ा हुआ है। और जिस स्थान पर शरीर जलाया गया था वहां एक समाधि बनी हुई है जो रिकाबगंज के नाम से प्रसिद्ध है यही नाम भक्त लबाना के ग्राम का है।

और एक स्थान पर लिखा है कि शिर देहली में जला दिया गया था और शरीर को दो भंगी बाप बेटे उठा लेगये थे। संशय मिटाने के लिये तथा इस विचार से कि कोई इनका पीछा न करे पिता ने इस बात पर आग्रह किया कि उसका अपना सिर काट कर उसके शरीर को गुरु के शरीर के स्थान पर रख दिया जावे यहां तक कि ऐसाही किया गया। (देखो मुन्शी सोहनलाल S. 72.)

†लड़कों के नाम फतेहसिंह और जोरावरसिंह थे।

की प्रार्थना पर दुर्ग से बच निकली। ये लोग बहुत दूर अभी नहीं गये थे कि सरहिन्दके शासक*के पंजोंमें आ फंसे। उसने स्त्रियों और नाबालिग़ बच्चों की जान लेना चाही वे क़ाफ़िर ही क्यों न हों, क़ुरान की आज्ञा के विरुद्ध है इसलिये वे क्षमा कर दिये गये और वे बालक बहुधा उस शासक के दरबार में राज क़ैदियों के समान आया करते थे। एक दिन जब कि दोनों बालक दरबार में बैठे हुये थे शासक उन की भोली भाली तथा सुन्दर सूरतों को देख कर बड़ा प्रसन्न हुआ और उनसे प्रेम पूर्वक कहने लगा कि "लड़को! यदि हम तुम्हें छोड़ दें तो तुम क्या करो"? बालकों ने उत्तर दिया कि 'हम अपने सिक्खों को एकत्रित कर उन्हें युद्ध की सामग्री देंगे तुम से लड़ेंगे और तुम्हें मार डालेंगे। शासक ने कहा "यदि तुम लड़ाई में हार गये तो फिर क्या करोगे? लड़कों ने उत्तर दिया कि "हम फिर अपनी सेनाएं इकट्ठी करेंगे और या तो तुम्हें मार डालेंगे या आप मर जायेंगे।" शासक बालकों के इन निर्भय तथा उद्धत्त उत्तरों को सुन कर बड़े क्रोध में भर गया और उस ने अपने दीवान को आज्ञा दी कि "इन लड़कों को मेरे सामने से हटाकर घर लेजा कर मार डालो।" शासक की आज्ञानुसार दीवान कुलजस ने बालकों को मारडाला। कोई† कोई कहते हैं कि दीवान ने बालकों को एक दीवार की नींव तले रख कर उस स्थान को ऊपर से ढांप दिया और इस प्रकार उन्हें जीता

---

*बहुतों ने उसका नाम फ़ौजदारख़ां लिखा है। परन्तु यह भ्रम है। फ़ौजदारख़ां वास्तव में उसकी उपाधि थी। सरहिन्द के उस समय के फ़ौजदार (शासक) का नाम वज़ीरख़ां था। (See Malcolm and Cunningham.)

†उदाहरण के लिये "पंथ प्रकाश।"

ही गाड़ दिया। गुरू की माता ने अपने पोतों की शोचनीय मृत्यु के शोक में ही अपने प्राण त्याग दिये*

संहार।

सरहिन्द के शासक ने गोविन्द के नन्हें बालकों के साथ जो व्यवहार किया वह भयंकर था ही परन्तु उस के पीछे उस से भी कहीं अधिक भयंकर हत्याएं की गयीं। गुरु गोविन्द का देहान्त होचुका था और उनकी पगड़ी बन्दागुरुके मस्तक पर बंध चुकी थी। इस नेता ने सरहिन्द के शासक तथा वहां के लोगों से उस, घोर क्रूरता का जो उन्होंने गुरू के उन निर्दोष बालकोंपर दर्शाई थी पूरा २ बदला लिया। गुरुबन्दाने सैकड़ों

---

*ऊपर का वृत्तात सय्यद मुहम्मद लतीफ़ के अनुसार लिखा गया है। "पंजाब का इतिहास" पृ० २६५।

/ नोट—पंथ प्रकाश में तथा कन्हैयालाल रचित 'पंजाब के इतिहास में लिखा है कि गुरु की माता तथा उसके पुत्रों को उनके एक पुराने नौकर ने विश्वासघात द्वारा शत्रुओं के हवाले कर दिया था। पंथ प्रकाश के अनुसार इस नौकर का नाम गंगाराम था। मलकोम (Malcolm) अपने ग्रन्थ में इस विश्वासघात का कुछ भी वर्णन नहीं करता वरन् केवल यह लिखता है कि,—"ज्योंही गुरु दुर्ग से भाग निकले उसके शत्रु दुर्ग के भीतर घुस गये और बहुत से लोग बन्दी कर लिये गये। इन बन्दियों में गुरु की माता तथा उसके दो बालक भी थे। ये बन्दी सरहिन्द के शासक फ़ौजदार (वज़ीर खां) के पास लाये गये और उसकी आज्ञा से उन्हें निष्ठुरता के साथ वध कर दिया गया। "मेलकोम का स्केच पृ० ४० उस ही पृष्ट पर नीचे लिखा हुआ एक नोट अत्यन्त अर्थयुक्त है। उसमें लिखा है कि "मुसलमान लेखक वर्णनकर्त्ताओं को इस अनावश्यक तथा अनुचित पशुता पर दोषी ठहराते हैं।"

मुसलमानों का वध किया तथा बीसियों ग्रामों को जला डाला और क्षण भर के लिये ऐसा प्रतीत होता था कि मानों उस ने मुगल साम्राज्य की जड़ों को ही हिला डाला॰ अंत को सन् १७१६ ई० में वह पराजित हुआ और उसे एक लोहे के पिंजड़े में बंद कर उस के ७४० अनुयायियों समेत देहली लेजाया गया और इनके आगे आगे सिक्खों के बहुत से सिर भालों पर लटकाये हुए लेजा रहे थे† "प्रतिदिन एक सौ सिक्ख मारे जाते थे, यह लोग आपस में एक दूसरे से पूर्व बलि दिये जानेके लिये इच्छा प्रकट करते तथा झगड़ते थे। और आठवें दिन स्वयम् बंदागुरू न्यायाधीशोंके सन्मुख उपस्थित किया गया। उसको हाथ से अपने पुत्रको वध करने की आज्ञा दीगयी और बंदा गुरूने शान्तिके साथ तथा निर्विकार चित्त से ऐसा ही किया। उसके अपने शरीर का मांस लाल जलते हुए लोहे से काटा गया और इन पीड़ाओंमें उस के प्राण निकल गये।" ‡

न्याय की रक्षा से बाहर कर देना

बंदागुरूकी पराजयके पश्चात् सिक्खोंका बल मानों सर्वथा

॰कहते हैं कि बन्दागुरूको यहा तक विजय प्राप्त हो चुकी था कि उनके कारण बहादुरशाह अपनी राजधानी को देहली से लाहौर लेजाने का विचार करने लगा था।

†प्राक्रीशां।

‡कनिंघम "सिक्खों का इतिहास" देखो और अंग्रेजी सफ़ीर की चिट्ठी भी (१० मार्च १७१६) को देहली से भेजी गई थी Wheeler की Early records of British India के १८० वें पृष्ट पर भी यही लिखा है।

टूट गया था और प्रतीत होता था कि यह जाति शीघ्र लोप हो जाने वाली है।

१७१४ ई० में फर्रुखसियर देहली के सिंहासन पर बैठा। वह एक प्रबल शासक था। उसने सब से पहिले निज प्रतियोगियों तथा प्रतिपक्षियों से अपने दरबार को खाली किया और फिर तुरन्त ही पंजाब की अवस्था ठीक करने की ओर ध्यान दिया। यद्यपि बन्दा गुरू परास्त हो चुका था तथापि फर्रुखसियर सिक्ख चरित्र की स्थिति स्थापकताको तथा इस बात को जानता था कि गोविन्द के अनुयायियों को ज्योंही कि एक नेता मिल गया वे तुरन्त एकत्रित हो जायंगे। इस लिये उसने एक घोषणा पत्र निकाला जिसमें समस्त सिक्खों को न्याय की रक्षा से बाहर कर दिया गया और यह नियम बना दिये गये कि:—

(१) पंजाब में कोई हिन्दू लम्बे केश वा डाढ़ी नहीं रख सकता। और जो कोई मुड़वाने से इन्कार करेगा वह तुरन्त मारा जा सकेगा *

(२) सिक्खों के उन्मूलन में सहायता देने वालों के लिये विविध प्रकार के इनाम नियत किये गये। जो कोई ऐसी सूचना देता था जिसके द्वारा कि कोई सिक्ख पकड़ा जा सके उस को ५) इनाम मिलता था। और जो कोई किसी सिक्ख का सिर काटकर लादे उसे २५) इनाम दिया जाता था। इस से भी अधिक सहायता देने के लिये योग्य पुरुषों को जागीरें दी जाती थीं।

(३) किसी भी मनुष्य के लिये किसी सिक्खका सत्कार

---

*Malcolm:—A sketch of the Sikhs. P. 53. और Foster, Journey from Bengal, etc., P. 265.

करना था उसे अपने मकान में आश्रय देना अथवा उसे किसी प्रकार की भी सहायता देना बड़ा अपराध ठहराया गया*।

अमृतसर में सिक्खों के मन्दिर को भ्रष्ट किया गया और लाहौर का एक मुसलमान तालुकदार† मन्दिर की पवित्र भूमि में रण्डियों का नाच कराया करता था। इसके अतिरिक्त कई सहस्र सिपाहियों का एक दस्ता इस लिये बराबर इधर उधर घूमता रहता था कि जहां कहीं उन्हें कोई सिक्ख दिखाई दे उसे पकड़ लावें ‡ इन उपायों का परिणाम यह हुआ कि बहुत से अल्प उत्साह वाले सिक्खों ने अपनी डाढ़ियां मुड़वालीं और वे फिरसे हिन्दुओं में आमिले। जबकि अधिक श्रद्धावान सिक्ख वनों तथा पहाड़ों में निकल गये अथवा कुछ समय के लिये अपनी मातृभूमि को नमस्कार कर बीकानेर और राजपूताने के मरुस्थलों में जाछिपे और उनमें से अनेकों ने उन प्रान्तों के हिन्दू राजाओं की नौकरियां स्वीकार करलीं। गुरूगोबिन्द सिंह के अनुयायियोंके लिये यह समय सबसे कठिन और अत्यन्त कड़ी परीक्षा का था। निज घर द्वार से निकाले हुए वे स्वयम् यह न जानते थे कि वे किस ओर भ्रमण कर रहे थे। बिना किसी आश्रय के और बिना भोजन व वस्त्रों के मारे मारे फिरते थे। उनकी स्त्रियां और उनके बालक पकड़ लिये

---

*देखो पंथ प्रकाश। और Malcolm की Sketch (P. 53).

†मस्सा रांगड़ जिसको कि सन् १७४० ई० में मीहान कोट के महतावसिंह और मारीकंव के एक बढ़ई सुक्खासिंह ने मार डाला था।

‡कभी कभी इस दस्ते में सिपाहियों की संख्या दश सहस्र तक पहुंच जाती थी। यह दस्ता मुहम्मदशाह के समय में नये नियुक्त हुए शासक जकरियाखां ने अपने हिन्दू दीवान लखपतराय की संमति अनुसार नियुक्त किया था। (गुरु पंथप्रकाश)

जाते थे और उन्हें कष्ट दे देकर मारा जाता था। यह कथा पंजाब में सबको याद है कि उस समय की एक माताने किस प्रकार इस प्रश्न का उत्तर दिया था कि "तुम्हारे कै पुत्र हैं?" माता ने उत्तर दिया कि 'मेरे चार पुत्र थे परन्तु उनमें से एक सिक्ख होगया है'। सिक्ख होने का यह अर्थ था कि उसका मारा जाना असन्दिग्ध था। ऐसा प्रतीत होता है कि राजकीय सेना के साथ युद्ध के इन पिछले दो तीन वर्षों में सिक्खों की एक बहुतही बड़ी संख्या मारी गई होगी। क्योंकि कुछ मुसलमान उन्हें किसी प्रकारका भी आश्रय न देते थे"*।

*मेलकोम का-Sketch (P. 5.)

अध्याय ६

कतिपय प्रसिद्ध हत्याएं

इस घोर आपत्ति के समय में सहस्रों ही सत्यव्रत सिक्ख परलोक पहुंचाये गये होंगे किन्तु इनमें से दो तीन की हत्याएं विशेष कर वर्णन करने योग्य हैं। क्योंकि इन हत्याओं ने इन मनुष्यों की उच्च तथा विशिष्ट पदवी और उनकी विशेष धर्मनिष्ठा के कारण जनसमूह में सबसे अधिक क्षोभ उत्पन्न किया।

मणिसिंह का बलिदान।

इन हत्याओं में मुख्यतम मणिसिंह की हत्या थी। मणिसिंह एक बूढ़ा सिक्ख था जोकि स्वयं गुरूगोविन्द सिंह के चरणों में बैठ चुका था गुरूजी की विधवा धर्मपत्नीने बन्दा गुरु के अनुयायियों तथा तत्वखालसा अर्थात् गुरूगोविन्द के पहिले अनुयायियों के बीच जो कुछ विवाद उत्पन्न होगये थे उन्हें शान्ति करने के उद्देश्य से मणिसिंह को अमृतसर भेजा। मणिसिंह एक सुशिक्षित मनुष्य था और उसही की बुद्धिमत्ता तथा विज्ञता द्वारा "आदिग्रन्थ" ने अपना वर्त्तमान स्वरूप धारण किया। इसके अतिरिक्त वह एकान्त सेवी तथा शान्त स्वभाव भी था इस कारण वह अमृतसर में ही रहने लगा। और उस समय में जब कि हत्याओं का संक्षोभ चारों ओर वेग के साथ फैल रहा था वह एक धर्मात्मा हिन्दू के समान अमृतसर में अपने दिन बिताता रहा। उसके विषय में किसी को भी यह सन्देह न था कि उसका विद्रोही सिक्खों के साथ कुछ भी सम्बन्ध है और न किसी ने भी उसके विषय में इस प्रकार का आवेदन किया। वह अमृतसर के मंदिर की रखवाली

करता रहा और सन् १७३८ ई० में अर्थात् मंदिर को अपवित्र किये जाने के * दो वर्ष पूर्व मणिसिंह ने अमृतसर के हाकिम से अमृतसर में दिवाली का मेला रचने की आनुमा मांगी। अमृतसर का हाकिम मणिसिंह का बड़ा आदर करता था। तथापि यह विषय कुछ गम्भीर था इस कारण हाकिम ने इस बारेमें लाहौरके शासक की अनुमति चाही। अंतमें मेला रचने की अनुज्ञा मिल गयी इस प्रतिज्ञा पर कि मेलेके पश्चात् मणिसिंह सरकारी कोष में ५००० रुपये जमा कराde।† मणिसिंह ने समस्त खालसा बिरादरी के नाम निमन्त्रण भेज दिये और सिक्ख लोग बड़े बड़े समूहों में अमृतसर की ओर चल पड़े। किन्तु लाहौर के शासक ने आगामी मेले में रक्षा करने तथा नियम स्थापन करने के बहाने थोड़ी सी सेना अमृतसर भेज दी। शासक की इस संदेह जनक चेष्टा के कारण सिक्ख डर गये तथा आये अयाये अपने अपने घरों को लौट गये। मेला न हो सका और मणिसिंह जिसे यह आशा थी कि मन्दिर में जो चढ़ावे सिक्ख चढ़ावेंगे, उनमें से वह ५००० रु० सरकारी कोषमें जमा करा देगा इस सब को अदा न कर सका। मणिसिंह बन्दी कर लाहौर पहुंचाया गया। उसे यह आशा

*मस्सा रागड़ ने इस मन्दिर को अपवित्र किया था। उसने मन्दिर को अपनी बैठक बना लिया था और उसमें हुक्का पीने तथा थूकने के अतिरिक्त उसने रंडियों को बुलवा कर नाच भी करवाया था।

† संभव है कि मणिसिंह का उद्देश्य सिक्खों तथा सरकार के बीच मैत्री स्थापन करना तथा सिक्खों को एकत्र कर उन्हें भविष्य के लिये अपना नीतिक्रम निश्चित करने का अवसर देना ही हो। मेले की अनुज्ञा देने में शासक का उद्देश्य संभवतः यह था कि सिक्खों का एक स्थान पर एकत्रित होने दिया जावे और फिर अचानक आक्रमण कर उनका सर्वनाश

दी गयी कि वह या तो रुपया अदा करे अथवा इसलाम मत स्वीकार करे। पिछले प्रस्ताव का उसने अत्यन्त अवज्ञा के साथ तिरस्कार किया। मणिसिंह के प्रशंसकों ने ५००० रु० एकत्रित कर दिये किन्तु समय निकल चुका था। प्राणदंड की आज्ञा दी जा चुकी थी और उस के आज्ञा अनुसार मणिसिंह मार डाला गया। प्राण लेने के उद्देश्य से उस के शरीर को प्रत्येक जोड़ पर से काट कर धीरे धीरे उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले गये।*

तारुसिंह की हत्या (१७५० ई०)

इसके पश्चात् मुसलमानों की हठधर्मी का दूसरा सुप्रतिष्ठित बलि तारुसिंह था। तारुसिंह जाति का जाट था और माझा देश के पूला नामक एक ग्राम का रहनेवाला था। इस युवक की आयु २५ वर्ष की थी वह अपनी बहिन तथा विधवा माता

करदिया जावे। जो कुछ इसके पीछे किया गया उस सब से शासक का यह उद्देश्य स्पष्ट प्रतीत होता है।

* पंथप्रकाश का लेखक बताता है कि मणिसिंह ने आदिग्रंथ की विषयरचना को बदल दिया था अर्थात् उस ग्रंथ में विविधि लेखकों के पद्यों को रागों के अनुसार नये सिरे से आगे पीछे कर दिया था। सिक्ख लोग जोकि इस ग्रंथ को एक जीवित व्यक्ति के समान मानते थे मणिसिंह के ऐसा करने पर क्रोधित हुए और उसके इस कार्य की स्वयं गुरू में शरीर भ्यंगीकरण से तुलना देने लगे। साथ ही सिक्खों ने यह श्राप दिया कि जिस प्रकार मणिसिंह ने पवित्रग्रंथ के टुकड़े २ किये हैं ठीक इसही प्रकार उसके अपने शरीर के भी टुकड़े २ किये जावेंगे। निस्सन्देह यह बताने की कोई आवश्यकता नहीं कि इस श्राप के कारण मणिसिंह को दण्ड मिला व दण्ड मिलने पर इस श्राप की रचना करदी गयी।

के साथ रहा करता था और उस भूमि के टुकड़े को जोतकर अपना जीवन निर्वाह करता था जोकि उसका पिता उसके लिये छोड़ गया था। वह अपनी धार्मिकता के लिये अत्यन्त विख्यात था तथा खालसा मत का एक प्रशक्त अनुयायी था। वह किसी समय चाहे अपनी भूमि को जोत रहा हो और चाहे अपनी खेती को पानी दे रहा हो सर्वदा ग्रन्थसाहब के शब्दों का जाप करता हुआ ही सुनाई देता था। उसकी माता और भगिनी भी दोनों सदाचार तथा धार्मिकता की प्रतिमायें थीं और पड़ोसिनियों का नाज पीस कर अपना जीवन निर्वाह किया करती थीं। ये तीनों मिलकर एक अत्यन्त सरल तथा कठोर जीवन व्यतीत करते थे और अपनी आय में से थोड़ा बहुत जो कुछ बचा सकते थे वह अपने उन भाइयों की सहायता में व्यय कर देते थे जो कि लाहौर के नाज़िम के अन्याय के कारण वन तथा जंगलों की ओर भाग गये थे किन्तु ऐसा करना स्पष्ट राजद्रोह था और थोड़े ही दिनों के भीतर जण्डियाला का एक दुर भक्त निरञ्जनी* नामक मनुष्य तारूसिंह का विश्वासघातक सिद्ध हुआ। अपराधी को पकड़ कर लाहौर लाया गया। मार्ग में कुछ सिक्खों ने उसे छुड़ा लेने की इच्छा प्रकट की किन्तु तारूसिंह यह न चाहता था कि वह अपने मित्रों को शासकों की प्रतिहिंसा का पात्र बनाये और उसने लाहौर जाना अधिक उत्तम समझा। उसे चर्खी के ऊपर चढ़ाया गया और जिस समय कि उसके अंग अंग कुचले जा चुके तथा वह अधमरा होगया उस समय उसे यह

---

*यह मनुष्य निस्सन्देह जण्डियाला के उस महन्त अकिलदास के अनुयायियों में से होगा जिसने कि अब्दालीशाह की सहायता दी थी और जिसको कि अन्त में सिक्खों ने मार डाला था।

बतलाया गया कि इसलाममत स्वीकार कर लेना, तुम्हारे लिये मृत्यु से बचने का एक मात्र उपाय है। साथ ही सांसारिक ऐश्वर्य तथा धन आदिक की बहुत सी प्रतिज्ञाएं उससे की गयीं। "किन्तु उसने इन सबको एक जौ के दाने बराबर भी न माना*। जब उससे केश कटाने के लिये कहा गया तो उसने केवल यह उत्तर दिया कि, "केश शिर की त्वचा तथा कपाल तीनों का एक दूसरे से सम्बन्ध है, मनुष्य का शिर उसके प्राणों के साथ जुड़ा हुआ है और मैं प्रसन्नता के साथ अपने प्राण देने को उद्यत हूं।" इसके पश्चात् उसके कपाल पर से केश उखाड़े गये और बड़ी बड़ी पीड़ाएं देकर उसके प्राण निकाले गये। इसी समय के निकट और भी अनेक सिक्ख लाहौर लाये गये और देहली दरवाज़े के बाहर वध किये गये। इन हत्याओं की रंगभूमि अर्थात् वह स्थान जहां पर कि इन लोगों का वध किया गया। इस समय "शहीद-गंज" के नाम से विख्यात है।

बालक हक़ीक़त राय का बलिदान

मणिसिंह, तारूसिंह तथा अन्य धर्मात्मा पुरुषों की हत्याओं ने सिक्ख जाति में नीचे से ऊपर तक तहलका मचा दिया। तथापि इन कार्यों में यदि न्याय नहीं तो कम से कम न्याय का आभास मुग़ल सरकार के पक्ष में था। क्योंकि इन सब धर्मात्मा पुरुषों को राजविद्रोह के अपराध में प्राणदण्ड दिये गये थे। किन्तु हक़ीक़तराय की हत्या का कारण केवल मात्र हठधर्मी तथा

*इबतनामा फ़ारसी हस्तलिपि इंडिया आफ़िस न ४०४ इसका सूची-पत्र पृष्ठ १६६।

†कनिंघम साहब का "सिक्खों का इतिहास" अंगरेज़ी में पृष्ठ ९२

अन्याय था। और इस हत्या का परिणाम सरकार के लिये इतना अधिक आपत्तिकर सिद्ध हुआ जितना कि पूर्व की किसी भी हत्या का परिणाम न हुआ था। यद्यपि हिन्दुओं को बहुत कुछ पीड़ा दी जा चुकी थी तथापि इस समय तक हिन्दू लोग मुग़लों के इतने विरुद्ध न थे जितने कि सिक्ख, किन्तु इस निर्दोष छोटे से बालक की हत्या ने हिन्दुओं में मुग़ल सरकार की ओर से उग्रतम घृणा उत्पन्न करदी तथा उन्हें सिक्खों के साथ मिलकर कार्य करने पर बाधित किया। हक़ीक़तराय को इस बलिदान द्वारा उसे "धर्मी" की उपाधि प्राप्त हुई। और वह आज दिन तक हक़ीक़तराय धर्मी ही के नाम से विख्यात है तथा आदर के साथ स्मरण किया जाता है।

हक़ीक़तराय के बलिदान ने ईसा की १८ वीं शताब्दी के पंजाब निवासी हिन्दुओं पर अत्यन्त प्रबल प्रभाव डाला तथा इस समय तक उसका हत्या स्मरण इन लोगों को अत्यन्त जोश दिला रहा है तथापि किसी भी अंगरेज़ इतिहास लेखक ने अपने ग्रन्थ में इस घटना का कुछ भी वर्णन नहीं किया। इस कारण हमारे लिये इस स्थान पर इस घटना को संक्षेप से वर्णन करना सर्वथा अनुचित न होगा।

सम्भवतः हक़ीक़त राय का जन्म स्यालकोट में सन् १७१६ ई०* हुआ था। वह अपने पिता भागमल का इकलौता

* "शहीदगञ्ज" नामक उर्दू पुस्तक के रचयिता लाला मुल्क राज भल्ला के अनुसार हक़ीक़तराय का जन्म सन् १७४५ ई० में हुआ था। और "शमशेर ए खालसा" नामक ग्रन्थ के अनुसार उसका जन्म १७१४ में हुआ। मेरे विचारानुसार ये दोनों भ्रान्त हैं। अब जितने कि हक़ीक़त राय की एक वर लिखी है सम्वत् १७६१ को हक़ीक़त राय के बलिदान का वर्ष बताता है। अग्र ने अपनी पुस्तक सम्वत १८४७ में अर्थात् इस

पुत्र था। भागमल पुरी जाति का खत्री था और स्यालकोट के हाकिम के दफ्तर में एक मुन्शी का कार्य्य किया करता था। स्यालकोट के ज़िले में वडाला नाम का एक सुप्रसिद्ध ग्राम है इसके एक सिक्ख खत्री की कन्याके साथ हक़ीक़तरायका छोटी सी उमर में ही विवाह होगया। यह अनुमान किया जा सकता है कि हक़ीक़तराय ने सिक्ख गुरुओं तथा उनके अनुयायियों के गौरवान्वित आत्मत्याग तथा बलिदानों का कुछ वृत्तान्त सुन रक्खा था। सात वर्ष की आयु में हक़ीक़त मदरसे भेजा गया और एक मुसलमान मुल्ला से फ़ारसी पढ़ने लगा। सन् १७३४ ई० में जब कि हक़ीक़त की आयु १५ वर्ष की भी न थी एक दिन मुल्ला की अनुपस्थिति में बालकों के बीच कुछ विवाद उत्पन्न होगया। मुसलमान बालकों ने छेड़ छाड़ आरम्भ की और हिन्दुओं की देवी को गालियां निकालीं। प्रतीत होता है कि हक़ीक़त देवी का एक परमभक्त था। उसके चित्त को बड़ा खेद हुआ और बदला लेने के विचार से उसने हज़रत मोहम्मद की लड़की फ़ातिमा को गाली दी। यह एक ऐसा अपराध था जिसके करने का इस से पूर्व किसी भी हिन्दू को साहस न हुआ था और जिसके दण्डरूप असहाय

दुर्घटना से २६ वर्ष पीछे लिखी थी इससे पता लगता है कि उसने या तो यह घटना स्वयं अपनी आंखों देखी होगी और या कम से कम उसने इस का वृत्तान्त अन्य ऐसे लोगों से सुनकर लिखा होगा जोकि घटना के साक्षी रह चुके होंगे। मुन्शी सोहनलाल के अनुसार जो कि रणजीतसिंह के दरबार का प्रसिद्ध इतिहास लेखक था यह घटना खानबहादुर के समय में हुई क्योंकि सन् १७२६ से १७४३ तक लाहौर का शासक रहा। गुजरानवाले का सुविख्यात कवि कालिदास भी बताता है कि हक़ीक़त का बलिदान मोहम्मद शाह तथा खानबहादुर के समय में हुआ।

हकीकत को अपने प्राण देने पड़े। जब मुल्ला लौट कर आया आया तो मुसलमान बालकों ने उसे सब वृत्तान्त कह सुनाया। मुल्ला की क्रोधाग्नि भड़क उठी और उसने हकीकत को पकड़ कर उससे पूछा कि 'तुझे हज़रत रसूल की लड़की को गाली देने का साहस कैसे हुआ ?" हकीकत ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया किन्तु कहा कि 'मैंने प्रथम छेड़छाड़ नहीं की वरन् जिस समय कि मुसलमान बालकों ने उस देवी पर गालियों की बौछार की जिसकी कि समस्त धर्मात्मा पुरुष पूजा करते हैं और अकबर भी जिसके पवित्र मन्दिर तक अभिवदन करने के हित नङ्गे पाँव चल कर आया था* उस समय मैं अपने क्रोध को न रोक सका।" इस निर्भय उत्तर ने मुल्ला को और भी अधिक क्रोध से भर दिया और वह हकीकत को काज़ी की अदालत तक खींचकर लेगया। काज़ी उसे तुरन्त हाकिम के पास ले आया। हकीकत के पकड़े जाने का समाचार उसके माता पिता के ऊपर वज्र के समान पड़ा। वे शीघ्र ही हाकिम के पास भाग गये और उसके सन्मुख घुटनों के बल गिर कर उस से अपने पुत्र की क्षमा प्रदान करने की प्रार्थना की और कहा कि 'यह केवल एक बालक है और बालकपन के ही विवाद में उसने उन पापमय शब्दों का उच्चारण किया।

अब वह भी लिखता है कि हकीकत राय कार्तिक कृष्णा द्वादशी के प्रातःकाल के समय पैदा हुआ था। किन्तु अब उसके जन्म का सम्वत् नहीं देता।

* प्रतीत होता है कि यह बात सच्ची है और आज दिन तक घटना के स्मरणार्थ एक लौकिक पद प्रचलित है जिसमें आता है कि " ऐ देवी अकबर ने नंगे पांव आकर तेरे मन्दिर में एक सोने का छत्र चढ़ाया था।

प्रतीत होता है कि मुल्ला तथा क़ाज़ी दोनों इस बात का निश्चय कर चुके थे कि यदि हक़ीक़त इसलाम मत स्वीकार न करे तो उसे मार डाला जावे। और इस उद्देश्य से कि अपराधी की ओर दया दिखायी जाने की कोई भी सम्भावना न रहे उन्होंने पहिले ही से नगर के मुसलमान निवासियों में एक कोलाहल उत्पन्न कर दिया था। तथापि प्रतीत होता है कि हाकिम अमीर बेग कुछ अधिक समझदार तथा कम मुतआस्सिब मनुष्य था। वह इस विषय की गंभीरता को समझता था और अपने कंधों पर उसकी उत्तरदातृत्व का भार लेना न चाहता था। उसने उलमाओं की एक सभा की और उस सभा के सन्मुख इस विषय को उपस्थित किया। उलमाओं ने यह निर्णय किया कि हक़ीक़त या इसलाम मत स्वीकार करे अथवा अपनी मृत्यु द्वारा इस पाप का प्रायश्चित करे। अमीर बेग ने इस निर्णय का अनुमोदन न किया और एक एक कर बतलाया कि इस अन्याय के अमुक अमुक गम्भीर राजनैतिक परिणाम होंगे। उलमाओं ने उसकी इसलाम धर्मनिष्ठा के नाम पर उसे प्रमाण ठहराया और उसे इस बात के लिये उत्तेजित किया कि वह इसलाम का अपमान करने का साहस रखने वाले अपराधी को दण्ड देने में समस्त सांसारिक विचारों को पृथक कर देवे। अमीर बेग का चित्त इस समय द्विविधा में फसा हुआ था। न्याय तथा बुद्धि दोनों इस क्रूरता के विरुद्ध थीं किन्तु उलमा लोग तथा मुसलमान हठधर्मियों का समूह जो कि इस समय तक उसकी कचहरी के चारों ओर एकत्रित हो चुके थे, न्याय अथवा बुद्धि की एक न सुनते थे। इस कठिनाई को पार करने का केवल एक उपाय दिखायी देता था और वह यह था कि इस विषय को अधिक

उच्च अधिकारियोंके पास निर्णयार्थ भेज दिया जावे। हक़ीक़त काज़ी तथा मुल्लाके साथ लाहौर के नाज़िम के पास भेजा गया। स्यालकोट से लेकर लाहौर तक रास्ते पर के प्रत्येक ग्राम से लोगों के समूहों के समूह इस अभागे लड़के को मिलने तथा उसका पक्ष ले उसकी ओर से क्षमा प्रार्थना करने के लिये बाहर निकल आते थे। अनेक न्याय प्रेमी मुसलमानों* ने भी काज़ी से याचना की कि इस बाल अपराधी को क्षमा किया जावे किन्तु इस सब से कुछ भी लाभ न हुआ। लाहौर के नाज़िम का निश्चय उलमाओं के निर्णय के अनुसार था। तथापि शासक को हृदय में हक़ीक़त के बालकपन तथा उसके मनोहर स्वरूप को देख दया भर आई उसने उत्सुकता के साथ हक़ीक़त से इसलाम मत स्वीकार करलेने की प्रार्थना की साथही उससे यह प्रतिज्ञा की कि यदि तुम अपना धर्म त्याग दो तो तुम्हें उच्च पदवी तथा समस्त सांसारिक पदार्थ प्रदान किये जावेंगे। हक़ीक़तका निश्चय अटल था और वह मरने के लिये उद्यत था। उसकी बूढ़ी माता दौड़ी दौड़कर अपने पुत्र के पास गयी। माता ने भी उससे इसलाम मत स्वीकार कर लेने तथा अपने प्राण बचा लेने की याचना की, हक़ीक़तने उत्तर दिया। ऐ माता क्या मैं फिर कभी न मरूंगा? यदि हर अवस्थामें मरना अनिवार्य ही है तो फिर निज धर्म से पतित होकर ही क्यों मारे जावें? निस्सन्देह माता पिता का वियोग युवा पत्नीका वैधव्य और समस्त मित्रों तथा सम्बधियों को शोक, इन सब का सहन करना कठिन था किन्तु निज धर्म का त्यागना हक़ीक़त को इस, से भी कहीं अधिक

*इनमें से प्रसिद्ध एक दरगाही नामका मनुष्य था जो लाहौर के पास शिहदरे का मुक़द्दम था।

कठिन प्रतीत होता था। आज्ञा दे दी गई और तुरन्त उस तेजस्वी बालक का शिर लाहौर नगर के केंद्र में समस्त हिन्दू नगर निवासियों के निश्वास तथा अभिशापों के बीच उसके शरीर से पृथक कर दिया गया लाहौर के समस्त छोटे बड़े उसकी अर्थी के साथ,थे और नगर से चार मील पूर्व की ओर उसको भस्म दबाई गई। आज तक उस स्थान पर एक चिन्ह लगा हुआ है और हकीकत के बलिदान के दिन अर्थात् बसन्त पचमी के दिन प्रति वर्ष वहां पर एक मेला लगा करता है* ॥

---

* पिछले थोड़े से वर्षों के भीतर हकीकत के बलिदान की कथा पंजाब के हिन्दुओं में अत्यन्त प्रसिद्ध हो गयी है। वर्तमान समय के सब से बड़े पंजाबी कवि कालिदास का सब से बड़ा निबंध इसही विषय पर लिखा हुआ है। लाला मुल्कराज भल्ला के छोटे से नाटक ने भी इस बालक शहीद की कथा को फिर से प्रसिद्ध करने में बहुत बड़ा भाग लिया है ॥

अध्याय ७

सशस्त्र प्रतिरोध का आरम्भ

गुरूहरगोविन्द की लड़ाइयां

(१६०७—१६४४)

दस अभियोग, दण्ड, पीड़ा तथा मृत्यु ने जिसका पांचवें गुरू अर्जुन को सामना करना पड़ा सिक्ख सम्प्रदाय की समस्त भौतिक शक्तियों को इकट्ठा करदेने में मानों अपूर्व झोकों का कार्य किया। अर्जुनके पुत्र गुरूहरगोविन्दने जो कि ११ वर्ष की आयु में अपने पिता की गद्दी पर बैठा आरम्भ में ही दो खड्ग अपनी कमर में बांधे "एक अपने पिता का बदला लेने के लिये और दूसरा मुहम्मद के चमत्कारों का नाश करने के लिये" *। वैराग्य के लक्षणों अर्थात् (एक टोपी, एक माला तथा एक ऊन की बनी हुई सेहली) के साथ राजत्व के चिन्ह अर्थात् खड्ग, छत्र, मुकुट तथा पद्म भी मिला दिये गये। वे चढ़ावे जोकि इस समय तक देशके चारों ओरसे आने लग गये थे अब घोड़े शस्त्र तथा अन्य युद्ध सामग्रीके रूपमें आने लगे। गुरू का सर्वप्रिय कार्य अब पूर्व के समान ध्यान में बैठना तथा भजन औरईश्वर प्रार्थनाएं लिखना न था† । गुरूहरगोविन्द अपना अधिकांश समय मल्लयुद्ध, घोड़े की सवारी, दृश्यरचना तथा चीते और शूकरका शिकार करने में व्यतीत करने लगा।

---

* मलकोम साहब का "Sketch of the Sikh"

† इन्होंने गुरूने अपना लिखा हुआ एक पद भी नहीं छोड़ा।

उद्देश्य परिवर्तनके साथ २ दैनिक कृत्यमें परिवर्तन होने लगा और कृत्य परिवर्तनके साथ २ रुचि तथा भोजनमें भी परिवर्तन होने लगे। मांस भोजनकी न केवल अनुग्राही दे दी गयी वरन् मांस खाने के लिये लोगों को उत्तेजना भी दीजाने * लगी। युद्ध प्रेम गुरु इस समय शारीरिक बल वाले तथा सुन्दर शरीर वाले मनुष्यों को इतने ही अधिक अनुग्रह प्रेम की दृष्टि से देखने लगे जितना कि बड़े से बड़े धर्मात्मा तथा अधिक से अधिक विद्वत्ता बल को। " समरासक्त गुरू की इस सामान्य प्रकृत्ति का परिणाम यह हुआ कि वह सैन्यनिवास के साहचर्य संग्राम के संकट तथा मृगया के उत्ताप में आनन्द लेने लगा। और न यह ही असम्भव प्रतीत होता है कि इस लौकिक नेता की कार्यनीति, पीड़ित पुत्र के भावों तथा धर्माचार्यके कर्त्तव्यों के साथ मिलकर एक हो गई और परिणाम यह हुआ कि इस नीति ने उसके कार्यों को उसकी आकांक्षा पूर्ति के अनुसार गढ डाला। यद्यपि यह सम्भवहै कि उसकी आकांक्षा सम्राट अकबर के पुत्र (जहांगीर) के सौम्य प्रभुत्त्व में केवल थाड़ी सी स्वतन्त्रता लाभ करने से अधिक न रही हो"† ।

वह घटना स्थिति जिससे प्रेरित हो गुरुहरगोविन्दने युद्ध की तैयारियां आरम्भ की तथा सामयिक सरकार का सशस्त्र प्रतिरोध किया इस प्रकार संक्षेप से वर्णन की जा सकती है

१—अपने पिता की मृत्यु का बदला लेना।

२—"मोहम्मद के चमत्कारों का नाश करना" जिसका अर्थ इसलाममत तथा मुसलमान सरकार का विध्वंस करना था‡ ।

---

* दबिस्तान्

† कनिंघम साहब का "सिक्खों का इतिहास पृष्ठ ५३"।

‡ इस के कारण मुसलमानों के साथ गुरुओं की व्यक्तिगत मित्रता के

३—फानिंयम के मतानुसार अद्भुत आहमिक तथा चिमान्त कार्यों में गुरु की स्वाभाविक प्रवृत्ति।

४—निष्ठुर शासन तथा अन्याय के आबंध से निज देश वासियों को मुक्त करने की गुप्त इच्छा।

५—स्वयं अपनी संशयापन्न अवस्था, क्योंकि गुरुका चचेरा भाई धीरमल, जिसके पिता को कि अर्जुन को गुरुत्व दिये जाने के कारण गद्दी नहीं मिल सकी थी, सदा हरगोविन्द के नाश के उपाय सोचता रहता था।

६—कतिपय छोटी छोटी घटनाएं।

(अ) गुरु का स्वयं बंदी किया जाना। (इ) गुरु का अपने धात्रेय चचन्दालों के साथ विवाद (उ) एक काजी की कन्या का गुरु के ऊपर आरोपित अपहरण (ऋ) कुछ घोड़ों के ऊपर सम्राट के साथ खट पट।

इस समस्त घटनास्थिति से प्रेरित हो गुरु ने तुरन्त एक अपनी निज की छोटी सी सेना बनाने का कार्य अपने हाथ में लिया। यह कार्य इस प्रकार से सिद्ध किया गयाः—

(१) गुरु ने अपने समस्त अनुयायियों को इस बात का उपदेश दिया कि वे शस्त्र धारण करें तथा निजधर्म के शत्रुओं के साथ लड़ने के लिये सर्वदा प्रस्तुत रहें। यह सब लोग उसकी पोर्शित्र सेना बनगयीं और जब २ वह उन्हें बुलाता

मार्ग में रुकावट नहीं पड़ी। गुरु हरगोविन्द अपने समय के अनेक प्रधान २ मुसलमानों के साथ गाढ़ी मित्रता रखता था जिनमें से एक दबिस्तान का लेखक मोहसिनफानी था। वास्तव में एक मुसलमान धात्री ने ही गुरुहर-गोविन्द को पाला पोसा था। दारा हरराय का सबसे बड़ा मित्र था और दसवें गुरु को मुसलमानों ने शिक्षा दी तथा मुसलमानों ने ही उनको जान तक बचायी।

था तब २ वह उसका पताका तले युद्ध करने को आजाती थी।

(२) उसने समस्त सरकारके असन्तुष्ट लोगों तथा भगोड़ों को अपने अनुयायियों में भरती करलिया* तथा अनेक डाकुओं और लुटेरों को भी अपने यहां नौकर रखलिया।

(३) उसकी एक अश्वशाला थी जिसमें ८०० अश्व थे। और ३०० घुड़सवार तथा साठ तोपची उसके खासपरिचारक अर्थात् बोडिगार्ड थे† ।

कुछ दिनों तक गुरू को किसी प्रकार का भी कष्ट नहीं दिया गया। वास्तव में गुरू को जहांगीर का विशेष अनुग्रह लाभ करने में भी सफलता प्राप्त हुई। सम्राट के अनुग्रह द्वारा गुरू को चन्दूसाह नामक लाहौर के दीवान से बदला लेने में सफलता हुई जोकि गुरू के पिता के पीड़न तथा मृत्यु में साधक रह चुकाथा‡। गुरूने जहांगीर के आधीन नौकरी भी स्वीकार

*कनिंघम। पंथ प्रकाश का लेखक वर्णन करता है कि यजसलमेर का भागा हुआ राजाराम प्रताप गुरू हरगोविन्द की शरण में आया हुआ था। इस राजा का गुरू हरगोविन्दके साथ इतना अधिक प्रेम बढ़गया कि जब गुरुहरगोविन्द की मृत्यु हुई उस समय राजा उसका पुत्र रामसिंह गुरु हरगोविन्द की जलती हुई चितापर कूद पड़े और दोनों ने अपने को भस्म कर दिया। पंथ प्रकाश का रचयिता यार खां तथा ख्वाजा सराय नामक दो मनुष्यों का वर्णन करता है जो कि मुग़ल सेना के अधिकार युत सैनापति थे और जिन्होने कि गुरू की शरण ली थी।

†दबिस्तान्। कनिंघम द्वारा 'तोपची' का अनुवाद Artillery man के स्थान पर "Matchlock men" करता है।

‡डाक्टर ई० ट्रमा कहता है कि गुरुहरगोविन्द ने अपने ही हाथोंमें न्याय ले रक्खा था और सम्राट की सहायता अथवा अनुज्ञा के बिना ही उसने दीवान को मार डाला था मैं समझता हूं कि यह विचार मिथ्या है। चन्दू

करनौ और नालागढ़ के विद्रोही सरदार ताराचन्द* नामकको परास्त करने के लिये गुरु को भेजा गया। गुरु तुरन्त ताराचन्द को परास्त कर सम्राट के पास ले आया। उस समय से गुरु पंजाब के राज्याधिकारियों के ऊपर एक प्रकार का निरीक्षक नियुक्त करदिया गया और ७०० घुड़सवार १००० पैदल तथा ७ तोपों का उसको स्वामी बनादिया गया। गुरु कुछ दिनों इस प्रभुत्व को धारण करता रहा। यहां तक कि वह एक समय सम्राट के क्रोध का पात्र बना। इस समय गुरु को अधिकारच्युत कर तथा प्रवासित कर ग्वालियर के दुर्ग में क़ैद कर दिया गया। क़ैदसे छूटनेके पश्चात् भी जिस समय तक इस गुरु को आत्मरक्षा के लिये शस्त्र धारण करने पर विवश नहीं कर दिया गया उसने कई वर्ष शान्ति के साथ बिता दिये। गुरुहरगोविन्दका युद्ध चरित कई वर्षोंतक चलता रहा। इस समय के भीतर उसने तीन संग्राम किये और तीनों में विजय प्राप्त की।

१—इनमें सब से पहिले संग्राम का उद्दीपक लाहौर का शासक था। एक भक्तिमान तुर्किस्तान से गुरु के लिये कुछ विशेष जाति के घोड़े लिये आरहा था। लाहौर के नाज़िम ने उन घोड़ों को पकड़ लिया और उन्हें सम्राट के लिये रख लिया। सम्राट ने उनमें से एक घोड़ा लाहौरके क़ाज़ी रुस्तमखां नामक को प्रदान किया। गुरु ने सफलता के साथ यह घोड़ा फिरसे प्राप्त कर लिया क़ाज़ीका अपमान करनेके उद्देश्य

की टांगों में एक रस्सा बांधा गया और उसे गलियों में घसीटा गया और अत्यन्त पीड़ा दिये जाने के पश्चात् उसके प्राण लिये गये।

*पंथ प्रकाश तथा दबिस्तान्।

से गुरु उसकी एक प्यारी बालिका* को भी ले आया। परिणाम यह हुआ कि लाहौर के नायब नाज़िम मुखलिस खां तथा क़ाज़ी के दो पुत्रों ने ७००० योधाओं सहित गुरु के ऊपर आक्रमण किया। गुरू ने ५०००† योधाओं सहित इन लोगों का सामना किया। अमृतसर से ४ मील दूर बड़ाली नामक स्थान पर एक युद्ध हुआ जिसमें कि मुग़ल सेना सर्वथा परास्त हो तित्तर बित्तर करदी गयी‡।

इस पराजय के दो सप्ताह पीछे मुग़ल सेना के १५०० योधाओं ने फिर एक बार अमृतसर में गुरू के ऊपर आक्रमण किया। गुरू ने पहिले कुछ प्रतिरोध किया किन्तु फिर वह यह समझ कर कि विवेक भी वीरता का एक आवश्यक अंग है अपने पहाड़ी आश्रयस्थानों में भाग गया। इसके एक वर्ष पीछे जब कि गुरू स्वयं अपने स्थापन किये हुए श्री हरगोविन्दपुर नामक एक नगर में विश्राम कर रहा था अकस्मात् अलीबख़श तथा इमाम बख़श के आधीन जालन्धर के नाज़िम

*सिक्ख लोग अपने इतिहासों में लिखते हैं कि वह क़ाज़ी की पुत्री थी। कनिंघम साहब के अनुसार मुसलमान लोग बताते हैं कि वह एक गणिका थी और उस लड़की का हिन्दू नाम (कौलान्) मुसलमानों के मत को दृढ़ करता है। सम्भव है कि लड़की पहिले हिन्दू हो और क़ाज़ी उसे बलात् भगा कर ले गया हो। उन दिनों इस प्रकार की घटनाएं कदापि असामान्य न थीं। गुरु को हिन्दुओं का एक संरक्षक समझकर सम्भव है कि उसने भागकर गुरु की शरण लेली हो। गुरु ने उसके साथ अनुग्रह का व्यवहार किया तथा अमृतसर में एक मन्दिर बनाकर जोकि आजदिन तक उसके नाम पर कौल सर कहलाता है उसे सदा के लिये अमर कर दिया।

†पंथ प्रकाश के लेखक के अनुसार केवल ३००० सेना थी

‡पंथ प्रकाश के अनुसार यह युद्ध १३ चैत सम्वत १६८५ विक्रमी को हुआ था (१६२८ ई०)

की सेना ने उसपर आक्रमण किया। गुरू ने अपने २००० सिक्ख योधाओं सहित ५००० मुग़ल सेना का प्रतिरोध किया और पूर्ण विजय प्राप्त की। थोड़ी देर पीछे हारे हुए संग्राम को फिर से लाभ करने के लिये नाज़िम स्वयं आ पहुँचा किन्तु वह भी वधकर दिया गया।

२—दूसरी बड़ी लड़ाई का जिसको कि कनिंघम भी वर्णन करता है गुरु स्वयं उद्दीपक था। लाहौर के नाज़िम ने उन घोड़ों को बलात् छीन कर जो कि गुरु का एक अनुयायी गुरू के लिये तुर्किस्तान से लाया था गुरू की जो कुछ अवज्ञा की थी उसे गुरू कभी भी न भूला। अब गुरु ने अपने एक विश्वासनीय अनुयायी* को इस उद्देश्य से लाहौर भेजा कि वह यत्न करके दोनों घोड़ों को वापिस ले आवे। यह मनुष्य गुरु की सेना में भरती होने से पूर्व एक साहसिक लुटेरा रह चुका था।

विधिचन्द अपना वेश बदल कर घसियारा बन गया और धीरे धीरे राजकीय अश्वशालाओं में अश्वपाल नियुक्त हो गया। उन दिनों रावी नदी की एक शाखा ठाक दुर्ग के नीचे से उसकी दीवारों का प्रक्षालन करती हुई बहती थी। एक दिन अंधेरी रात के समय विधिचन्द एक घोड़े पर चढ़ कर नीचे नदी में कूद पड़ा और उस घोड़े को सकुशल गुरू के पास ले आया। गुरु अत्यन्त प्रसन्न हुआ किन्तु इस घोड़े को देखकर उसके हृदय में उसके साथ के दूसरे घोड़े को प्राप्त करने की उत्कण्ठा भड़क उठी और विधिचन्द की फिर एक बार अपने भाग्य की परीक्षा

*गुरु विलास तथा पथ प्रकाश के अनुसार यह सूरसिंह का रहने वाला विधिचन्द नामक एक छिन जाति का जाट था।

करने के लिये भेजा गया। इस बार उसने खोजी का वेश धारण किया और यह प्रतिपादन किया कि, 'मैं हर प्रकार के चोर की खोज लगा सकता हूं।" वह शीघ्र दुर्ग के भीतर ले जाया गया और उससे यह कहा गया कि वह अपनी दक्षता द्वारा उस चोर की खोज लगाने का प्रयत्न करे जो कि राजकीय अश्व को चुरा ले गया था। उसने यह प्रार्थना की कि 'मुझे उस स्थान पर अकेला छोड़ दिया जावे जहां से कि घोड़ा चुराया गया था।' इसके पश्चात् अवसर पा वह दूसरे घोड़े की पीठ पर चढ़ कर उसे ले फिर नदी में कूद पड़ा।

तथापि उसने अपने वचन को पूरा किया और ठीक कूदते समय यथाशक्ति चिल्लाकर बता दिया कि चोर कौन था तथा चुराया हुआ घोड़ा कहां गया हुआ था। साथ ही उनका अपमान करते हुए उसने यह आह्वान किया कि, "यदि तुम में शक्ति है तो मेरे स्वामी सच्चे बादशाह गुरू हरगोविन्द से दोनों घोड़े लौटा लाओ।"

परिणाम यह हुआ कि एक प्रबल सेना गुरू पर आक्रमण करने के लिये भेजी गयी। अबदुल्लाखां, सलीमखां तथा यहलेलखाँ ने २२०० योधाओं सहित गुरु पर आक्रमण किया मालवा देश के लहरा नामक एक ग्राम में संग्राम हुआ और फिर एक बार गुरु ने विजय प्राप्त की।*

इस संग्राम के पश्चात् गुरु ने कुछ दिनों के लिये युद्ध क्षेत्र से तटस्थ हो बैठना ही अपने लिये उपयुक्त समझा। तदनुसार वह भटिण्डा के मरुस्थलों में चला गया और वहां

*पन्थप्रकाश के अनुसार यह लड़ाई पौष सम्वत् १६८८ अर्थात् दिसम्बर १६३१ में हुई थी। किसी भी अङ्गरेज़ इतिहास लेखक ने इस संग्राम की तिथि नहीं बतलायी।

पर अपने सिद्धान्तों का प्रचार करता रहा तथा नये नये लोगों को अपने मत में लेता रहा। लगभग दो वर्ष पीछे वह एक बार अमृतसर देखने के लिये गया। सरकार के साथ शत्रुता होने के कारण गुरु ने इस नगर को वस्तुतः छोड़ ही रक्खा था। इसके पश्चात् वह जालन्धर के निकटवर्ती करतारपुर नामक स्थान में चला गया। इस बीच गुरु तथा उसके धार्मेय पयन्दाखाँ में कुछ परस्पर शत्रुता उत्पन्न हो गयी। पयन्दाखाँ संनद्ध शरीर तथा एक अत्युत्तम योद्धा था। समस्त संग्रामों में वह गुरु की सेना का सेनापति अथवा नायक रह चुका था। अब वह स्वभावतः यह अनुभव करने लग गया था कि, मैं ही गुरु की आचर्त्तित विजयों का कारण हूं।* एक छोटी सी बात पर इन दोनों में विवाद उत्पन्नहोगया। गुरु की धृष्टता सम्राट के हृदय में खटक रही थी। और चन्दू का पुत्र तथा गुरु का अपना बन्धु पृथ्वी का पुत्र सदा उससे बदला

---

*गुरु ने उसके साथ सदैव अत्यन्त अनुग्रह का वर्ताव किया। अपने नाम से उसके विवाह रचवाया था तथा उसके लिये भी हरगोविन्दपुर में एक सुन्दर मकान बनाया और उसको प्रसन्न करने के लिये एक सराय और एक मसजिद भी बनवाई।

†कनि घम लिखता है कि विवाद का कारण-यह था कि पयन्दा गुरु के एक अतिप्रिय शशादन (बाज) को अपने पास रखलिया था। ग्रन्थ प्रकाश तथा गुरु विलास के अनुसार इस कारण पयन्दा के दामाद की नीचता थी जिसने कि गुरु के पुत्र की एक मोतियों की माला एक सुन्दर खड्ग तथा अन्य अनेक चीजें चुराली थीं। मुन्शी सोहनलाल लिखता है कि पयदा इस कारण गुरु की अप्रसन्नता का पात्र बना क्योंकि वह घोड़ा तथा खिल्लत जो कि गुरु ने उसे उस के अपने प्रयोग के लिये दी थीं उसने अपने दामाद को दे दीं।

लेने की ताक में रहते थे। ये लोग पयन्दा के साथ मिल गये और उसके बल, प्रसन्न करने के लिये वीरता तथा सेनापति की अनुचित प्रशंसा करने लगे। सब मिलकर सम्राट के पास गये और यह निवेदन किया कि 'यदि हमें पर्याप्त सेना दी जावे तो हम इन चार गुरू का विध्वंस कर देंगे। इसके परिणाम रूप अप्रेल सन् १६३४ ई० को करतारपुर में गुरु पर आक्रमण किया गया। एक घोर संग्राम हुआ जिसमें गुरूने विश्वास घातक पयन्दा को अपने हाथसे वध किया और विकट संहार के साथ मुग़ल सेना का मुंह मोड़ दिया चन्दू का पुत्र भी इस ही संग्राम में काम आया।

यद्यपि गुरूने विजय प्राप्त की तथापि उसने समस्थल में और अधिक दिनों तक रहना अपने लिये क्षेम न समझा इस कारण वह यहां के ऊपर किरातपुर नामक एक स्थानमें चला गया और वहां सन् १६४४ ई० तक अर्थात् अपनी मृत्यु के समय तक पूर्ण शान्ति के साथ निवास करता रहा। सिक्ख गुरुओं में हरगोविन्द सब से पहिले गुरू था जिसने कि सामयिक जीवन अपने ऊपर लिया और उसका इतिहास इस बात को प्रकट करता है कि उसके लिये अपनी कमर से खड्ग बांधना व्यर्थ न गया हरगोविन्द के पश्चात् इस बात का कोई भय न था कि सिक्ख लोग फिरसे महन्तों अथवा भिखारियों के परिमित गुणों तथा परिमित उपयोगिता में जा गिरेंगे।"* सिक्खों को न केवल यह बात ही स्पष्टतया समझा दी गई थी कि सांसारिक व्यापार गहरी से गहरी धार्मिकता तथा उच्च से उच्च पुरुषता के साथ सर्वथा संगत है और निज देश की रक्षा के लिये शस्त्र धारण करना प्रत्येक

* कनिंघम पृष्ठ ५५

मनुष्य का परम धर्म है।* वरन् लगातार विजयों द्वारा सिक्ख लोग अपनी शक्ति तथा मुग़ल सरकार की निर्बलता को भी अनुभव करने लग गये थे। दबिस्तां में एक आख्यायिका दी हुई है जिससे पता लगता है कि हरगोविन्दके आधीन सिक्खों का बल कितना कुछ बढ़ गया था। एक दिन हरगोविन्द के किसी अनुयायी ने एक मूर्तिकी नाक तोड़ डाली। आसपास के कई राजाओं ने जो कि निस्सन्देह सब मूर्ति पूजक थे गुरू से आ शिकायत की। गुरू ने उस सिक्ख को बुला कर पूछा कि क्या तुम ने ऐसा किया है? सिक्ख ने उत्तर दिया कि "यदि यह देवता मेरे विरुद्ध साक्षी देवे तो मैं स्वीकार करता हूं कि मैं मार डाला जाऊं।" राजाओं ने कहा "देवता किसी प्रकार बोल सकता है?" सिक्ख ने प्रत्युत्तर दिया "तब यह तुम्हारी रक्षा किस प्रकार करेगा?" यहीं पर सब बात समाप्त हो गयी।

उसही ग्रन्थ में एक और आख्यायिका दी हुई है जिस से प्रतीत होता है कि गुरू अपने गूढ़ प्रभाव तथा अपने अनुयायियोंके महान सामर्थ्य अथवा क्षमताको पूर्ण रीति से जानता था। दबिस्तां का रचयिता गुरू के गाढ़ मित्रों में † से था। एक दिन उस के साथ बातचीत करते हुए गुरू ने अपने मुसलमान मित्र की विश्वास शीलता के साथ क्रीड़ा करनेके उद्देश्य से अथवा उसके गर्व का अपमान करने के विचारसे उस

*मोहसिन फ़ानी अपने ग्रन्थ में लिखता है कि सन् १०५३ हिजरी में उसका गुरु के साथ सम्पर्क हुआ। हरगोविन्द ही ने उसे पहिले पांच गुरुओं का वृत्तान्त सुनाया और छटवें गुरु का इतिहास उसने स्वयं अपनी आंखों से देख कर लिखा।

†मनु आततायियों के विध्वंस का आज्ञा देता है।

से कहा कि, "उत्तर के एक राजा ने देहली नामक एक स्थान का पता लगाने से तथा वहां के राजा का नाम और उस का वंश पूछने के लिये एक दूत भेजा है। मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि उसने Commander of the Faithfull Lord of the ascendant इत्यादि के विषय में कुछ नहीं सुना*।"

* कनिंघम पृष्ठ ५७।

अध्याय ८

प्रशान्त संघटन ।

१—हरराय (१६४५—१६६१)

गुरु हरगोविन्दका सबसे बड़ा पुत्र गुरुदित्ता अपने पितासे पूर्व कह चुका था। गुरुदित्ता का छोटा पुत्र हरराय अपने पितामह का उत्तराधिकारी बना। गद्दी पर बैठने के समय हरराय की आयु केवल १४ वर्ष की थी उससे ठीक पूर्व ही सिक्ख जाति अपने जीवन में एक सत्तोभ का सामना कर चुकी थी और अब कुछ दिनों के लिये विश्राम का लिया जाना स्वाभाविक था।

इसके अतिरिक्त दो विशेष कारणों ने विश्राम अथवा शांति के पक्ष को और भी अधिक पुष्ट किया।

(१) एक कारण तो यह था कि हरराय स्वभाव से ही शांत चित्त तथा विचार शील था। लड़ाई के कोलाहल अथवा मृगया के उत्ताप की अपेक्षा वह पहाड़ों की निर्जनता तथा शांत समाधि योग को अधिक उत्तम समझता था। कहा जाता है कि एक दिन अपने उद्यान में टहलते समय हरराय का अंगरखा अकस्मात् कुछ फूलों से लग गया जिससे कि वे फूल पृथवी पर गिर पड़े। इस पर गुरु का हृदय इतना भर आया कि उसके पश्चात् उद्यान में भ्रमण करते समय वह सदा ध्यान पूर्वक अपना एकका हाथ में लिये चला करता था*। हरराय जैसा मनुष्य जिसका हृदय एक फूल के टूट जाने से

*यह कहानी पथ प्रकाश में दी हुई है।

फूलना भर आया। मुग़लों के एक विरुद्ध सेना लेजाने के योग्य न था।

(९) जहांगीर और शाहजहां के मृदुशासन में लोगों को शस्त्र धारण करने का जो प्रलोभन होता था वह औरंगज़ेब के वज्र शासन में जब कि मुग़ल राज्य अपना अधिक से अधिक बल तथा तेज प्राप्त किये हुये था जाता रहा। जिस क्रूरता के साथ औरंगज़ेब ने अपने पिता तथा भ्राताओं का काम तमाम किया उसे देख हरराय के से चरित्र तथा पदवी वाले द्रोहों के हृदय में आशा अथवा आत्म विश्वास का उत्पन्न होना असम्भव था।

उपरोक्त कारणों से गुरू हरराय ने केवल उस समय शस्त्र उठाये जब कि उन्हें निज मित्र दारा शिकोह की रक्षा करनी पड़ी क्योंकि दाराशिकोह केवल नाम मात्र का ही मुसलमान था और एक प्रकार से गुरू हररायका शिष्य भी था। सन् १६४८ ई० में गुरू की भेजी हुई एक औषध ने दारा शिकोह की जान बचाली थी। उस समय से ही वह गुरू का बड़ा कृतज्ञ होगया था और उसके हृदय के हिन्दू भावों तथा गुरू के पवित्र जीवन के लिये उसका प्रशंसा ने उनकी मित्रता को और भी अधिक गाढ़ कर दिया। सन् १६५८ ई० में जब कि औरंगज़ेब की सेना दारा का बड़े वेग के साथ पीछा कर रही थी उस समय दारा ने गुरू से सहायता चाही। गुरू ने अपनी एक सेना भेजी जिसने कि व्यास नदी पर औरंगज़ेब की सेना से युद्ध किया। और उसे नदी पार करने से उस समय तक रोक रक्खा जब तक कि दारा एक अधिक रक्षित स्थान पर न पहुंच गया।

औरंगज़ेब ऐसा मनुष्य न था जो एक अनपेक्षित और

में आये हुये इस विरोध को भूल जाता। इस लिये उसने देहली के सिंहासन पर बैठते ही गुरु को अपने सम्मुख बुलाया भेजा। हरराय उसकी आज्ञा के अनुसार स्वयम् नहीं गया। वरन् उसने अपने सबसे बड़े पुत्र रामराय को सम्राट के पास इस मामले को समझाने के लिये भेज दिया। सम्राट ने रामराय के साथ अनुग्रह* का व्यवहार किया परन्तु उसको बंधक के समान दरबार में रोक लिया इस उद्देश्य से कि उसका पिता पंजाब में शांति बनाये रखने पर बाधित हो।

---

*प्रतीत होता है कि रामराय बड़ा चलता हुआ दरबारी था और सब बातों की अपेक्षा सम्राट को प्रसन्न रखने का अधिक ध्यान रखता था। 'ग्रंथ साहब' में यह एक पद आता है।

मिट्टी मुसलमान की पेड़े पई घुमयार।
घट भांडे इटा कीया जलती करे पुकार॥
مٹی مسلماں کی پیڑے پئی کمہیار –
گھڑ بھانڈے اٹاں کیاں جلتی کرے پکار –

*जिसका अर्थ यह है —

'एक कुम्हार ने मुसलमान के शरीर की मिट्टी बनाई और उससे ईंटें और बर्तन बना कर आवे में रक्खे जब आग लगी तो उसमें से हाहाकार के शब्द सुनायी दिये।" सम्राट ने रामराय से पूछा कि ग्रंथ साहब में मुसलमान के लिये ऐसे बुरे शब्दों का प्रयोग क्यों किया गया है। चतुर लड़के ने तुरत उत्तर दिया कि यह केवल लिखने वाले की भ्रान्ति है। वास्तव में "बेईमान" शब्द लिखना था "मुसल्मान" लिखा गया। कोई आश्चर्य नहीं कि औरंगज़ेब इससे प्रसन्न होगया और उसने गुरु को क्षमा कर दिया परंतु स्वयम् रामराय के लिये यह चतुराई हानिकर ही सिद्ध हुई। क्योंकि गुरु ने जब यह सुना कि उसे सत्य तथा वीरता भेंट करने से क्षमा प्राप्त हुई है, तो उसे बड़ा क्रोध आया। और उसने इस

इसके पश्चात् हरराय ने कभी शस्त्र न उठाये वरन् वह केवल प्रशांत संगठन के कार्य में लग गया उसने कई एक प्रभावशाली कुटुंबों को अपने मत में लेकर उन्हें सिक्ख सम्प्रदाय में मिला लिया।

कैथल के भाई वंश का संस्थापक भाई भक्तु* गुरु हरराय के साथियों में से था। यह वही भाई भक्तु है जिसकी सहायता ने अंग्रेजी सेनापति लोर्डलेक (Lord Lake) को होलकर का पीछा करते समय इतना लाभ पहुंचाया था।

बागढ़िया† के प्रतिष्ठित भाई वंश के लोग भी अपना आरंभ गुरु हरराय से ही बताते हैं और उनके पूर्वज धर्मसिंह ने इस ही गुरु के आधीन रहते हुए प्रतिष्ठा लाभ की थी। पटियाला जींद और नाभा के राजाओं का पूर्वज "फूल" तथा लोहगढ़ का पहला सरदार "काला" इन सब को भी

गुरु ने अपने चतुर पुत्र को उसकी कायरता के कारण पिता की गद्दी से विरहित कर दिया। यह कहानी पंथ प्रकाश में दी हुई है। कनिंघम का यह कहना मिथ्या है कि रामराय को एक नीच जाति की माता अथवा एक टहलनी के पेट से उत्पन्न होने के कारण गद्दी से विरहित किया गया था। हरराय के चार पत्नियां थीं वे सब आपस में बहिनें थीं। अर्थात् एक ही माता पिता की पुत्रियां थीं सिक्ख लेखक उन चारों बांदियों के नाम भी देते हैं जो कि उन चारों पत्नियों के साथ आयी थीं परन्तु उन के लेखों से इस बात का कि रामराय किसी बांदी से उत्पन्न हुआ था तनिक भी पता नहीं लगता।

*भक्तु के पुत्र गोरा ने एक समय गुरु की स्त्रियों तथा उनके माल असबाब को मुगल सेना के हाथों में पड़ने से बचाया था जब कि वे सतलज नदी को पार कर रहे थे।

गुरू हरराय के पूर्ण अनुग्रह ने ही धीरे धीरे उन्नति तथा महत्व प्राप्त करने के योग्य बनाया।

२—गुरू हरकिशन और गुरू तेगबहादुर
(१६६१—१६७५)

गुरू हरराय का १६६१ ई० में देहांत होगया और उनका छोटा पुत्र हरकिशन जो उस समय केवल पांच वर्ष का था अपने पिता की गद्दी पर बैठा। हरकिशन का बड़ा भाई रामराय इस समय औरंगज़ेब के दरबार में सम्राट का अनुग्रह पात्र बना हुआ था। उसने सम्राट से अपने पिता के निर्णय के विरुद्ध निवेदन किया क्योंकि पिता ने गद्दी प्रदान करने के समय रामराय के अधिक विशिष्ट अधिकार* की ओर ध्यान नहीं दिया था। रामराय ने सम्राट को यह भी जताया कि हरकिशन जैसे नन्हें बालक के आधीन बाप दादाओं का बनाया हुआ समस्त कार्य नाश हो जावेगा और उनके अधिक महत्वाकांक्षी अनुयायी किसी प्रकार का बंधन न होने के

* धर्मनियम के कहने के अनुसार यदि रामराय किसी बांदी का पुत्र होता तो उसके लिये अपने पिता की गद्दी का अधिकारी होना अत्यन्त असंगत होता। परन्तु जैसा कि मैंने पहले बतला दिया है वह किसी नीच माता का पुत्र नहीं था क्योंकि उसकी समस्त सौतेली माताएं तथा उसकी अपनी माता अनूपशहर के एक प्रसिद्ध खत्री की पुत्रियां थीं। चारों पुत्रियों को एक ही पुरुष से विवाह देना बड़ा विचित्र प्रतीत होता है परन्तु जब हम यह विचार करते हैं कि उस समय के प्रतिष्ठित तथा पुराने घराने के हिन्दू अपनी पुत्री केवल उसीही पुरुष को देना उचित समझते थे जिसके साथ विवाह देना वह एक बार अपने मन में विचार होते थे तो यह बात सरलता के साथ समझ में आजाती है। चन्दू की पुत्री तथा स्वयम् तीसरे

कारण पंजाब में उपद्रव खड़ा कर देंगे। रामराय की युक्तियां ऊपर से ठीक प्रतीत होती थीं इस कारण समाट ने हरकिशन को अपने सन्मुख उपस्थित होने की आज्ञा दी हरकिशन देहली पहुंचा। और समाटने उसका गद्दी पर बैठना स्वीकार कर लिया। परन्तु शीघ्रही उसके शीतला निकल आई जिस के कारण वह १६६४ ई० में मर गया*।

गुरु की पुत्री की कथाएं इस विषय में उदाहरण हैं। उपस्थित प्रसंग में इन पुत्रियों के पितामह, पिता माता तथा उनके सब से बडे भाई ने पृथक२ अपने मनों में यह विचार किया था कि एक लड़की का विवाह गुरु के साथ करेंगे। अकस्मात् चारों वृद्ध जनों के विचार मे एक एक पुत्री अलग अलग आई हुई थी परन्तु जिस पुरुष से विवाह करना चाहते थे वह यह गुरुही था। इसलिये चारों लडकिया एक ही घर में गयीं।

*हरकिशन एक विशेष कर होनहार लडका था। सिक्ख लेखकों ने उसकी असाधारण बुद्धि के उदाहरण रूप बहुत सी कथाएं लिखी हैं। कनिंघम कहता है कि एक समय उसको देहली के शाही महल में लेगये क्योंकि वहां की बेगम उसे देखना चाहती थीं। वहा उसके चारो ओर कई बेगमें एक सा शृंगार किये खड़ी होगईं और उससे पूछा कि बताओ इनमें से समाज्ञी कौन सी है। हरकिशन ने तुरत समाज्ञी को पहचान लिया और उसकी गोद में जा बैठा। (पंथ प्रकाश में लिखा है कि यह पूरन जयसिंह सवाई की रानी के विषय में किया गया था। एक और मनोरंजक कथा है जिससे कि उसकी असामान्य बुद्धि का पता लगता है। एक दिन औरंगजेब ने उसके दोनों हाथ अपने एक हाथ में पकड़ कर कहा बताओ तुम क्या कर सकते हो यदि मैं तुम्हारे एक चपत लगादूं ?" लड़के ने उत्तर दिया ऐ बादशाहों के बादशाह जिसका हाथ एक हाथ पकड़ लेवें उसे और किसी से भय नहीं। अब मुझे किस का भय हो सकता है जब [illegible] मेरे दोनों हाथ पकड़ लिये हैं।"

जब उसका अंत समय निकट आया तो उसने गुरुत्व के चिन्ह अपने पितामह के छोटे भाई तेगबहादुरके पास भेज दिये जोकि बकाला* नामक गाँवमें एकान्त सेवन किया करता था। तेगबहादुर १६६४ ई० में गद्दी पर बैठा। यह एक बड़ा शान्त स्वभाव वाला मनुष्य था। और यद्यपि वह अपने पिता के साथ उस की लड़ाइयों में जाता रहा था और उसका पिता अपने अस्त्रशस्त्र उसहीके पास छोड़गया था तथापि वह अपने क्षत्रियों के से नाम "तेगबहादुर" की अपेक्षा 'तेगबहादुर' (अर्थात् वह मनुष्य व अतिथि सेवा तथा दयालुता में बढ़ा हुआ हो) कहलाना अधिक उत्तम समझता था। अपनी धर्मनिष्ठा तथा अतिथि सेवा के कारण वह बहुत शीघ्र दूर २ तक विख्यात होगया और चारों ओर से सिक्ख लोग आ आकर उसके पास एकत्रित होने लगे। यद्यपि अपने व्यक्तिगत जीवन में वह एक अत्यन्त विनीत तथा सरलशील मनुष्य था तथापि उसका दरबार सदा राजकीय शोभा तथा राजविभव से युक्त रहता था। और वह स्वयं सदा "सच्चा" बादशाह कहलाता था तथा उसही नामसे आह्वान किया जाता था। रामराय इस समय भी शाही दरबारमें सम्राटका अनुग्रह पात्र बना हुआ था और उसके हृदय में बराबर यह आशा लगी रहती थी कि एक न एक दिन मैं अपने पिता की गद्दी पर बैठ जाऊंगा। औरंगज़ेब के इसलाम मत प्रचार रूपी उत्साह के मार्ग में तेगबहादुर

---

*यह बात ध्यान देने योग्य है कि गुरु की पदवी पैतृक कर दिये जाने के पीछे भी गद्दी पर जो सब से अधिक योग्य पुरुष मिलता था वही बैठाया जाता था। इस आठ वर्ष के बालक ने भी सर्वोत्तम चुनाव किया कि तेगबहादुर के सामने अपने भ्राता तथा चाचा दोनों को गद्दी के योग्य न समझा।

एक प्रबल रुकावट था। इसलिये औरंगज़ेब उसके नाश करने का केवल एक बहाना ढूंढ़ रहा था। रामराय के निवेदन करने पर सम्राट ने तेग़बहादुर को देहली बुलवाया। परन्तु जयपुर का राजा गुरू के प्रशंसकों में से था। उसने यह कहकर गुरू के लिए सम्राट से क्षमा प्रार्थना की "ऐसे २ महात्मा" लोग तो राज्याकांक्षा की अपेक्षा तीर्थयात्रा करना अधिक उत्तम समझते हैं। और मैं अपनी आगामी बंगयात्रा के समय गुरूजी को अपने साथ ले जाऊंगा"।

तेग़बहादुर राजा* के साथ पूर्व की ओर चला गया। उस के साथही आसाम गया और आसाम के राजा† पर विजय प्राप्त करने में तेग़बहादुर ने उसे बड़ी सहायता दी। इसके पश्चात् आसाम का राजा भी गुरू तेग़बहादुर का अनुयायी बन गया।

इसके पश्चात् गुरू पंजाब लौट आये और कहलूर के राजा से कुछ ज़मीन मोल लेकर,उसने बखोवाल का ग्राम बसाया और आप भी यहां ही रहने लगा। सिक्ख लोग फिर आ आकर उसके चारों ओर इकट्ठे होने लगे और यदि तेग़-बहादुर के विरुद्ध सम्राट के कान भरे जाने की कोई आव-श्यकता थी तो रामराय को ऐसा करने का यह एक दूसरा अवसर हाथ आया। सम्राट ने गुरू के ऊपर राजद्रोह का दोष

---

*समस्त ग्रन्थों में इस राजा का नाम जयसिंह मिलता है परन्तु टाड के राजस्थान में लिखा है कि जिस राजा ने आसाम पर चढ़ाई की वह जयसिंह का पुत्र रामसिंह था पंथप्रकाश में लिखा है कि आसाम पर जयसिंह के पुत्र राजाकिशनसिंह ने चढ़ाई की थी। संभव है कि दोनों राजकुमार वहां गये हों।

†पंथ प्रकाश में इस राजा का नाम रामराय है।

आरोपण कर उसे फिर एक बार देहली बुलाया। और इस-लाम मत स्वीकार न करने के कारण संम्राट की आज्ञा से गुरु तथा उसके दो मुख्य साथी मार डाले गये। इन साथियों में से एक का नाम मातीराम था जोकि ज़िला जेहलम में करयाला नामक स्थानके भाई' वंश का मुखिया था। कनिंघम कहता है कि "वास्तव में यह प्रतीत होता है कि तेगबहादुर अपने पिता के आदर्श परही चलना चाहता था परन्तु उसके समान पग न धर सका। और उसने हांसी तथा सतलज के बीच के जंगलों को अपने धावों की भूमि नियुक्त की और लूट मार कर वह अपना तथा अपने शिष्यों का निस्सन्देह इस ढंग से पेट पालन करता रहा जिससे कि वहां के कृषकों के बीच उसकी सर्वप्रियता में कमी न पड़ी। इसके अतिरिक्त यह भी कहा जाता है और विश्वासनीय प्रतीत होता है कि तेगबहादुर ने एक परमोत्साही मुसलमान फ़क़ीर हाफ़िज़ आदम नामी को भी अपने साथ गांठ रक्खा था और इस प्रकार वह स्वयं धनाढ्य हिन्दुओं से कर उगाहता था और उसका साथी धनाढ्य मुसलमानों से धन इकट्ठा करता था। यही नहीं वरन् हरप्रकार के भगोड़ों का ये लोग तुरन्त अपनी रक्षा में लेलेते थे और इनके बलके बढ़ने से देश की समृद्धि में बाधा पड़ती थी। शाहीसेना ने इनपर चढ़ाई की और अंत में इनको परा-स्त कर दोनों को क़ैद कर लिया गया। मुसलमान संत को देश से निर्वासित करादिया गया परन्तु औरंगज़ेब ने दृढ़ संकल्प कर लिया कि यह सिक्ख अवश्य मरवा डाला जाय"।

*"सैरउलमुताख़रीन" के पश्चात्ती लेखक सय्यद गुलाम हुसेन के प्रमाण पर कनिंघम ने यह वृतान्त लिखा है। पंथप्रकाश के लेखक ने भी इस वृतान्त को उद्धृत किया है परन्तु उसे सत्य नहीं माना। कनिंघम ने

इस संक्षिप्त वृत्तांत से हमें पता लगता है कि तेगबहादुर सिक्खों की सामाजिक व्यवस्था को अधिक उन्नति न देसका। उसने लगभग दश वर्ष राज्य किया परन्तु इस समस्त समय में वह सदा घरेलू झगड़ों तथा औरंगज़ेब के द्वेष के कारण क्लेश में ही रहा। इसलिये यदि औरंगज़ेब की अनन्त शक्ति के भय से भी वह न रुका होता तो भी उसे इतना अवकाश नहीं था कि वह अपने पिता की तितर बितर हुई सेना को एकत्रित कर शाही सेनाके विरुद्ध चढ़ाई करता। परन्तु फिर भी "तेगबहादुर की यात्रा"* नामी पुस्तक से हमें पता लगता है कि उसने मालवा देश में फिर कर उस कार्य को पूरा किया जोकि उसके पूर्वाधिकारियों ने माझा तथा दोआबा प्रदेशों में किया था। किन्तु उसकी मृत्यु उसके जीवन भर के समस्त कार्यों से बढ़ कर थी। समस्त उत्तरीय भारत में उसे सब जानते थे, राजपूताने के राजपूत राजे उसका अत्यन्त आदर करते थे और पंजाब के कृषक सचमुच उसकी पूजा करते थे। इसलिये समस्त हिन्दू जाति ने उसकी हत्या को अपने धर्म के नाम पर एक बलिदान समझा। समस्त पंजाब में क्रोध तथा प्रतिकार की अग्नि भड़क उठी। माझा तथा मालवा के बलवान जाटों को केवल एक नेता की आवश्यकता थी जिसकी पताका के नीचे लड़कर वे उस अपमान का बदला ले सकते जो उनके धर्म का किया गया था। नवयुवक गोविन्द उन्हें इस प्रकार का नेता दिखायी दिया।

गलती से 'हाफ़िज़ आदम' को 'आदम हाफ़िज़' लिख दिया है। नवल किशोर के छापे की "सैर" का ४०१ पृष्ठ देखो।

*भदौर के चीफ़ सरदार अतरसिंह ने इसका अंग्रेजी में अनुवाद किया है।

अध्याय ९

गुरु गोविन्दसिंह के समय का सिक्ख मत।

गुरु गोविन्दसिंह की स्थिति और उनके प्रयत्न।

(१६७५—१६९५)

सिक्ख मत के जीवन में गुरु तेगबहादुर की मृत्यु के समय मानों एक विशिष्ट काल का अन्त हुआ गुरु गोविन्दसिंह के समय से लेकर इस मत का स्वरूप सर्वथा पलट गया। यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि गुरु गोविन्दसिंह के आगमन से पूर्व भी सिक्खों में उनके भावी महत्व के कुछ चिन्ह दिखायी देने लगे थे तथापि उस समय तक सिक्ख धर्म के मुख्य लक्षण ईश्वर भक्ति तथा धार्मिकता ही थे। परन्तु गुरु गोविन्दसिंह के आधीन रणोत्साह तथा वीरता इस मत के मुख्य लक्षण बन गये। गुरु गोविन्दसिंह ने सिक्खों के आचार व्यवहार में जो नये परिवर्तन किये वे ऐसे महान थे जिन्होंने कि सिक्ख मत के स्वरूप को ही जड़ से बदल दिया और जो कार्य कि गुरु ने अपने ऊपर लिया वह भी अत्यन्त महान तथा दुष्कर था। इसलिये यह आवश्यक प्रतीत होता है कि अपने पिता की मृत्यु के समय गुरु गोविन्दसिंह के चारों ओर जो स्थिति तथा उस स्थिति के। गुरु गोविन्दसिंहने अपने लिये विविध दृष्टियों से जितना हितकर तथा अहित कर पाया उस सब की इस स्थान पर संक्षेप से समालोचना की जावे।

हम देख चुके हैं कि किस प्रकार गुरू नानक ने पंजाब के हिन्दुओं की बुद्धि को अंधविश्वासों तथा कपट दंभ से स्वतंत्र किया। किस प्रकार गुरू अंगद ने आरम्भ के सिक्खों को एक स्वतंत्र व्यक्तिता प्रदान की। और किस प्रकार गुरू अमरदास ने उनको वैराग तथा निर्लज्ज जीवन की ओर बह जाने से बचाया। हम यह भी देख चुके हैं कि किस प्रकार गुरूरामदास ने अपनी सम्प्रदाय के बल तथा प्रभाव को बढ़ाया और किस प्रकार गुरू अर्जुन ने इस समाज को एक धर्मशास्त्र, एक राजधानी, एक कोष, तथा गुरू के रूप में एक नेता देकर उसे एक धर्मप्रधान राज्य भत्ता बना दिया। यह भी बताया जा चुका है कि किस ढंग से छठवें गुरू ने एक प्रकार की सेना बनायी और बराबर कई लड़ाइयों में विजय प्राप्त कर सिक्खों को दिखा दिया कि उनकी जाति भविष्य में क्या कुछ कर सकती थी। परन्तु इसके पश्चात् संविधान कार्य अगले गुरुओं के शांत स्वभाव तथा औरंगज़ेब के प्रबल शासन के कारण रुक गया। इस शांत समय के पश्चात् गुरू तेगबहादुर का बध हुआ जिसने कि मुसलमानी राज्य के विरुद्ध सिक्खों की, घृणा रूपी बुझती हुई चिंगारियों को फिर से प्रचण्ड कर दिया।

ठीक यही अवस्था थी जिस अवस्था में कि गुरू गोविन्द-सिंह ने निज समाज को अपने पूर्वाधिकारों से प्राप्त किया और यह बात भी स्पष्ट है कि जिस यशस्कर जीवन का गुरू गोविन्दसिंह को प्रारम्भ करना था उसके लिये यह अवस्था कुछ तुच्छ साधन न थी। वह दूसरी घटना जिस ने कि गुरू गोविन्दसिंहको लाभ पहुँचाया वह उनके समय के मुगल राज्य की व्यवस्था तथा अवस्था थी। सब से प्रथम तो यह बात

जान लेनी चाहिये उस समय भारतवर्ष में व्यवस्था कहलाने योग्य कोई भी राज्य व्यवस्था नहीं थी। सम्राट की इच्छा ही देश का एक मात्र राज नियम था और उसके शासक तथा उपशासक भी सम्राट के उदाहरण अनुकूल ही चलते थे। जहाँ कहीं न्यायालय उपस्थित थे वे सब रिश्वत लेने देने के केन्द्र थे और केवल मात्र अत्याचार तथा लूट के घर बने हुए थे और यदि कोई राज्य के विरुद्ध अपराध करता था तो उसके साथ न्याय का आभास तक न दर्शाया जाता था। शासन सर्वथा निष्ठुर तथा स्वेच्छाचारी था और युद्ध के बल अथवा सिसोदिया को राठौर से लड़ाकर वा सवाइयों को इन दोनों से भिड़ाकर व इन तीनों को मरहठों के विरुद्ध लड़ाकर उस समय का शासन चलाया जाता था।

राजपद्धति के इन स्वाभाविक दोषों तथा बुराइयों को औरंगज़ेब के पक्षपात तथा धर्मोन्माद ने और भी अधिक बढ़ा दिया। राज्य की ओर से हिन्दुओं की कुछ भी सहायता अथवा पालना नहीं की जाती थी और समस्त सरकारी दफ्तरों के द्वार हिन्दुओं के लिये बन्द कर दिये गये थे। प्रत्येक हिन्दू पर जज़िया लगाया गया और उन्हें पालकी में जाने अथवा अरबी घोड़ों पर चढ़ने तक का निषेध कर दिया गया। मन्दिर गिराये गये, यज्ञोपवीत तोड़े गये। और हिन्दुओं को बलात मुसलमान किया गया। परिणाम यह हुआ कि समस्त हिन्दू जाति में असन्तोष उत्पन्न होगया और ये लोग इस कष्ट कर अन्याय के अन्त करने का विचार करने लगे। शासकों में भी ऐक्यता अथवा संगठन न था। औरंगजेब किसी पर भी विश्वास न करता था और उसकी आशंकाएं शीघ्र ही इस हद तक पहुँच गयीं कि भय तथा त्रास से आकुल हो

उसने अपने पुत्र तक को कारावास में भेज दिया। जब किसी देश के शासकों के हृदय में संदेह, आशंका, भय तथा त्रास इतने बढ़ जावें तो समझ लेना चाहिये कि उस शासन का अंत निकट है। मुग़लों के ऐश्वर्य का सूर्य औरंगज़ेब के शासन काल के मध्य में ठीक शिर के ऊपर पहुंच चुका था और उस सम्राट के अन्त के दिनों में बड़ी शीघ्रता के साथ ढलने लगा। मुसलमान तथा हिन्दू सामन्त प्रतिक्षण अभिद्रोह खड़ा करने को प्रस्तुत रहते थे, और केवल खड्ग के बल ही वश में रक्खे जाते थे। परिणाम यह था कि साम्राज्य की नींव धीरे धीरे खोखली होती जा रही थी।

एक और घटना जिस से गुरू गोविन्दसिंह को लाभ पहुंचा यह थी कि उस समय औरङ्गज़ेब दक्षिण की स्वतन्त्र रियासतों को विजय करने तथा मरहटों के बढ़ते हुए बलका आरम्भ में ही अवच्छेद करने के यत्न में व्यग्रताके साथ लगा हुआ था। वह अपने किसी भी सेनापतिपर विश्वास न करता और अन्य समस्त असाधारण बुद्धि वाले प्रभवेश्वर तथा अभिमानी पुरुषों के समान वह यह समझता था कि यदि मैं प्रत्येक कार्य का स्वयम् निरीक्षण न करूंगा तो कोई कार्य भी सिद्ध न होगा। इस कारण उसे कई वर्ष तक राजधानी से बाहर रहना पड़ा और पंजाब को ऐसी अवस्था में छोड़ना पड़ा कि वहां कोई भी साहसी पुरुष अपनी इच्छा अनुसार चाहे जो जोड़ तोड़ कर सकता था।

इस प्रकार मुग़लों की राज्य व्यवस्था औरङ्ग़ज़ेब के पक्षपात तथा दक्षिण प्रदेश की लड़ाइयों के कारण गुरू गोविन्दसिंह को एक अति सुन्दर अवसर हाथ आया और गुरू इस अवसर से पूरा पूरा लाभ उठाने के लिये सर्वथा उद्यत थे।

किन्तु धन्य है अकबर की निर्पक्षता तथा टोडरमल की बुद्धि-मत्ता जिनके द्वारा इस समय समस्त देश पूर्णतया शान्ति-सम्पन्न था। समस्त देश सूबों में विभक्त था और प्रत्येक सूबा और कई छोटे छोटे भागों में। प्रत्येक भाग एक "करोड़ी"* के आधीन होता था और उसके नीचे 'आमिल' होते थे जो वेतन पाने वाले 'कानूनगो' तथा ग्राम नवीसों द्वारा भागों में शान्ति रखते थे और वहां से राज कर इकट्ठा करते थे। यह विन्यास व्यवहार की दृष्टि से वर्तमान विन्यास के समान था और यदि रेल तथा तार को छोड़ दिया जावे तो जिस सुगमता तथा पूर्णता के साथ आजकल इस देश की अङ्गरेजी सरकार† को चारों ओर से सूचना मिलती रहती है ठीक उसी प्रकार उस समय की मुग़ल सरकार को मिलती रहती थी। इसके अतिरिक्त यद्यपि सर्वसाधारण हिन्दू एक प्रकार अभिशप्त थे तथा सरकारी नौकरियां उनके लिये बन्द थीं तथापि उच्च पदवी तथा उच्च स्थिति के ऐसे हिन्दुओं की कमी न थी जिन्होंने अपने हिताहित को सामयिक सरकार के हिताहित के साथ मिला रक्खा था। सरकार की पालना तथा अनुग्रह के बदले में अथवा केवल इस लिये कि उन से उनकी ज़मीनें नहीं छीनी गयी थीं वे लोग सदा सरकार की ही ओर रहते थे और कहीं नाम मात्र भी शांति भङ्ग होने पर वे राज-भक्ति के राग अलापते हुए सरकार की सहायता करने को

*इस भूमिका शासक जिससे एक करोड़ दाम अर्थात् २,१२,५००) रु० वार्षिक की उत्पत्ति होती हो।

†अकबर ने बड़े अच्छे डाकखाने स्थापित कर रक्खे थे। प्रत्येक ५ कोस पर दो दो घुड़सवार और कुछ पैदल हरकारों का प्रबन्ध कर रक्खा था। (लतीफ़ कृत "पंजाब का इतिहास")।

उद्यत हो जाते थे। तात्पर्य यह है कि यद्यपि हिन्दू जाति का जनसमूह इस कष्टकर प्रजापीड़न का कट्टर विरोधी था तथापि जो लोग जाति के "प्राकृतिक नेता" कहलाते हैं वे राज के अति दृढ़ भक्त बने हुए थे और समस्त उन्नतिशील चेष्टाओं के कट्टर शत्रु थे। क्योंकि उन्हें इस बातका भय था कि यदि वे दोनों ओर से उदासीन रहे या उन्हें विद्रोह में सम्मिलित समझा गया तो अवश्यमेव शासकों का अनुग्रह और अन्तको उन की भूमि तथा बल सब उनसे छीन लिया जावेगा।

इस के अतिरिक्त पंजाब का प्रान्त सब से पहिले विजय किया जा चुका था और यदि मुग़ल राज्य किसी स्थानपर भी दृढ़ता के साथ स्थापित था तो पंजाब में। काबुल और दिल्ली के बीच में होने के कारण इस प्रान्त का पूरी पूरी तरह निरीक्षण किया जाता था और अत्यन्त दृढ़ता तथा बल के साथ यहां का शासन होता था। यहां पर मुसलमान प्रजाकी संख्या सब से अधिक थी और बहुधा कृषक होने के कारण पंजाबमें ये लोग सब से अधिक बलवान थे। और यद्यपि इस में कोई सन्देह नहीं कि सर्वसाधारण मुसलमान हिन्दुओं के साथ २ भाई बहिनों के समान रहते थे और औरङ्गज़ेब के पक्षपात से कदापि सहमत न थे तथापि उनसे यह आशा रखना कि वे किसी ऐसी चेष्टा के साथ सहमत हों जिसका उद्देश्य मुसलिम राज्य को उखाड़ फेंकना हो सर्वथा असम्भव था। इन बाधाओं के अतिरिक्त गुरू गोविन्दसिंह को अपने ही कुटुम्बियों* के साथ भी विवाद करना पड़ा। क्योंकि ये लोग

---

* चौथे गुरु के पश्चात ये विरोध उत्पन्न हुए, इसलिये निम्न लिखित वंशावलि से उनके सम्बन्धों का सरलता के साथ पता लग जायगा।

व्यक्तिगत द्वेष के कारण गुरु के शत्रुओं की ओर चले गये थे और गुरु को बाधा हानि तथा दुख पहुँचाने में कोई प्रयत्न उठा न रखते थे। गुरु गोविन्दसिंह के पिता को उन के सब से बड़े भाई की सन्तान का तिरस्कार कर गुरुकी गद्दी प्रदान की गयी थी इस लिये उनके बन्धुओं ने यह समझकर कि हमारे अधिकार छीन लिये गये हैं गुरु तेगबहादुर के साथ बराबर द्वेष बनाये रक्खा। रामराय और धीरमल शाही दरबार में सम्राट के अनुग्रह पात्र बने हुए थे और औरङ्गज़ेबको इस बात के लिये भड़काने का कि गुरु गोविन्दसिंह का पिता राजद्रोही तथा अधर्मी है इसलिये यह मरवा डाला जावे इन दोनों ने बहुत कुछ प्रयत्न किया था। किन्तु पिता के वधसे भी गुरु गोविन्दसिंह को शांति न मिल सकी क्योंकि उनके प्रतिपक्षी बराबर उनके विरुद्ध सम्राट के कान भरते रहते थे।

- गुरु रामदास (४)
  - गुरु अर्जुन (५)
    - गुरु हरगोविन्द (६)
      - गुरु दित्ता
        - गुरु हरराय (७)
          - रामराय
          - गुरु हरकिशन (८)
        - धीरमल
      - गुरु तेगबहादुर (९)
        - गुरु गोविन्दसिंह (१०)
      - सूरजसिंह
      - अणिराय
      - अटलराय
  - पृथीचन्द
  - महादेव
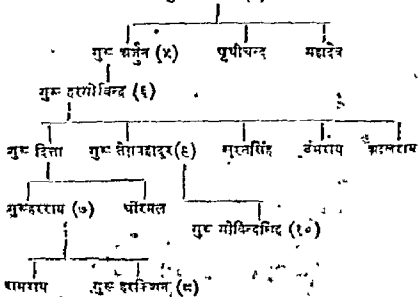
जिसका परिणाम यह हुआ कि गुरू गोविन्दसिंह बहुत समय तक न केवल अपने मत प्रचार का कार्य ही न कर सकते थे वरन् वे अपनी शारीरिक कुशल को भी असंदिग्ध न समझ सकते थे।

सन् १६७५ ई० में दिल्लीश्वर की आज्ञानुसार अपने पिता के वध किये जाने के पश्चात् बालक गुरू गोविन्दसिंहने अपने आप को इस अवस्था में पाया। उस समय गुरू गोविन्दसिंह की आयु १५ वर्ष की भी न थी। इस लिये बदला लेने अथवा खुल्लम खुल्ला विरोध करने का तो प्रश्न ही न उठ सकता था। इस में कोई सन्देह नहीं है कि देहली की ओर प्रस्थान करने से पूर्व उनके पिताने जो धर्म हित के लिये बलिदान दिये गये थे गुरुत्व के चिन्ह गोविन्दसिंह को प्रदान कर दिये थे। और भक्तिमान सिक्ख किसी भी ऐसे नेता का अनुसरण करने को उद्यत थे जो गुरु के वध का बदला ले सके। किन्तु गुरू गोविन्दसिंह का संकल्प चाहे कितना ही दृढ़ क्यों न रहा हो तथापि एक १५ वर्ष के छोटे बालक के लिये संसार के एक सब से महान साम्राज्य के विरुद्ध तुरंत लड़ाई छेड़ देना आत्महत्या करने के तुल्य होता। निस्संदेह उनके पितामह ने सफलता के साथ ७००० योधाओं को एकत्र कर उस अव्यवस्थित सेना द्वारा शाही सेना को दो तीन लड़ाइयों में परास्त किया था परन्तु अब आकर येही विजय एक प्रकार से गुरू गोविन्द सिंह के विरुद्ध पड़ रही थी मुग़ल सरकार उस समय अचानक दबाली गयी थी किन्तु अब वह सरकार प्रतिक्षण सावधान रहती थी। अब मृदु स्वभाव शाहजहां के सिंहासन पर वज्र-स्वभाव औरंगज़ेब बैठा हुआ था। सिक्खों की सेना जिसमें अधिकतर राजद्रोही मनुष्य तथा लुटेरे भरे हुए थे तितर

वितर की आ चुकी थी। और गुरु गोविन्दसिंह से ठीक पूर्व के गुरुओं ने, चाहे अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति अनुसार या सामयिक स्थिति से विवश हो जिस शांति नीति का अनुसरण आरंभ कर दिया था उस नीति द्वारा सिक्खों में किसी प्रकार भी वे सात्त्रभाव की उन्नति न कर सके जो कि छठवें गुरु ने अपने अनुयायियों में उत्पन्न किये थे। इसलिये समस्त कार्य फिर से आरंभ करना पड़ा और यह बात स्पष्ट है कि कुछ समय के लिये गुरु गोविन्दसिंह सर्वथा असहाय होगये।

औरंगजेब के नियात्मक पक्षपात* के कारण समस्त प्रान्त भयभीत होरहा था और कुछ समय के लिये ऐसा प्रतीत होता था कि गुरु गोविन्दसिंह के लिये पंजाब के मैदानों में पैर रखने का साहस करना असंदिग्ध मृत्यु को आह्वान करना था। इस प्रांत में केवल पहाड़ ही ऐसे स्थान शेष थे जो अभी तक पूरी तरह विजय नहीं किये गये थे। इन पहाड़ों की दुरारोहता तथा समस्थल की अपेक्षा उनकी शुष्कता ने ही उन्हें साम्राज्य में सम्मिलित किये जाने से बचा रक्खा था। इसलिये गुरु गोविन्दसिंह ने इन प्राकृतिक रक्षास्थानों में ही आश्रय लेना सर्वोत्तम समझा और यह निश्चय किया कि वहां रहकर वह अपने क्रोध का पोषण करें और अपने पिता के वध का बदला लेने तथा अपनी पाददलित जाति का उद्धार करने के उपायों को पक्का करें।

जिन जिन महापुरुषों ने निज जाति के इतिहास में अपने कुछ पदचिन्ह छोड़े हैं उनमें से अधिकांश ने विविक्तता तथा

---

* उसने मुकादम नियुक्त कर रक्खे थे और प्रत्येक मुकादम को कुछ घुड़सवार दिये हुए थे ताकि वे हिन्दुओं के समस्त धर्मोत्सवों को रोक दें। (लतीफ रचित 'पंजाब का इतिहास' पृ० १७६)।

एकांत का सेवन किया है और पहाड़ों, जङ्गलों, मठों अथवा मरुस्थलों की निर्जनता में तपस्या तथा एकाग्रता का अभ्यास किया है। क्योंकि निज आत्मा पर विजय प्राप्त करने के केवल येही मार्ग हैं और बिना आत्मविजय किये संसार को विजय करना केवल एक स्वप्न के समान है। महात्मा बुद्ध वर्षों तक जङ्गल में रहे। हज़रत ईसा भी जब कि लड़के ही थे संसार से लोप होगये और तीस वर्ष की आयु में फिर प्रगट हुए। हज़रत मोहम्मद भी ४५ वर्ष की आयु तक विविक्त ही से रहे। गुरु गोविन्द ने भी इन ही महापुरुषों के उदाहरणों का अनुसरण किया और अपना बल बढ़ाने तथा आक्रमण करने के अवसर की प्रतीक्षा करने के लिये पहाड़ों का आश्रय लिया।

युवा गुरू ने सब से पहिले हिमालय पर्वत के एकान्त स्थानोंमें आत्मोन्नति करना आरम्भ किया। क्योंकि जो कोई भी मनुष्य गुरू गोविन्दसिंह जैसा कार्य करना चाहे उसके लिये आवश्यक है कि वह शिक्षा से उत्पन्न होने वाले समस्त लाभों को प्राप्त करे और अपनी समस्त शक्तियों को अधिक से अधिक जितना सम्भव होसके उतनी परिपक्वता तक पहुंचावे। गुरू गोविन्दसिंह ने पटना और बनारस से बड़े बड़े विद्वान् पंडितों को और पंजाब से फ़ारसी के विद्वानों को बुलवाया। इस प्रकार गुरू गोविन्दसिंह के पास अनेक पंडित तथा कवि नौकर थे जिनमें से कोई ६० के नाम अभी तक प्रसिद्ध हैं। जो कुछ कि ये लोग सिखा सकते थे गुरू गोविन्दसिंह ने बड़े परिश्रम के साथ उनसे सीखा और क्योंकि काव्यरचना उनके कुल में परम्परा से चली आती थी गुरू ने भी हिन्दी कविता की एक ऐसी लेखनपद्धति निकाली कि जो इस समय तक अद्वितीय है। उन्होंने संस्कृत के समस्त पौराणिक

साहित्य का पाठ किया और महाभारत तथा अन्य पुराणों की चित्तोत्तेजक कथाओं को अपने मस्तक में धारण कर लिया। समस्त पौराणिक साहित्य के अन्तर्गत प्रधान विचार यह है कि अधर्म का नाश तथा धर्म की रक्षा करने के लिये पाप की जड़ काटने तथा पुण्य को स्थापन करने के लिये और अन्यायी का विध्वंस करने तथा निर्बल और निष्कलंक पुरुषों को बचाने के लिये युग युग में अवतार प्रगट होते रहते हैं।* प्रतीत होता है कि गुरू गोविन्दसिंह के चित्त पर इस विचार ने अत्यन्त गहरा प्रभाव डाला। श्रीरामचन्द्र का लंका के राक्षसराज को विध्वंस करना, देवकीनन्दन का कंस को मारना, और विशेषकर धर्म की मूर्ति तथा ईश्वरीय शक्ति की प्रतिमा दुर्गा के पराक्रम अर्थात् महालक्ष्मी दुर्गा का महिषासुर तथा अन्य असुरों के कपाल फाड़ कर उनका रुधिर पान करना, इन समस्त कथाओं ने गुरू के मनको आशा तथा श्रद्धा से भर दिया। इन कथाओं को उस समय एक ओर के प्रजापीड़न तथा अन्याय और दूसरी ओर की निर्बलता तथा निर्दोषता के सम्बन्ध में पढ़ने से गुरू गोविन्दसिंह के मन में यह विश्वास उत्पन्न होगया कि श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा के पूरे होने का अर्थात् उस पुरुष के प्रगट होने का समय आ गया था जोकि धृष्ट हत्यारों का विध्वंस कर असहायकों की रक्षा करता। और उन समस्त महापुरुषों के समान जिन्होंने कि मनुष्य जाति की उन्नति में सहायता दी है, गुरू गोविन्द-सिंह भी इस बात को अनुभव करने लगे कि जिस पुरुष की उस समय आवश्यकता थी वह वे स्वयम् ही थे। गुरू गोविन्द सिंह ने स्वयम् अपनी कहानी "विचित्र नाटक" नामक एक

*भगवद् गीता।

प्रभावशाली कविता में वर्णन की है जिसमें उन्होंने यह उपदेश किया है कि "परमात्मा समय समय पर मनुष्य जाति के मार्ग प्रदर्शन के लिये बड़े बड़े आचार्य भेजते रहे हैं, परन्तु बड़े शोक का विषय है कि उनमें से बहुत से ईश्वर समान अपनी पूजा आदिक कराने लगे।" यद्यपि गुरू गोविन्दसिंह पर अवतार वाद के अन्तर्हित महती सत्यता का अर्थात् इस बात का कि परमात्मा आवश्यकता के समय मनुष्य जाति की सहायता करते हैं बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा, तथापि उन्हें इस बात का बड़ा दुःख था कि परमात्मा के भेजे हुए विविध दूतों तथा महात्माओं ने स्वयम् ही अपने को ईश्वर के समान पूज्य बतलाया अथवा लोगों ने उन्हें ईश्वर के तुल्य बना दिया। इसलिये गुरू गोविन्दसिंह को यद्यपि पूर्ण विश्वास था कि वे परमात्मा की ओर से एक विशेष कार्य सिद्ध करने के लिये भेजे गये थे तथापि उन्होंने नम्रता पूर्वक यह प्रकट किया "कि मैं परम पिता का केवल एक किंकर हूं और जो कोई मुझे परमात्मा कह कर पुकारेगा वह जन्म जन्म नरक भोगेगा।

हिमालय पहाड़ों में गुरू के २० वर्षपर्यन्त विविक्त रहने तथा एकांत सेवन करने का परिणाम निम्न लिखित शब्दों में वर्णन किया जा सकता है:—

(१) गुरू गोविन्दसिंह ने उत्तम से उत्तम क्रियात्मक शिक्षा जो उस समय मिल सकती थी प्राप्त की और फ़ारसी तथा संस्कृत के समस्त पौराणिक तथा ऐतिहासिक साहित्य का पाठ किया।

(२) उस समय के सब से प्रसिद्ध हिन्दी कवियों की संगत द्वारा तथा अभ्यास द्वारा गुरू गोविन्दसिंह ने ऐसी वीररस प्रधान कविता उत्पन्न की जो इससे पूर्व पंजाब में सर्वथा

अज्ञात थी और जिससे गुरू गोविन्दसिंह ने लोगों की सोयी हुई शक्तियों को उत्तेजित करने में बहुत बड़ी सहायता दी।

(३) उन्होंने घोड़े की सवारी तथा निशाने बाज़ी में विशेष कर बाण विद्या में प्रवीणता प्राप्त की। और पहाड़ों के घने वनों में सिंह तथा वन शूकरों का निरन्तर पीछा कर उन्होंने अपने को आयास तथा परिश्रमी जीवन का अभ्यस्त बना लिया।

(४) उन्होंने अपनी जाति की दुर्दशा को अनुभव किया और निरन्तर ध्यान द्वारा इस बात को समझ लिया कि उन्हें एक महान उद्देश्य पूरा करना था और परमात्मा ने उन्हें निज जाति के उद्धार के लिये भेजा था।

(५) गुरू गोविन्दसिंह ने अपनी कार्य सिद्धि के लिये मार्ग निर्दिष्ट कर लिया और उनका व्यवहार क्रम इस असंदिग्धता तथा संपूर्णता के साथ निश्चित किया गया कि उनके समस्त विचित्र तथा सशोभित जीवन में अपने निश्चितक्रम में से उन्हें अणुमात्र भी छोड़ने वा बदलने की आवश्यकता नहीं हुई।

गुरू गोविन्दसिंह ने जो उद्देश्य अपने सामने रक्खा वह यह था कि हिन्दू जाति की निर्जीव हड्डियों में फिर से नयी जान फूंकी जावे जिससे कि वे अपने पारस्परिक विरोधों को भूलकर अपनी जाति के पीड़कों तथा अन्यायियों का सब मिल कर सामना करें। अथवा संक्षेप से यह कहा जा सकता है कि गुरू गोविन्दसिंह के उद्देश्य हिन्दुओं को फिर एक बार एक जीती जागती जाति बनाना तथा उन्हें इस योग्य बनाना था कि वे अपनी सोयी हुई स्वतंत्रता को फिर से प्राप्त कर सकें।

अध्याय १०

गुरु गोविन्दसिंह का जाति निर्माण।

(१६६५ ई०)

इस समय से आगे गुरू गोविन्दसिंह के कार्य के दो हिस्सों में भाग दिया जा सकता है :—

(१) उनका जाति निर्माण।

और

(२) उनकी लड़ाइयां।

'जाति निर्माण' से मेरा अभिप्राय उसके शब्दार्थ से है। क्योंकि जिस समय गुरु गोविन्दसिंह ने अपना कार्य आरंभ किया था उस समय हिन्दू जाति कहलाने योग्य वास्तव में कोई वस्तु न थी। शिवाजी के समान गुरू गोविन्दसिंह को वह खड्ग स्वयम् गढ़नी पड़ी जिसके साथ कि उन्होंने युद्ध किया।

अनंगपाल के पतन के समय से पंजाब में कोई नेता उत्पन्न नहीं हुआ था। यद्यपि कुछ हिन्दू ज़मीनदार जो अपने आप को राजा कहते थे अभी तक कांगड़ा पहाड़ों के दुर्गम स्थानों में छिपे हुए थे, तथापि उस समय हिन्दू जाति की राजनैतिक सत्ता का पंजाब में अंत हो चुका था। पंजाबी हिन्दुओं के आचार व्यवहार की गुरू नानक ने बहुत कुछ उन्नति की थी और गुरू गोविन्दसिंह के अन्य पूर्वजों ने भी हिन्दू समाज को

शान्तिपूर्वक संगठित करने का थोड़ा बहुत प्रयत्न किया था। परन्तु हिन्दुओं को एक पृथक् जाति बना देने का कार्य गुरु गोविन्दसिंह की असाधारण बुद्धि के लिये ही छूटा हुआ था। और निज मन्तव्य को सिद्ध करने के लिये जिन उपायों का गुरु गोविन्दसिंह ने प्रयोग किया वे उपाय यद्यपि सर्वथा नये न थे तथापि उस समय की अवस्था में सब से अधिक अमोघ सिद्ध हुए। गुरु गोविन्दसिंह इस बात को भली प्रकार समझ गये थे कि हिन्दू लोग जातीय दृष्टि से उचितसे अधिक विनती स्वभाव वाले, अपनी अभिलाषाओं में उचित से अधिक संतुष्ट, निज आकांक्षाओं में उचित से अधिक परिमित, शारीरिक परिश्रम के अत्यन्त द्वेषी, तथा दूसरे मनुष्यों को अथवा अपने वैरियों तक को किसी प्रकार का भी कष्ट न देने में अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि थे। गुरुगोविन्दसिंह ने इस बात को भी अनुभव करलिया कि हिन्दू लोग स्वभाव से धार्मिक थे और यद्यपि वे भयभीत तथा आचार भ्रष्ट होगये थे तथापि उस समय भी वे अपने धर्म से अत्यन्त प्रेम रखते थे और धर्महित के लिये कष्ट उठाने में अत्यन्त प्रत्युत्पन्नता दर्शा चुके थे। ऐसी जाति को जगाने का केवल एकही उपाय हो सकता था। उनके पास धर्म था परन्तु जातीयता उनमें न थी। उनको एक जाति बनाने का केवल मात्र उपाय यह था कि "जातीयता" को ही उनका धर्म बना दिया जावे। गुरुगोविन्दसिंह ने ठीक ऐसा ही किया और वे समस्त बातें जिनके द्वारा एक जाति वास्तव में जाति कहलाने के योग्य बनती है गुरु गोविन्दसिंह ने इस नये मत में धार्मिक सिद्धान्तों के रूप में सम्मिलित करदीं।

राष्ट्रीयता अथवा जातीयता का सबसे पहिला अंग 'एकता' है, इसलिये गुरु गोविन्दसिंह ने सब से पहिले इसी की

श्रोर ध्यान दिया। वह यह अच्छी तरह जानते थे कि जाति भेद विशेष कर जैसा कि उस समय प्रचलित था एकता के मार्ग में बहुत बड़ी रुकावट था। गुरू गोविन्दसिंह ने अपने कुछ शिष्यों को पंडित रघुनाथ नामक एक ब्राह्मण के पास संस्कृत पढ़ने के लिये भेजा। रघुनाथ ने उन्हें शिक्षा देने से इनकार कर दिया क्योंकि वे ब्राह्मण जाति के न थे। गुरू ने इस बात को ठीक ठीक समझ लिया कि इस अहङ्कारयुक्त स्वार्थ अथवा अलन्यभुक्ति द्वारा जातीयता के भाव को उन्नति नहीं मिल सकती। इसलिये गुरु गोविन्दसिंह ने इस हानिकारक संस्था की जड़ पर कुठार चलाया और यह उपदेश दिया कि जात पांत के भेद हिन्दू समाज में पीछे से उत्पन्न होगये थे और जो मनुष्य इस जाति भेद से उत्पन्न होने वाले पक्षपात को न त्याग देगा, तथा समस्त सिक्खों को अपने भ्राता समान न समझेगा वह अपने आप को कदापि सच्चा सिक्ख न कह सकेगा गुरु गोविन्दसिंह ने कहा कि चारों जातियां पान सुपारी चूने और कत्थे के समान हैं जिनमें से कोई वस्तु अकेली न होंठों को लाल कर सकती है न दांतों को पुष्ट और न जिह्वा को स्वाद दे सकती है। गुरू गोविन्दसिंह ने न केवल चारों जातियों को मिलाकर एक जाति ही कर दिया वरन् इस से भी बढ़ कर उन्होंने तुरन्त समस्त असामान्य धार्मिक अधिकारों की ऊंच नीच को तोड़ कर अपनी धार्मिक सम्प्रदाय में प्रजामात्र के एक तुल्य अधिकार रक्खे। गुरू गोविन्दसिंह अपने "रहतनामे" में लिखते हैं कि परमात्मा के दर्शन श्रद्धा की आंख द्वारा केवल खालसा के सार्वलौकिक शरीर में ही किये जा सकते हैं अर्थात् खालसा समाज एक ऐसी समाज थी जिसमें छोटे से छोटे और बड़े से बड़े सब एक तुल्य थे।

गुरू मनुष्य मात्र को अपनी समाज में ले लेते थे और जिस धर्म की उन्होंने प्रतिष्ठा की थी उसका अमृत[1] रस मनुष्य मात्र को पान कराते थे। एक दिन जब गुरू केशगढ़ की पहाड़ी पर डेरा लगाये पड़े थे उन्होंने अपने समस्त अनुयायियों को एकत्रित कर उन्हें उपदेश दिया। उपदेश को समाप्त करते समय उन्होंने अपनी खड्ग निकाललो और निश्चा कर कहा कि "यह देवी अर्थात् खड्ग मुझसे प्रति दिन एक शिर मांगती है। क्या कोई सिक्ख है जो अपना शिर देवी की भेंट करने को उद्यत हो?" थोड़ी देर तक सन्नाटा होगया। गुरू ने फिर पूछा जिसपर उसका एक दयाराम नामक अनुयायी आगे बढ़ा। गुरू उसका हाथ पकड़ कर उसे अपने डेरे में लेगये जहां कि पहिले से एक बकरा बंधा हुआ था गुरू ने चोर दयाराम को डेरे में बैठा दिया और अपने हाथ से बकरे को मार कर उसके लोहू में भरी हुई खड्ग हाथ में लिये आप बाहर निकल आये। गुरू ने दूसरी बार उस लोहू में भरी हुई खड्ग को हवा में फिरा कर एक और शिर लेने की इच्छा प्रगट की। इस पर एक और सिक्ख आगे बढ़ा और उसके पश्चात् तीसरा और फिर दो और इस प्रकार पांच

---

[1] "अमृत चखना" सिक्ख धर्म में प्रवेश करने का दूसरा नाम है।

[2]यह वृत्तांत पंथ प्रकाश के अनुसार लिखा है। अंगरेज़ी इतिहास लेखक कनिंघम आदि लिखते हैं कि देवी की भेंट के लिये एक शिर की आवश्यकता थी और कनिंघम कहता है कि २५ सिक्खों ने अपने आपको उपस्थित किया जिनमें से एक भेंट दिया गया परन्तु सिक्ख इतिहासों में ऐसा कहीं नहीं लिखा है। और कनिंघम के लेख पर इस लिये भी विश्वास नहीं किया जा सकता क्योंकि उसने अपने वृत्तांत के लिये कोई प्रमाण नहीं दिया है।

सिक्ख अपने नेता के केवल एक शब्द पर अपने अपने शिर कटवाने को उद्यत निकल पड़े। गुरू विक्रांत भक्ति तथा आत्मा-त्याग के इस विचित्र प्रमाण को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे उन पांचों सिक्खों को जीता जागता स्वस्थ तथा प्रसन्न वदन अपने डेरे से निकाल कर सभा के सामने ले आये। समस्त सभासदों को बड़ा आश्चर्य हुआ। और गुरू ने सब से कहा कि यह शकुन बड़ा शुभ है और खालसा की विजय निस्सन्देह होगी। जितने सिक्ख वहां बैठे थे सब अपनी कायरता पर बड़े लज्जित हुए और अपने नेता के चरणों पर अपने आपको अयाचित भेंट न कर देने के लिये उन्हें बड़ा शोक तथा पश्चाताप हुआ।

उन पांचों में से जिन्होंने कि अपने शिर आगे किये थे एक खत्री था और समस्त वे थे जिनको शूद्र कहा जाता है। परन्तु गुरू ने उनको "पञ्ज प्यारा" कहकर पुकारा और उस विधि के अनुसार जो उन्होंने अपने पंथ में लोगों को मिलाने के लिये निकाल रक्खी थी उनको दीक्षा दी। गुरू ने उन सब को एक से कर्त्तव्य बताये एक से ही अधिकार उन्हें दिये और नये भ्रातृत्व में सम्मिलित होने के चिन्ह रूप उन सब ने इकट्ठे बैठकर भोजन किया। परन्तु सार्वलौकिक समता के विषय में गुरू के विचार इतने बढ़े हुए थे कि केवल अपने अनुयायियों के बीच की समता से वे सतुष्ट न हो सकते थे। उनकी सम्प्रदाय में नेता अथवा मुखिया के विशेष अधिकारों के लिये भी कोई स्थान न था। गुरू का यह विश्वास था कि कोई नेता उस समय तक नये करने के योग्य नहीं हो सकता जब तक कि उसके अनुयायी उसे न चुनें या अपना नेता स्वीकार न करें। इतिहास से पता लगता है कि कोई व्यक्ति

अथवा कोई जाति जिसे धर्म सम्बन्धी अथवा पुरोहिताई संबन्धी श्रेष्ठता प्राप्त हो अपने विशेष अधिकारों में से अणु मात्र भी छोड़ देना नहीं चाहती। परन्तु गुरू जिनको उनके भक्त अनुयायी संसार के समस्त सिद्ध महात्माओं में सब से बड़ा मानते थे और ही प्रकृति के बने हुए थे। उनका राजनैतिक परिज्ञान उन्हें कदापि इस बात की अनुज्ञा न दे सकता था कि वे अपने अनुयायियों से पृथक एक अनन्य सामान्य उच्चासन पर खड़े हो जावें। इसलिये जब उन्होंने अपने पहिले पांच शिष्यों को अर्थात् 'पंजप्यारों को' दीक्षा देली तो फिर उनसे स्वयम् दीक्षा ली, जो प्रतिज्ञाएं उनसे करायी थीं वे ही स्वय कीं, और जो जो अधिकार उन प्यारों को दिये थे उनसे अधिक कोई भी अधिकार अपने लिये न रक्खे। ऐसा करने के थोड़े दिनों पीछे ही गुरू ने अपने समस्त अनुयायियों की एक महा समा*की और उसमें अपने नये सिद्धांतों को सब के सन्मुख प्रकट किया।

यह कार्य अर्थात् जाति-भेद से उत्पन्न होने वाले पक्षपात का मिटाना तथा धर्म संबन्धी सार्वलौकिक समता का स्थापन करना सब से प्रथम उपाय था जिसका कि जातीयता के सब से आवश्यक अंग एकता को उत्पन्नकरने के लिये गुरू गोविन्दसिंह ने प्रयोग किया। इस धर्मबल के साथ गुरू गोविन्दसिंह ने और भी कई आज्ञाएं छोड़दीं जिनमें से कई वास्तव में न्यूनाधिक यांत्रिक कही जा सकती हैं। वे ये थीं:—

(१) समस्त सिक्खों के नामों का अंत एक प्रकार से होगा जैसा कि अब तक होता है।

*कोई ८०००० सिक्ख एक पंद्रवाड़े से कम समय में एकत्रित होगये थे। क्तीक पृष्ट २६१।

(२) सब को एक प्रकार से ही एक दूसरे को अभिवन्दन करना होगा।

(३) ग्रन्थ साहब के अतिरिक्त किसी दूसरे बाह्य पदार्थ को शिर न नवाया जावेगा।

(४) हिन्दू तर्थों की संख्या इतनी बढ़ गयी थी कि उन से जातीय एकता के भाव को उत्तेजना मिलनी कठिन थी। इस लिये गुरू ने सिक्खों के लिये अमृतसर को सबसे मुख्य तीर्थ स्थान नियुक्त किया। उस दिन से आज दिन तक अमृतसर गुरुओं के अनुयायियों के लिये मक्के के समान रहा है और समस्त श्रेणी के सिक्खों को चाहे वे ब्राह्मण हों व अन्त्यज अमृत के तालाब में नहाने तथा हरिमंदिर में पूजा करने की पूर्ण अनुज्ञा प्राप्त है।

(५) इन एकता की शृङ्खलाओं की पुष्टि के लिये गुरू ने अपने अनुयायियों को और कोई साधन बतलाये जो उनसे भी अधिक यांत्रिक थे और जो गुरू की अपूर्व कल्पना शक्ति का प्रमाण देते थे वे साधन पिछली दो शताब्दियों में वैसे के वैसे ही बने रहे और आजदिन उनका महत्त्व तथा बल और भी अधिक बढ़ रहा है। कनिंघम कहता है कि गुरू बड़ा तत्त्ववेत्ता था और वह इस बात को खूब समझता था कि लोगों की कल्पना शक्ति से किस प्रकार लाभ उठाया जासकता था। वह कतिपय बाह्य क्रियाओं तथा चिन्हों की जादू भरी शक्ति को अच्छी तरह पहिचानते थे और जानते थे कि प्रायः मनुष्यों के चित्तों पर उनके बाहरी स्वरूपके बदल जाने का कितना अधिक प्रभाव पड़ता है। ब्रह्मचारियों तथा श्रमणों' तपों तथा यमनियमों और शक्ति के उपासकों के तिलक तथा वैष्णवों की तुलसी की माला आदि साम्प्रदायिक चिन्हों से मनुष्यों के ऊपर प्रभाव

पढ़ने का यही भेद है। यही हिन्दुओं के उपनयन और ईसाइयों के बपतिस्मे का भेद है यही गुरु गोविन्दसिंह के चलाये हुए "पहुलक"* का वास्तविक तात्पर्य था और इस विशुद्धशक्ति का प्रसार करने के लिये ही गुरू ने कई और नियम बनाये जिनके द्वारा सिक्ख लोग अपने आप को परमात्मा के उन विशेष चुने हुओं में से समझने लगे जिन्हें कि इस संसार में एक महान उद्देश्य को पूरा करने के लिये भेजा गया था। गुरूने यह नियम बना दिया कि कोई सिक्ख कभी तम्बाकू न पिये, सब पगड़ी बांधें और सब सदा निम्नलिखित पाँच ककार अपने पास रक्खें अर्थातः—केश, कंघा, कृपाण, कड़ा और कच्छ। इन ककारों के धारण करने का ठीक वही अभिप्राय समझा जाने लगा जोकि रोम के युवकों के एक विशेष वेश अर्थात् टोगा विरिलिस (toga virilis) धारण करने का था। इन विधियों ने तुरन्त वास्तविक सिक्खों को

---

*"पहुल" संस्कार इस प्रकार किया जाता है। सिक्ख बनने का प्रार्थी स्नान करने के पश्चात नये कपड़े बदलकर उस सभा के जो अधिक तर इस ही उद्देश्य से की जाती है मध्य में बैठता है। फिर एक सिक्ख जो सिक्खों के सदाचार का नियमानुसार पालन करने के लिये प्रसिद्ध हो एक लोहे के बरतन में दोधारी कटारसे सरबत घोलता है। और साथ साथ ग्रंथ साहब के कुछ शब्द उच्चारण करता रहता है। और फिर इस सरबत में से कुछ प्रार्थी के केश तथा शरीर पर छिड़का जाता है और थोड़ा सा उसे पीने के को दिया जाता है। इसके पश्चात प्रार्थी से प्रतिज्ञाएं करायी जाती हैं जिन्हें सिक्खों की "रहत कहा जाता है। इस सरबत को अमृत कहते हैं और उसको पीने से यह समझा जाता है कि गुरुगोविन्दसिंह का नया पुत्र अर्थात वह प्रार्थी अमर होजाता है। इस संस्कार के पूरा होने पर समस्त सभासदों को कड़ा प्रसाद अर्थात हलवा बांटा जाता है।

मन्दगति हिन्दुओं के साधारण समूह से पृथक कर दिया और ख़ालसा समाज के भीतर एक विशेष संगठन उत्पन्न करदिया जिसके कारण थोड़े ही समय में सिक्खों की एक पृथक संगठित जाति बन गयी।

जाति-भेद का खण्डन, गुरू तथा उनके समस्त अनुयायियों के बीच अधिकारों की समता, एक पूजा, एक तीर्थस्थान विविध श्रेणियों के लोगों के लिये एक समान "पहुल" और अंत में सब का एकसा बाहिरी रूप तथा इनके अतिरिक्त एक नेता और समस्त जाति की एकही आकांक्षा—ये उपाय थे जिनके द्वारा गुरू गोविन्दसिंह ने अपने अनुयायियों में एकता उत्पन्न की और उन्हें बलवान मुग़लों की सेनाओं के साथ भिड़ा देने से पूर्व उन्हें एक सुसंगठित समाज बना दिया। किन्तु केवल मोम के बहुत से खिलौनों से जिनमें एक समान चिन्ह दिखाई देते हों और जो एकही से वस्त्र पहिरे हों अथवा बहुत से ग्रामोफ़ोनों से जिनमें से एकसी ही आवाजें निकलती हों कोई जाति नहीं बन सकती। जिन मनुष्यों से कि वह जाति बनी हुई है उनमें इससे पहिले कि वे सचमुच अपनी एक जाति बनासकें जीवन, उच्च आकांक्षाओं, दृढ़ संकल्प तथा निर्भय आत्माओं का होना आवश्यक है।

गुरू उनकी पदवी तथा आकांक्षाओं को उच्च करने और उनमें श्रद्धा तथा उत्साह उत्पन्न करने की आवश्यकता को ख़ूब समझते थे। इस लिये इस कठिन मनोर्थ को सिद्ध करने के लिये गुरू ने निम्नलिखित उपायों का प्रयोग किया।

(१) सबसे पहिले गुरू ने उनमें यह विश्वास उत्पन्न किया कि अबसे वे परमात्मा के साक्षात् निमंत्रण तथा उनकी रक्षा में आगये हैं। उनके हृदयों में यह अटल विश्वास जमा

दिया गया कि गुरु खालसा की सार्वजनिक समाज में परमात्मा सदा उपस्थित रहते हैं और जहां कहीं पांच सिक्ख भी इकट्ठे होंगे वहां गुरु अवश्य उनके साथ रहेंगे।

(२) इसके अतिरिक्त सिक्खों के हृदयों में यह विचार भी अच्छी तरह बैठा दिया गया कि वे विजय प्राप्त करने के लिये ही उत्पन्न हुए थे। वास्तव में किसी भी राजनैतिक नेता को उस समय तक नेता बनने का कोई अधिकार नहीं है जब तक कि उसमें पूर्ण श्रद्धा न हो और वह अपने उद्देश्य की अन्तिम विजय में दृढ़ विश्वास न रखता हो। गुरु श्रद्धा तथा आशा की साक्षात मूर्ति थे और उनके अनुयायी भी उसी प्रकार के विश्वास से भरे हुए थे। "वाह गुरूजी का खालसा, वाह गुरु जी की फ़तह" ये शब्द सिक्खों के नये अभिवन्दन के शब्द बनगये। किसी पुरुष में इस बात का दृढ़ विश्वास होना कि वह परमात्मा का विशेष उपकरण है तथा इस विश्वास से जो श्रद्धा उत्पन्न होती है ये दोनों विजय प्राप्त करने के लिये सबसे पक्के प्रतिभू हैं और गुरु ने अपने अनुयायियों को ये प्रतिभू प्रदान कर दिये।

(३) उनके उत्साह को और भी अधिक द्विगुण कर देने के लिये गुरूने उनका नाम सिक्ख से बदलकर "सिंह" कर दिया। इस प्रकार गुरूने अपने विनीत शिष्यों को शेर बना दिया और "क्षण भरमें उनकी पदवी भारतवर्ष की सर्वोत्कृष्ट तथा सबसे अधिक वीर जातिके समान उच्च करदी"। क्योंकि उस समय तक केवल राजपूत ही सिंह कहलाने का विशेष अधिकार रखते। परन्तु अबसे सिक्ख लोगभी ऐसे ही उत्तम तथा महान होगये जैसे कि सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी राजपूत।

(४) साहित्य दूसरा उपाय था जिसके द्वारा गरूने अपने

अनुयायियों के हृदयों में वीरता के भाव उत्पन्न किये। गुरू के पास अनेक कवि तथा पंडित नौकर थे और गुरू ने इन लोगों से रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराणों की समस्त उत्साह वर्द्धक कथाओं का हिन्दी भाषा में अनुवाद करा डाला। गुरू कहते हैं कि "मैंने भागवत के दसवें अध्याय का अनुवाद हिन्दी में केवल धर्मयुद्ध के प्रेमके कारण कराया है इस कार्य से मेरा और कोई अभिप्राय नहीं"। कृषक तथा वणिक, मुन्शी और मुहर्रिर जिन्होंने शताब्दियों से कुछ भी न पढ़ा था व करीमां, गुलिस्तां, बहारदानिश और बोस्तां ही पढ़ी थी, अब अपनी भाषा में राम और लक्ष्मण, भीम और अर्जुन के वीर पराक्रमों की कथाएं पढ़ने और सुनने लगे। और ऐसे २ विषयों पर विचार करने लगे कि किस प्रकार बालक कृष्ण ने दुष्ट कंसका बध किया और किस प्रकार सुकुमारी देवी ने महिषासुर जैसे दैत्यों का अपने हाथों से संहार किया। गुरू स्वयम् एक बड़े कवि थे और रामायण तथा महाभारत के वीररस से भरे हुए हृदयों पर गुरु के शब्दों का बिजली का सा प्रभाव पड़ता था। एक दिन गुरू कहने लगे कि "मैं एक चिड़िया भेजूंगा और तुम देखना कि शाही शशादन (शिकरे) उसके सामने गिर पड़ेंगे"। "मेरे सिक्खों में से प्रत्येक एक २ लाख की सेना से लड़ेगा और जो ऐसा न हो तो मुझे गुरूगोविन्दसिंह न कहना*"। गुरू गोविन्दसिंह जैसे मनुष्य के मुखसे निकले हुए इस प्रकार के शब्दों का यह

---

*गुरू गोविन्दसिंह की प्रार्थनाओं तक में म्लेच्छों के लिये शाप तथा उनके नाश के लिये परमात्मा की सहायता का आवाहन होता था। और वह शरबत तक जो कि सिक्ख दीक्षा के समय काम में आता था दोधारी कटार से घोला जाता था।

असम्भव था कि मदिरा प्रभाव न पड़े। जिन मनुष्यों ने कभी खड्ग पर हाथ न लगाया था व कटिबद्ध कंधे पर तरकशी थी वे सब वीर बन गये। हलवाई तथा धोबी चूहे भया नाई सेना-पति बन गये जिनके सम्मुख राजा लोग कांपते थे और नवाब भय से थर्राते थे।

गुरु गोविन्द सिंह इस बात को भी खूब समझते थे कि जब तक हिन्दू लोग अपने शत्रुओं के लिये सर्वथा कण्टक समान न बन जायेंगे उस समय तक प्रजापीड़क स्वेच्छा-चारिता का उखाड़ फेंकना केवल एक स्वप्न के समान है। इसलिये गुरु ने अपने अनुयायियों से निवेदन किया कि वे कलम तथा हल की ओर से अपनी दृष्टि हटालें और खड्ग को ही इस संसार में अपना मुख्य उपकरण समझें। शत्रुओं का देश चाहे वह शत्रु अन्यायी मुगल हों या विश्वास घातक हिन्दू उनके आक्रमणों के लिये खुला पड़ा था और खड्ग द्वारा वे धन समृद्धि राज्य मान तथा स्वतन्त्रता का मार्ग अपने लिये तय्यार कर सकते थे। गुरु ने बताया कि लुटेरों को लूटना कदापि पाप न था तथा अपने पीड़कों को पीड़ा देने की शास्त्रों में भी आज्ञा दी हुई थी।

सिक्खों ने अपनी आकांक्षा पूर्ति के लिये एक नया क्षेत्र खुला हुआ देखकर सहस्त्रों की संख्या में गुरु के पास एकत्रित होना आरंभ कर दिया। अब वे लोग केवल सिक्ख के स्थान पर सिंह बन गये। और सिंहों के समान निर्भयता के साथ अन्यायी तथा स्वेच्छाचारी शासकों के सुरक्षित बाड़ों में घुस घुस कर भक्ष्य मृगों का शिकार करने लगे। बढ़ते हुए खालसा की इन नयी प्रवृत्तियों ने सिंह समाज का बल और भी अधिक बढ़ा दिया इन प्रवृत्तियों द्वारा समाज के कोप में

बन जाता था, समाज की व्यक्तियों को व्यायाम का अवसर मिलता था तथा उन्हें सांग्रामिक जीवन की कठिनाइयों को सहन करने का अभ्यास होता था। गेरिल्ला (Guerilla) अर्थात् अनियमबद्ध युद्ध पद्धति की उनको शिक्षा मिलती थी निरुत्साही हिन्दू भी उनके पक्षमें हो जाते थे और वैरियोंके हृदयों में त्रास उत्पन्न होता था जब कि आए दिन की विजय खालसा के हृदय को बल तथा प्रोत्साहन प्रदान करती थी।

हिन्दू जन समूह में शक्ति की उपासना अत्यन्त प्रचलित थी और ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि सिक्खों का एक परमात्मा के अतिरिक्त किसी दूसरे की पूजा करने की अनुज्ञा न थी तथापि ये लोग भी देवी की सत्ता में कुछ न कुछ श्रद्धा रखते थे और देवी का आवाहन करने के लिये हवन तथा अन्य क्रियाओं की फलोत्पादकता में विश्वास रखते थे। गुरु को एक अमर तथा सत्य ईश्वर के अतिरिक्त और किसी देवी देवता में विश्वास न था, परन्तु (जैसा कि सब इतिहास लेखक लिखते हैं) इस में कुछ सन्देह नहीं कि गुरू ने देवीको साक्षात् करने के स्पष्ट उद्देश्यसे एक बड़ा यज्ञ रचाया प्रतीत होता है। गुरू ने यह यज्ञ वा इस बात के दिखलाने के लिये रचाया कि ऐसी शक्ति हो कोई नहीं केवल प्रजा की सर्वप्रिय देवीका अपने आपको अनुग्रपात्र दर्शाकर जन समूह की सहानुभूति तथा श्रद्धा को अपनी ओर करने के लिये यह उपाय किया। कहते हैं कि इस यज्ञ में एक वर्ष लग गया। एक वर्ष के अन्त में जब फिर दुर्गाष्टमी आयी तो गुरू ने प्रधान याज्ञिक से पूछा कि देवी कब दर्शन देंगी। पंडित ने उत्तर दिया कि देवी केवल तब ही अपने आपको प्रगट करेंगी जब कि कोई कुलीन धर्मात्मा तथा पवित्र मनुष्य अपने आप को उस वेदी पर बलि

देगा और अपना शिर अग्नि में चढ़ाएगा। गुरु इस बात पर प्रसन्न होते हुए दिखाई दिये और उन्होंने प्रसाद सदा मन्द हास्य के साथ पंडित से कहा कि "तुम पर यहीं आपके यह वर धर्मात्मा पुरुष और दाता मिलना। जिसका शिर देवी की भेंट के अधिक उपयोगी हो।" पंडित सुनकर चुप हो गया और चुपके अपना घर छोड़कर भाग निकला। गुरु ने समस्त बची हुई सामग्री अग्नि में डाल दी और पन्द्रह के पंडितों के हाथ में नंगी तलवार सम्भाले हुए बाहर आये।

हवन का इतनी अधिक सामग्री जब इकट्ठी करके डाली गयी तो ज्वाला भड़क उठी और एक ऊंची पहाड़ी पर होने के कारण चारों ओर कोसों तक दिखाई दी जिस से लोगों ने यह समझा कि देवी प्रसन्न हो प्रगट होगयी है। यह खड्ग जो गुरु हिलाते हुए हाथ में लेकर निकले थे सिक्खों के लिये दैवीक प्रसाद समझा गया और इस प्रसाद का यह अर्थ लगाया गया कि गुरु को अपने जातीय शत्रुओं के साथ युद्ध करने में अवश्य विजय प्राप्त होगी। यह निश्चय नहीं पता कि गुरु ने इस विषय में लोगों के भ्रम को दूर करने का कोई प्रयत्न किया था नहीं परन्तु इसमें संदेह नहीं कि गुरु ने लोगों को खड्ग के पूजन करने का आदेश किया क्योंकि गुरु के अनुसार उन दिनों केवल खड्ग ही एक ऐसी देवी थी जो उनकी रक्षा कर सकती थी प्रतीत होता है। गुरु यह चाहते थे कि लोग इस ऊपर के शब्दों को केवल एक रूपक समान ही न समझें। कनिंघम कहता है कि "उस पदार्थ की ओर भक्ति का भाव जो हमें बल, रक्षा और दैनिक आहार प्रदान करता है प्रत्येक देश के इतिहास में पाया जाता है। हमारे अपने देश में प्रत्येक मल्लाह अपने जहाज़ को एक देवी के समान समझता है। और भारत-

वर्ष में पैतृक व्यवसायों की संस्था ने उस भाव को और भी अधिक बढ़ा दिया है जोकि दार्शनिक परिभाषा में उन लोगों का मत समझा जाता है जो आत्मा को निराकार मानते हुए भी उसे बुद्धि कोष में लिपटा हुआ बताते हैं और यह मानते हैं कि हमें सांसारिक व्यवहारों में अथवा जब तक कि हमें पूर्णानन्द प्राप्त न हो तब तक इस बुद्धि कोष का प्रयोग करना पड़ता है।" इस बाहरी अथवा स्थूल कोष को ही गुरू ने खड्ग की पूजा तथा आराधना करने की आज्ञा दी जब कि निराकार आत्मा के लिये केवल ईश्वर की उपासना बतायी गयी। गुरू खड्ग को परम पूज्य मानते थे और उनकी कई सब से सुन्दर कवितायें खड्ग के आवाहन में लिखी गयी हैं*। गुरू की अपने सब अनुयायियों के लिये यह आज्ञा थी कि वे सदा मनुष्य-जाति के महान रक्षक अर्थात् खड्ग की पूजा करते रहें। और जो लोग खड्ग की पूजा में सर्वथा लगे रहते थे उनको और किसी प्रकार के भी धार्मिक संस्कार पूजा पाठ आदिक न करने पड़ते थे। खड्ग के उपासक कृतनाश कुलनाश धर्मनाश तथा कर्मनाश समझे जाते थे और उनकी उपासना सब से बड़े महात्म्य का पुण्य समझी जाती थी जिससे उन्हें इस जन्म में बल तथा समृद्धि और परलोक में परमानन्द तथा परमगति प्राप्त हो सकती थी।

---

* निम्न लिखित चार पदों में गुरुगोविन्द सिंह ने खड्ग का आवाहन किया है। ये चार पद ऐसे सुन्दर हैं कि इनसे बढ़कर संसार के दूसरे साहित्यों मे शायद ही कहीं मिलें। इसके अतिरिक्त इनकी भाषा अधिकतर संस्कृत ही है इसलिये भारतवर्ष के समस्त प्रान्तों में वे आसानी से समझे जासकते हैं।

अध्याय ११

गुरू गोविन्दसिंह के युद्ध,

उनका देशाटन तथा उनकी मृत्यु ।

(१६६५–१७०८)

गुरू के जीवन का कार्य पूर्वार्द्ध समाप्त हो चुका था। उन्होंने अपने अनुयायियों के हृदय को पूरी तरह अपने वशमें कर लिये थे। और अब वे लोग जीवन तथा मरण में अपने गुरू का साथ देने को उद्यत थे। गुरू ने उन्हें एक सुसंगठित समाज बनाकर उनके चरित्र को उच्च तथा उनकी आकांक्षाओं को महान बना दिया था और उन्हें अपने पूर्वजों के प्रशान्त व्यवसायों से हटाकर खड्ग देवी के अनन्य भक्त बना दिया था। यह सब ही गुरू के जीवन का सब से अधिक महत्व का कार्य था और यह कार्य सफलता के साथ सिद्ध हुआ।

परन्तु गुरू के पिता की मृत्यु का अभी तक बदला नहीं लिया गया था, औरङ्गजेब का निष्ठुरशासन अभी तक तोड़ा नहीं गया था और अभी तक समस्त राष्ट्र अन्याय तथा प्रजापीडन के भार से दबा हुआ था। यद्यपि गुरू को एक अत्यन्त प्रबल शत्रु का सामना करना था और कार्य अति कठिन था तथापि औरङ्गज़ेब के बल पर एक वास्तविक प्रहार किये बिना तथा निज जाति के निस्तार का कम से कम एक प्रयत्न किये बिना गुरू को संतोष न हो सकता था और उन्होंने अपने स्वाभाविक पौरुष तथा आत्मविश्वास के साथ इस कार्य को

आरम्भ किया। उनके अनुयायियों की संख्या अब सहस्रों तक पहुंच गयी थी और सहस्रों मनुष्य ही युद्धक्षेत्र तक गुरु का साथ देने को प्रस्तुत थे और गुरु की पताका तले लड़ने तथा मरने को अपना परम सौभाग्य समझते थे। गुरु ने इनको सेनाएं तथा दल बना लिये और उनकी सहायता के लिये ५०० पठान नौकर रख लिये जो गुरु की अश्वारोहिणी सेना का एक भाग बन गये।

सब से पहिले गुरु ने इस बात का विचार किया कि पहाड़ी रियासतों के राजाओं के ऊपर उनका पूर्ण प्रभुत्व हो और पहाड़ों पर उनकी एक राजधानी स्थापित हो जावे जहां से कि उसे केन्द्र मानकर मुग़ल साम्राज्य के विरुद्ध वे युद्ध के प्रबन्ध कर सकें। इस उद्देश्य को सामने रख गुरु ने सतलज तथा यमुना के बीच की पहाड़ियों की भूमि पर बराबर बराबर दो तीन दुर्ग बना लिये, एक दुर्ग नाहन के निकट पौंटा नामक स्थान पर, एक आश्रय स्थान आनन्दपुर में और एक तीसरा दुर्ग सुप्रसिद्ध रोपड़ नगर से थोड़ी दूर चमकौर* नामक स्थान पर। पौंटा वह स्थान है जहां बहुत दिनों पीछे गोरखों तथा अङ्गरेजों के बीच एक घोर संग्राम हुआ।

कनिंघम लिखता है कि,—"धर्मोपदेशक के रूप में गुरु गोविन्दसिंह भारत के समस्त भागों से चन्दे वसूल करते तथा अनुयायी प्राप्त करते थे किन्तु नेता के रूप में उन्होंने एक केन्द्र स्थान की आवश्यकता को अनुभव किया और राजविद्रोही के रूप में वे एक सुरक्षित आश्रयस्थान की उपयोगिता से भी अनभिज्ञ न थे।"

*बूटेशाह ने तीन दुर्ग और दिये हैं—फ़तहगढ़, लोहगढ़ और मुहम्मदगढ़।

इस सांग्रामिक विन्यास के पश्चात् प्रतीत होता है कि गुरू ने जो पहिला कार्य किया वह सरकार के विरुद्ध अपने चिन्तित युद्ध में पहाड़ी राजाओं को साथ मिला लेने के लिये उकसाना था। किन्तु गुरू स्वयं 'राजा' न थे और पहाड़ी राजा उन्हें एक साधारण नेता से अधिक न समझते थे और प्रतीत होता है कि उनके बल विन्यास तथा सगठन का अधिक मूल्य न करते थे। उनमें से कई राजा गुरू को केवल एक (महत्त्वाकांक्षी) आगन्तुक तक समझते थे और एकने यहाँ तक किया कि गुरू से उनका एक प्यारा हाथी और कई अन्यअति सुन्दर पदार्थ मगवा भेजे जो गुरू का एक बड़ा धनाढ्य तथा उत्साही सेवक गुरू के लिये लाया था। पहाड़ी राजाओं की उदासीनता को देख गुरूको बड़ी घृणा हुई और बिलासपुरके राजाकी ओरसे जिसने हाथी आदिक मांगेथे इस अवज्ञा तथा उसकी धमकियों को सुन गुरू को अत्यन्त क्रोध आया और उन्होंने हाथी आदिक देने से इनकार कर दिया। गुरू ने इन राजाओं को अपने वश में लाने का संकल्प कर लिया और उन्हें होश में लाने के लिये अपने अनुयायियों को उनके ऊपर खुले छोड़ दिया। सिक्खों ने, जो पहिले ही लूट-मार करने का स्वाद चख चुके थे, इन नपुंसक किन्तु धृष्ट राजाओं को रियासतों को लूट डाला। जहां कहीं जो कुछ इन लोगों के हाथ लगता था उसे वे लूटकर लेजाते थे यहां तक कि इन राजाओं की प्रजा भूखों मरने लगी *।

अन्त में घबराकर तथा क्रोध में आकर राजाओं ने एक बहुत बड़ा सन्धि की। बिलासपुर का भीमचन्द, करौक का कृपालचन्द, जस्सेवाल का केसरी चन्द, जसरौटाह का सुख-

* पंथप्रकाश।

देयाल, नालागढ़ का हरीचन्द, डडवाल का पृथ्वीचन्द और श्रीनगर का फतेहशाह इन सब ने मिलकर दस हज़ार की सेना सहित गुरू के ऊपर आक्रमण किया। दो हजार चुने हुए योधा लेकर गुरू उनसे लड़ने के लिये आगे बढ़े और भङ्गानी नामक ग्राम के निकट एक बड़ा भारी युद्ध हुआ। गुरू ने स्वयम् एक अत्यन्त ओजस्विनी कविता में इस युद्ध का वर्णन किया है। वे पांच सौ अफ़ग़ान जो गुरू की अश्वारोहिणी सेना का एक भाग थे, यह समझकर कि गुरू के लिये राजाओं की महती सेना को परास्त करना असमर्थ था, युद्ध से ठीक एक रात पूर्व गुरू का साथ छोड़कर भाग गये। किन्तु सधौरे का सरदार सय्यद बुद्धूशाह जिसके कहने पर गुरू ने इन अफ़ग़ानों को नौकर रक्खा था इस घटना को सुनकर तुरन्त दो हजार योधाओं सहित गुरू की सहायता के लिये दौड़ा आया और इस ठीक समय की सहायता द्वारा ही गुरू ने सम्मिलित राजाओं के ऊपर पूर्ण विजय प्राप्त की। इस विजय के पश्चात गुरू बड़े उल्लास सहित पौएटा के दुर्ग में लौट आये। वहां पर उन्होंने एक बड़ा दरबार रचा और अपनी इस प्रथम विजय के हर्ष में अपने सेनापतियों को खिलअतें प्रदान कीं। सय्यद बुद्धूशाह को जिसकी समयोचित सहायता द्वारा ही विजय प्राप्त हुई थी और जिसका अपना पुत्र इस संग्राम में काम आया था एक कंघा गुरू के शिर की आधी पगड़ी और एक मानपत्र (सनद) प्रदान किये गये। 'पंथ प्रकाश' का लेखक लिखता है कि आज दिन तक सय्यद साहब के उत्तराधिकारी इन समस्त पदार्थों को पवित्र समझकर हिफ़ाजत के साथ अपने पास रक्खे हुए हैं। इसके पश्चात गुरू ने चार नये दुर्ग बनायेः—लोहगढ़,

आनन्दगढ़, फूलगढ़ तथा फ़तेहगढ़ और अपनी सांग्रामिक शक्ति तथा सामग्री को बढ़ाना आरम्भ किया।

अब राजाओं ने गुरू के बढ़ते हुए बल को देख लिया और इस बात को पहचान लिया कि गुरू किस प्रकृति के बने हुए थे तब वे लोग गुरू के महान कार्य का उचित गम्भीरता के साथ चिन्तन करने लगे और गुरू के उपदेशों का तिरस्कार करने में अधिक समय न खोते थे। इन लोगों ने अब शीघ्रता के साथ मिलकर गुरू के साथ एक संधि कर ली जिसके अनुसार उन्होंने गुरू के आक्रमणों तथा उनके शत्रुनिवारक युद्धों में गुरू का साथ देने की प्रतिज्ञा की। अभी तक इन लोगों के लिये मुग़ल सरकार के ऊपर स्वयं आक्रमण करने का समय न आया था किन्तु अब इन्होंने उस पद के ग्रहण करने में क्षण भर भी संकोच न किया जो पद कि प्रत्येक पराजित जाति को अपनी स्वतंत्रता प्राप्ति के संग्राम में सब से प्रथम ग्रहण करना होता है। गुरू के सहारे पर राजाओं ने निष्क्रय प्रतिरोध आरम्भ कर दिया और सम्राट की सेवा में अपना वार्षिक कर भेजने से इन्कार कर दिया। औरंगज़ेब उस समय दक्षिण में था और गोलकुण्डा की छोटीसी किन्तु स्वर्णमयी रियासत को अपने आधीन करने में लगा हुआ था। इस कारण कई वर्ष तक राजाओं के साथ किसी ने झगड़ा न किया। किन्तु ज्योंही कि औरंगज़ेब उस कार्य से छुट्टी पाकर देहली वापिस आया उसने मियाँखाँ, अलिफ़खाँ तथा ज़ुलफ़िक़ारखाँ के आधीन एक बहुत बड़ी सेना विद्रोही राजाओं से पिछले वर्षों का कर उगाहने के लिये भेजी। नादौन के निकट एक घोर संग्राम हुआ जिसमें राजाओं ने ख़ालसा की सहायता से सम्राट की सेनाओं को पूर्णतया परास्त कर दिया। गुरू गोवि-

न्द्रसिंह ने अपने "विचित्र नाटक" में एक अत्यन्त उत्तेजक कविता में इस युद्ध का वर्णन किया है*। इस पराजय से कांगड़ा के शासक दिलावरखाँ को बड़ा क्रोध आया और उस ने स्वयं एक बड़ी सेना लेकर राजाओं पर आक्रमण किया। जबकि उसने अपने पुत्र रुस्तमखाँ को एक प्रबल सेना सहित राजाओं की सहायता करने के अपराध में गुरू को दण्ड देने के उद्देश्य से भेजा। रुस्तमखाँ आनन्दपुर के बाहर डेरे लगाये पड़ा था जबकि एक रात अत्यंत वेग के साथ वर्षा हुई और पास के नद्दु में जल इतना चढ़ आया कि शाही सेना के बहुत से सैनिकों को बहा लेगया और जो शेष रहे उनमें भ्रम उत्पन्न होगया। परिणाम यह हुआ कि रुस्तमखाँ को बड़ी शीघ्रता के साथ पीछे भागना पड़ा। फलतः सिक्ख आज दिन तक इस नद्दु को "हिमायती नाला" कहकर पुकारते हैं।

जब इन आपत्तियों का समाचार औरंगजेब तक पहुंचा तो वह क्रोध में भरगया और उसने अपने युवराज शाहज़ादे मुअज़्ज़म को पंजाब में शान्ति स्थापन करने तथा विद्रोही राजाओं से कर उगाहने के लिये भेजा।

शाहज़ादा स्वयं लाहौर में ठहर गया और उसने गुरु तथा राजाओं को दण्ड देने के लिये मिरज़ा बेग के अधीन एक सेना भेजी। वह सेना कुशलता के साथ न लौट सकी जिससे शाहजादे को बड़ा नैराश्य हुआ तथा क्रोध आया।

---

* निस्सन्देह गुरु के ये वृत्तान्त एक इतिहास लेखक के भावों से या इतिहास की लेखन पद्धति अनुसार नहीं दिये गये। गुरु का उद्देश्य इतिहास लिखना न था वरन केवल अपनी उद्दीपक कविताओं द्वारा लोगों के भावभावों को भड़काना था।

अंत उसने स्वयं युद्धक्षेत्र में प्रवेश करने का संकल्प किया।*
किन्तु शाहजादे का निजमंत्री नन्दलाल गुरू के अनुयायियों में से था। उसने इस निर्भय नेता की महत्ता धार्मिकता तथा उसकेउच्च चरित्र को शाहज़ादे के सम्मुख बड़े हृदयंगम शब्दों में वर्णन किया और शाहजादे को समझा बुझाकर उससे इस धर्मात्मा पुरुष को कष्ट देने का विचार ही छुड़वा दिया।

इस प्रकार गुरू सर्वथा बच गये किन्तु राजाओं को शाही सेनापति मिरज़ाबेग ने बड़ा कठिन पाठ पढ़ाया। उसने राजाओं को पराजय पर पराजय दी, उनके देशों को लुटवा दिया, उनके ग्रामों में आग लगवा दी, सैकड़ों को बन्दी कर लिया और दूसरों को उनके द्वारा शिक्षा देने के लिये उनके सिर आदिक मुंडवाकर, मु ह कालेकर, गधों पर चढ़ा समस्त देश में फिरवाया। शाही सेना से यह विकट पाठ पढ़ कर राजाओं को पता लग गया कि औरङ्गज़ेब के प्रभुत्त्व का तिरस्कार कर उसके क्रोध को भड़काना अत्यन्त दुष्कर तथा भयंकर था। ये लोग सर्वथा उत्साहहीन होगये और उन्होंने युद्धकर स्वतंत्रता लाभ करने की आशा बिलकुल छोड़ दी। उन्होंने शाही कोष में पिछला समस्त कर जमा कर दिया और अपने राजभक्ति के पथ से हट जाने के लिये बड़े बड़े नीच शब्दों में क्षमा प्रार्थना की।

धन्य है नन्दलाल की नीतिज्ञता जिसके द्वारा गुरू को अपना बल फिर से प्राप्त करने तथा अपने युद्धसाधनों को बढ़ाने का अवसर मिल गया। गुरू ने राजाओं को फिर से कमर कसने तथा अपनी जातीय स्वतन्त्रता के लिये युद्ध करने की उत्तेजना दी। किन्तु मिरज़ाबेग का पढ़ाया हुआ पाठ

---

* मकलिफ़ पृष्ठ ७६ (नोट) तथा पंथप्रकाश देखो।

अभी तक राजाओं के हृदयों में हरा था। उन्होंने गुरू की बातों की ओर तनिक भी ध्यान न दिया और देहली सरकार की ओर अपनी राजनिष्ठा में दृढ़ रहे। गुरू ने फिर एक बार उन्हीं उपायों का प्रयोग किया और अपने अनुयायियों को उनकी रियासतों के ऊपर खुले छोड़ दिया। परिणाम यह हुआ कि सिक्ख लोग इन रियासतों में अग्नि तथा खड्ग का खुले प्रयोग करने लगे और जिस पदार्थ पर हाथ पड़ता था उसे उठा कर लेजाते थे। राजाओं को फिर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने फिर एक बार गुरू के विरुद्ध आपस में संधि की और बीस हजार योधाओं सहित गुरू पर आक्रमण किया आनन्दपुर के दुर्ग में उस समय गुरू के साथ केवल ८००० योधा थे तथापि गुरू ने सफलतापूर्वक प्रचण्ड संहार के साथ राजाओं की संयुक्त सेना को मार भगाया।* राजा लोग अब सर्वथा असहाय हो अपनी ओर से सर्वथा निराश होगये। उन्होंने एक आवेदन पत्र लिखकर सम्राट की सेवा में भेजा जिसमें अत्यन्त तिरस्कार तथा करुणात्मक शब्दों में यह वर्णन किया:—कि गुरू ने राजत्व के चिन्ह धारण कर लिये हैं; वह अपने को 'सच्चा बादशाह' कहता है, सहस्रों धर्मोन्मत्त अनुयायी प्रतिदिन आ आ कर उसकी पताका के नीचे एकत्रित होते जाते हैं; हमें (राजाओं को) स्वयं गुरू का बल तोड़ने में सफलता प्राप्त नहीं हुई और विजय से फूलकर वह प्रतिदिन अधिक धृष्ट तथा अधिक भयंकर होता जाता है, वह सम्राट के प्रभुत्व का तिरस्कार करता है और अपने अन्ध अनुयायियों को ये आशाएं दिलाकर उत्तेजित करता है कि

---

*गुरु ने पहाड़ी प्रदेशों का बहुत सा भाग अपने आधीन कर लिया था और समस्थल में रोपड़ तक उनका राज्य था।

शीघ्र ही सम्राट् का शासन मिट्टी में मिल जायेगा और देश में खालसा का राज्य होगा इत्यादि इस आवेदनपत्र को देखकर सम्राट् के कान खड़े होगये। उसने तुरन्त सरहिन्द के शासक को आज्ञा भेजी कि तुम स्वयं जाकर गुरू के साथ युद्ध करो और उसे कड़ा दण्ड दो। इस पर सरहिन्द के शासक ने एक प्रबल सेना सहित गुरू के ऊपर आक्रमण किया और राजाओं की संयुक्त सेना ने भी इस आक्रमण में शासक का साथ दिया*। गुरू अपने समस्त योधाओं को एकत्रित कर इस बढ़ती हुई सेना से युद्ध करने के लिये निकले। १७०१ ई० में कीर्तिपुर में एक बड़ा युद्ध हुआ। गुरू के सैनिकों ने वीरों का सा व्यवहार किया और अत्यन्त जी तोड़कर युद्ध किया किन्तु उनके विपक्षियों का बल उनसे कहीं अधिक बढ़ा हुआ था। दो दिन के लगातार घोर संग्राम के पश्चात सिक्ख लोग पीछे हटा दिये गये और गुरू को आनन्दपुर के दुर्ग में आश्रय लेना पड़ा जहां पर कि उन्होंने अपने आपको बन्द कर लिया। शाही सेना ने दुर्ग को चारों ओर से घेर लिया और बाहर से दुर्ग के भीतर आना जाना सर्वथा बन्द कर दिया।† शाही सेना के सेनापतियों ख्वाजा मुहम्मद तथा नाहरखां ने गुरू के पास एक दूत भेजा और उन्हें स्मरण कराया कि आप छोटे २ पहाड़ी राजाओं की थोड़ी सी तथा अशिक्षित सेना के

*बूतीशाह लिखता है कि इस आक्रमण में सरहिन्द तथा लाहौर के शासकों के साथ २२ राजा मिले हुए थे।

†पंथ प्रकाश में लिखा है कि आनन्दपुर मक्खोवाल के दुर्ग में बन्द किये जाने से पूर्व शाही सेना के साथ गुरु की और भी कई लड़ाइयें हो चुकी थीं जिनमें गुरुने विजय प्राप्त की थी पंथप्रकाश में इन लड़ाइयों का वृत्तान्त दिया हुआ है।

साथ नहीं लड़रहे हैं वरन् इस समय आपका प्रतापी मुग़ल की अपराजित सेना के साथ सामना है। उसआलमगीर औरंगज़ेब की सेना के साथ जोकि महाराजाओं का महाराजा, दरिद्रियों का प्रतिपालक तथा संसार का रक्षक है। असम्भव बातों के लिये प्रयत्न करना पागलपन है। आप के लिये अच्छा हो यदि आप शत्रुता छोड़कर तुरन्त आधीनता स्वीकार करलें और अपना मत छोड़कर इसलाम मत को ग्रहण करलें।

गुरू का नवयुवक पुत्र अजीतसिंह पास बैठा हुआ था। वह क्रोध से भरगया और तुरन्त अपनी खड्ग निकालकर उसने दूत से चिल्लाकर कहा,—"बस! यदि एक और शब्द भी तेरे मुख से निकला तो मैं इतनी धृष्टता के साथ हमारे गुरू से बात करने के अपराध में तेरा शिर काट डालूंगा और तेरे शरीर के टुकड़े २ कर दूंगा*"। यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि दूत का रुधिर क्रोध से खौलने लगा और इस उत्तर को पाकर वह शाही कैम्प में लौट आया।

गुरू धर्म के लिये युद्ध कर रहे थे और जो लोग धर्मार्थ युद्ध करते हैं वे विजय अथवा पराजय की संभावनाओं को नहीं देखा करते। गुरू के लिये मुग़ल सेना की अधीनता स्वीकार करलेने का अर्थ उच्च सिद्धान्तों का पाशवी शक्ति के आधीन होजाना था तथा इस का यह अर्थ होता कि गुरू अपनी जाति की पराधीनता को स्थायी कर देने में सहमत थे। इस कारण गुरू ने अपने पुत्र की बात का खण्डन करना और

---

*कनिंघम तथा लतीफ़ दोनों लिखते हैं कि यह घटना चमकौर में हुई थी। "पंथप्रकाश" आनन्दपुर में बताता है और मैं समझता हूं कि पंथप्रकाश ठीक है। चमकौर में जिस प्रकार की लड़ाई हुई उससे दूत आदिक के भेजे जाने की सम्भावना दिखायी नहीं देती।

अन्यायी के दूत को प्रसन्न करना आवश्यक न समझा। उन्होंने दुर्ग के भीतर अपने आपको बन्द कर लिया और अपनी दुर्ग की प्राकार परकी चढ़ाई हुई तोपों* से शत्रुओं के गोलों का उत्तर देते हुए केवल अपनी रक्षा करते रहे। परिवेष्टन जारी रहा और परिवेष्टकों की जागरूकता में तनिक मात्र भी कमी न पड़ी शीघ्र ही भोजन आदि की सामग्री कम होने लगी और गुरू के सैनिक गुरू से इस बात की प्रार्थना करने लगे कि आप इस समय अधीनता स्वीकार कर लीजिये कुशल पूर्वक किसी सुरक्षित स्थान पर चले चलिये और फिर युद्ध के साधनों को फिर से एकत्रित कर अधिक वेग तथा अधिक सफलता के साथ युद्ध कीजिये। शाही सेना की ओर से इस बात का वचन दिया जा चुका था कि यदि संधि कर आधीनता स्वीकार करलोगे तो तुम्हें कुशल पूर्वक दुर्ग से बाहर चला जाने दिया जावेगा। और सिक्खों ने जो भूख से मरने लगे थे गुरू से प्रार्थना की कि परिवेष्टकों के इस वचन से लाभ उठाया जावे। गुरू ने उन्हें वही उत्तर दिया उन्होंने सिक्खों को बताया कि म्लेच्छों की आधीनता स्वीकार करलेना कितना अयशस्कर है तथा उन्हें हर प्रकार से उत्साहित करने का प्रयत्न किया। इसके अतिरिक्त गुरू ने यह भी कहा कि अन्यायी लोग अपने वचनों का पालन नहीं करते हैं और खालसा ने उन्हें इतना अधिक भड़काया है कि अब उनसे दयालुता की आशा करना व्यर्थ है यदि हम दुर्गको उनके आधीन करदेंगे तो हम मुग़लों की कटारों का शिकार होंगे। गुरू ने सिक्खों से अभ्यर्थना की कि तुम लोग मेरे ऊपर

*गुरू ने इस परिवेष्टन के समय जिन तोपों का प्रयोग किया उनमें से दो लाहौर के म्यूज़ियम (अजायबघर) में रक्खी हुई हैं।

तथा परमात्मा पर विश्वास रक्खो अब भी बहुत कुछ संभावना है कि हमें बाहर से सहायता मिल जावे और हम अपने हाथ से शाही सेना को मार भगावें। अपने अनुयायियों को मुग़लों की प्रतिज्ञाओं के थोथेपन का विश्वास दिलाने के लिये गुरु ने आज्ञा दी कि कुछ चीथड़ों, टूटी हुई काठियों, पुराने जूतों तथा इसी प्रकार की अन्य वस्तुओं की गठरियां बांधी जावें और उन्हें खच्चरों तथा लादू घोड़ों पर लादकर बाहर लेजाया जावे यह दिखलाने के लिये कि सिक्ख लोग अपने असबाब सहित बाहर जारहे हैं। ज्योंही कि मुग़ल सैनिकों ने इस अश्वारोहियों को देखा वे इस पर टूट पड़े और जो गठरी उनके हाथ पड़ी उसे ही उठाकर लेगये*। सिक्ख लोग नैराश्य के समुद्र में गोते खाने लगे और यह देखकर कि भूक द्वारा अत्यंत कष्ट-कर मृत्यु उनके सामने थी उन्होंने अपने नेता को छोड़ भागना ही अपने लिये श्रेयस्कर समझा। शीघ्र ही गुरु तथा तथा उनके केवल ४५ अत्यन्त श्रद्धालु अनुयायी दुर्ग में अकेले रह गये†।

ये लोग बराबर प्रतीक्षा करते रहे किन्तु प्रतीत होता है कि दुर्ग के बाहर वाले सिक्ख अत्यन्त भयभीत होगये थे और उनमें कोई ऐसा नेता न था जो उन्हें एकत्रित कर परिवेष्टितों की सहायता के लिये ला सकता। इस बीच भोजन की सामग्री सर्वथा समाप्त होगयी और गुरु के पास इसके अतिरिक्त और कोई उपाय न था कि वह कुछ भी हो दुर्ग से बाहर निकल

---

*हस्तलिपि। ब्रिटिश म्यूज़ियम १८७।

†गुरु ने इन भागने वालों को एक बिकट शाप दिया जो वे लिखकर छोड़गये हैं। जब ये लोग देश में अपने २ घर पहुंचे तो सरकार ने इन्हें कड़े दंड दिये। इस घटना से लाभ उठाते हुए गुरु ने गुरुभक्ति व आचार्य-भक्ति पर एक व्याख्यान दिया। देखो 'विचित्र नाटक' अध्याय ११।

चले। एक दिन अंधेरी रात को अवसर पा गुरू अपने कुटुम्ब तथा उन थोड़े से अनुयायियों सहित दुर्ग से बाहर निकले और उन्होंने यथाशक्ति दौड़कर चमकौर के दुर्ग तक पहुँचने का प्रयत्न किया। किन्तु शीघ्र ही पता लग गया और स्वयं ख्वाजा मुहम्मद तथा नाहरखाँ के आधीन कुछ सेना ने उस दुर्ग तक गुरू का पीछा किया। उन मुट्ठी भर भक्त अनुयायियों ने अंत समय तक युद्ध किया। गुरू के दो सबसे बड़े पुत्र अजीतसिंह तथा जोफरसिंह और उनकी माता सुन्दरी गुरूकी आंखों के सामने वध हुए। स्वयं गुरू ने बड़ी वीरता के साथ युद्ध किया और अपने हाथों से नाहरखाँ को मार डाला तथा ख्वाजामुहम्मद को घायल करदिया*। यह संग्राम यद्यपि थोड़ी देर तक रहा तथापि अवश्य अत्यन्त भयंकर रहा होगा। जो ४५ शिष्य गुरू के साथ गये थे उनमें से गुरू के अतिरिक्त केवल ५ दुर्ग† के भीतर प्रवेश कर सके जहां परकि इन लोगों ने अपने आपको बन्द करलिया। परन्तु यह आशा न की जा सकती थी कि वे लोग अधिक समय तक उस दुर्ग के भीतर सुरक्षित रह सकेंगे। कुछ भी हो वह दुर्ग केवल ईंटों का बना हुआ एक छोटा दुर्ग था और उसे सहज ही ढाया अथवा जलाया जा सकता था। गुरू तथा उनके पांच बचे हुए सिक्ख अत्यन्त थके हुये तथा भूके थे इस कारण उन्होंने एक अत्यंत उग्र उपाय किया। जिस समय मुग़ल अभी अपने मुर्दों को

---

*लतीफ पृ० २६५।

†लतीफ तथा कनिंघम के अनुसार लड़ाई गुरू के अपने तईं दुर्ग के भीतर बन्द करलेने के पश्चात् हुई। किन्तु मुझे 'पंथप्रकाश' का वृत्तान्त जो मैंने इस ग्रंथ में दिया है अधिक सम्भव प्रतीत होता है। अर्थात् यह कि गुरू के दुर्ग में प्रवेश करने से पूर्व ही गुरू को आ दबाया गया।

बचाने में लगे हुए थे गुरु ने एक दीवार में छेद करवाया और अंधेरी रात में वह तथा उनके पांच अनुयायी एक २ कर विविध दिशाओं में भाग निकले * ।

गुरु अब यथाशक्ति शीघ्रता के साथ पास के वनों में दौड़ गये । दिन वनमें व्यतीत किया और रात्रिको फिर अपना कष्टकर भ्रमण आरम्भ किया । प्रातःकाल के निकट वे मच्छीवाड़ा नामक छोटेसे नगर में पहुंचे और नगर के पूर्व की ओर एक बड़े उद्यान में छिप कर बैठ गये । यह उद्यान गनी खां तथा नबी खां नामक दो रोहिल्ला खां पठानों का था । वे दोनों अकस्मात् वहां आ निकले और अपनी भूमि में गुरु गोविन्द सिंह को देखकर चकित तथा भयभीत हो गये । उन्हें लोभ आ गया और क्षणभर के लिये उन्होंने गुरुको सरकारके हवाले कर धन तथा मान लाभ करने का विचार किया । परन्तु गुरु अनेक बार उनसे घोड़े खरीद चुके थे और सदा उनके साथ अत्यन्त अनुग्रह का व्यवहार करते रहे थे । शीघ्रही उन पठानों की दयालुता तथा कृतज्ञता ने ज़ोर किया और उन्होंने गुरु को अपनी शरण में लेलिया । गुरुने अपने वस्त्र बदलकर एक मुसलमान सन्त का भेष धारण कर लिया और गनीखां तथा नबीखां ने यह प्रकट किया कि ये हमारे पीर हैं और उत्तराय

* पंथप्रकाश का लेखक कहता है कि गुरु ने अपने चार अनुयायियों को आज्ञा दी कि तुम मुगलों को धोका देने के लिये दुर्ग में रहकर बराबर अपनी बन्दूकें चलाते रहो । जबकि गुरु स्वयं इस बीच अपने दो तीन आज्ञाकारी अनुयायियों सहित भाग निकले । अगले दिन प्रातःकाल को मुगलोंने दुर्ग लिया । और जो चार सिक्ख दुर्ग के भीतर छोड़े गये थे उन में से प्रत्येक ने खड्ग हाथ में लिये हुए युद्ध करते हुए अपने प्राण दिये ।

की सुप्रसिद्ध दरगाह में हम से मिलने के लिये आये हैं*।

इसके पश्चात् गुरू ने सालोह नामक स्थान के काज़ी पीर मुहम्मद की शरण ली। इन काज़ी साहब से गुरू अपने बालकपन में फारसी तथा कुरान पढ़ चुके थे। वे तीन सिक्ख भी जो गुरू के साथ चमकौर के दुर्ग से भागे थे और उस समय से बराबर गुरू की खोज में मुसलमानी भेष धारण कर उत्कण्ठा पूर्वक भ्रमण कर रहे थे अब यहां आ निकले और निज गुरू को जीवित तथा सुरक्षित देख अत्यंत प्रसन्न हुए। किन्तु गुरू जानते थे कि उनके लिये उस स्थान पर अधिक ठहरना निश्शंक न था और इसलिये उन सिक्खों के आते ही गुरू ने मालवा देश की ओर प्रस्थान करने का संकल्प किया। निज वेष परिवर्त्तन को निर्दोष कर देने के उद्देश्य से उन्होंने एक पालकी मँगवायी और उच्छ् के पीरों के समान उसमें बैठकर उसे अपने अनुयायियों के कंधों पर रखवा मालवा प्रान्त की ओर प्रस्थान किया। ये लोग अभी अधिक दूर नहीं गये थे कि शत्रु के सैनिक उनपर आ टूटे। प्रतिरोध असम्भव था। कुशल की संभावना केवल चाल चलने ही में हो सकती थी। जब पालकी लेजाने वालों को पकड़कर उनसे पूछा गया तो उन्होंने शान्ति के साथ उत्तर दिया, कि "हम पीर साहब के नौकर हैं और पीरसाहब अपने मुर्दों से मुलाक़ात करने के लिए सफ़र कर रहे हैं"। यह किंवदन्ती उड़ गयी थी कि गुरू गोविन्दसिंह मुसलमानी भेष में छिपा हुआ है किन्तु उच्छ के पीरों का इतना अधिक आदर तथा मान किया जाता था कि गुरू गोविन्द-

---

*मुलतान के ज़िले में उच्छके पीर लम्बी दाढ़ियें रखते हैं तथा अपने केस नहीं काटते। इस लिये अपने केस नीचे छोड़ कर गुरू एक बड़े सुन्दर पीर बन गये होंगे।

सिंह के उनके सहरूप बनजाने की सम्भावनाने ही गुरू की जान बचाली। तथापि मुग़ल सैनिकों के सेनापति ने इस बात पर ज़ोर दिया कि यदि पालकी के भीतर का मनुष्य वास्तव में उच्छ का पीर ही है तो वह मेरे साथ बैठकर खाना खावे और एक इतने बड़े सन्त की दावत करने का मुझे महात्म्य प्रदान करे। गुरू ने तुरन्त स्वीकार कर लिया और कतिपय इतिहास लेखकों के अनुसार अपने मुसलमान बन्दीकर्त्ताओं के साथ एकही दस्तरखान पर खाना खाया*।

इस प्रकार बाल बाल बच जाने के पश्चात् गुरु मालवा† की ओर चले। मुक्तसर नामक नगर के चारों ओर जो निर्जल मरुस्थल पड़ा हुआ है उसके बीच में गुरु के पीछा करनेवालों ने उन्हें फिर आ पकड़ा। किन्तु इस समय के भीतर गुरू के कुछ अनुयायी उनके चारों ओर एकत्रित हो गये थे और

---

*यह वृत्तान्त कनिंघम का है और कन्हैया लाल भी इसके साथ सहमत है। किन्तु सय्यद मुहम्मद लतीफ़ इस घटनाको वर्णन नहीं करता और पन्थ प्रकाश का लेखक यह अवश्य बताता है कि गुरु के सिक्खों ने मुसलमानों के साथ खाना खाया किन्तु यह स्पष्ट नहीं बताता कि गुरु ने भी खाया था या नहीं। एक लेखक (M S. Cer 187) के अनुसार सिक्खों ने यह कह दिया कि हमारा पीर रोज़े से है और प्रातःकाल तथा सायंकाल एक जौके दानेके अतिरिक्त और कुछ नहीं खाता। कोई २ कहते हैं कि सिक्खोंने कटार के स्पर्श द्वारा अपने भोजनको शुद्ध कर लिया था। दूसरे कहते हैं कि भोजन करने से पूर्व उन्होंने ग्रन्थसाहब के किसी शब्द का पाठ कर लिया था।

† 'मालवा' शब्द से यहां उस प्रदेश का अर्थ नहीं है जो सामान्य रीति से तथा वास्तव में 'मालवा' कहलाता है। पंजाब में फ़ीरोज़पुर के ज़िले तथा पटियाला रियासत के एक भाग को मालवा कहते हैं।

गरमी तथा जल के अभाव के कारण मुग़ल सेना को पीछे हट जाना पड़ा*। इस संग्राम में जो सिक्ख काम आये उनके स्मरणार्थ गुरू ने वहां पर एक सर बना दिया और उसका नाम "मुक्तसर" अर्थात् मुक्ति का सर रक्खा। मुक्तसर नामक वर्त्तमान नगर का नाम इसी से लिया गया है।

इस समय गुरू के समस्त बालक मर चुके थे और गुरू अत्यन्त शोक में डूबे हुए थे। इसके अतिरिक्त औरंगज़ेब की सेनाएं इतनी अधिक जागरूक तथा अनलस थीं कि गुरू को अपने महान उद्देश्य को पूरा करने का कोई अवकाश न मिल सकता था। इस कारण गुरू हान्नी तथा फिरोज़पुर के बीच में एक स्थान पर रहने लगे। इस स्थान का नाम उन्होंने 'दमदमा' अर्थात् दम लेने का स्थान रक्खा। वहां पर लगभग एक वर्ष तक रहकर वे अपने अनुयायियों को उपदेश देने तथा 'दशम ग्रन्थ' का संग्रह करने में अपना समय व्यतीत करते रहे। यहां पर गुरू के पास औरंगज़ेब का एक पत्र आया जिसमें सम्राट ने गुरू को देहली आने की आज्ञा दी। गुरू ने इसके उत्तर में फ़ारसी की ओजस्विनी कविता में लिखकर एक लम्बा पत्र सम्राट के पास भेजा। इस पत्र में गुरू ने एक एक कर वे समस्त अन्याय गिनवाये जो उन पर किये जा चुके थे और यह लिख दिया कि इन अन्यायों के कारण ही

*लतीफ़, स्याद मेकग्रिगौर का अनुसरण करता हुआ, लिखता है कि गुरू की सेना १२००० थी और मुग़ल सेना ७००० थी। 'पंथप्रकाश' तथा सोहनलाल लिखते हैं कि गुरू की ओर से केवल लगभग ४० आदमी लड़े थे और यह ही सत्य प्रतीत होता है। अन्यथा गुरू इतनी बड़ी सेना रखते हुए तथा इतनी बड़ी विजय प्राप्त कर अपने सामरिक जीवन से तटस्थ न हो बैठते।

अन्त में विवश हो तथा और कोई उपाय न देख खड्ग उनको उठानी पड़ी थी।* प्रतीत होता है कि गुरू के नाम के पत्र में औरंगज़ेब ने क़ुरान की शपथ खायी थी कि मैं आपके साथ आदर का व्यवहार करूंगा। किन्तु गुरू ने अपने उत्तर में उसे स्पष्ट लिख दिया कि मैं कपटी मुग़ल की शपथों का तनिक मात्र भी विश्वास नहीं करता। गुरू गोविन्दसिंह ने सम्राट् को उसके पदपात तथा प्रजापीडन के लिये भी गर्हणीय ठहराया और उसे यह धमकी दी कि एक न एक दिन खालसा तुम से अवश्य बदला लेंगे। औरंगज़ेब ने फिर एक बार गुरू को देहली बुलवाया। और कतिपय इतिहास लेखकों के अनुसार गुरू उनसे मिलने के लिये चल पड़े थे जबकि वृद्ध सम्राट् का देहान्त हो गया। कहते हैं कि औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् बहादुरशाह ने गुरू को शाही सेना में एक अधिकार पर नियुक्त कर दिया और कनिंघम, लतीफ़, पन्थ प्रकाश इत्यादि† के अनुसार गुरू 'दक्षिण' प्रदेश में सम्राट् के साथ गये‡। गुरू शान्ति के साथ दक्षिण में अपना समय व्यतीत करते रहे यहां तक कि एक दिन उनके दो पठान उप-

---

* इस पत्रकी एक पंक्ति यह है—"चोंकार अज़ हमाह हालते दरगुज़श्त। हलाल अस्त बुरदन ब शमशीर दस्त" ॥ अर्थात्—जब और कोई उपाय न चल सके तो खड्ग उठा लेनाही न्याय है। दुर्भाग्यसे औरंगज़ेब के समयमें इस प्रकार के उपाय भी अधिक न थे क्योंकि प्रजाके दुःखों को प्रकाशित करने की कोई निश्चित पद्धति न थी।

† मुन्शी सोहनलाल भी इस विचारका समर्थन करता है प्रतीत होता है कि इन समस्त लेखकों ने ख़ाफ़ीख़ां का अनुसरण किया है।

‡ वृत्तीसाह कहता है कि गुरु गोविन्दसिंह शोकातुरथे और स्थान परिवर्तन चाहते थे इसही कारण दक्षिण गये, मलकोम का भी यही विचार है। इस

जीवियों ने जिनके पिता* को गुरु ने मारा था उनके शरीर में अपनी छुरी चुभा दी।

दोनों लड़के पकड़ लिये गये किन्तु उन्हें क्षमा कर दिया गया क्योंकि गुरु ने कहा कि इन्होंने भी केवल अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने का प्रयत्न किया है। गुरु का घाव उस

---

* यह अनुमान कर लेना कठिन नहीं है कि गुरु के चित्त में पठान लड़कों के सौभाग्य की ओर से कितनी ईर्षा उत्पन्न हुई होगी क्योंकि इस विषय में कुछ ठीक नहीं कह सकता और कन्हैयालाल इस नौकरी का वर्णन ही नहीं करता। मेलकोमके वाक्य अत्यन्त अर्थ सूचक हैं। वह लिखता है कि,—" जब हम गुरु के चित्त की उत्साह पूर्ण व्यग्रता, उनकी उद्योगिता, उनकी वीरता, तथा बदला देने की उस अतोषणीय तृष्णा की ओर ध्यान देते हैं कि जिसको कि उन्होंने जीवन भर अपने पिताके बधिकों तथा अपनी जाति के पीड़कों के विरुद्ध पोषण किया तो हमारी यह समझ में नहीं आता कि उस समय जब कि उन के हृदय का यह प्रधान उत्ताप उनके बालकों की हत्या तथा उनके परमानुरक्त अनुयायियों के बध तथा पीडन द्वारा अवश्य बढ़ चुका होगा वे कैसे निष्क्रिय बैठे रहते। वा इससे भी अधिक कि वे उस सर्कारकी नौकरी स्वीकार करलेते जिसके विरुद्ध वे सदैव विद्रोह खड़ा करते रहे। और, न यही संगत प्रतीत होता है कि कोई मुगल बादशाह गुरु गोविन्दसिंह जैसे नेताका कभी भी विश्वास करता।" गुरु का बन्दा को पञ्जाब का नेता बनाकर भेजना तथा बन्दा का वहां पर युद्ध आदिक करना ये दोनों घटनाएं भी गुरु के नौकरी स्वीकार कर लेने की बात को असंगतही दर्शाती हैं।

†कनिंघम, मेकग्रिगौर तथा अन्य कई लेखक यह वृत्तान्त देते हैं। ट्रम्प 'सिक्खों दे राज दी विथ्या' के अनुसार लिखता है कि इन लड़कों में से एक पयन्दा का पोता था जिसे गुरु गोविन्दसिंह के पितामह ने मारा था। नदेड़ के पुरोहितों ने कनिंघम को यह भी कथा सुनायी थी।

समय सी दिया गया और वे बच गये किन्तु थोड़े दिनों पीछे ही जब कि गुरू एक प्रबल धनुष की परीक्षा कर रहे थे वह घाव फिर से खुल गया। गुरू के शरीर से अत्यन्त रक्त बह गया और सन् १७०८ ई० के अन्त के दिनों में गोदावरी के तट पर नदेद नामक एक नगर में जिसे अब अबचलानगर कहते हैं गुरू का शरीर छूट गया। मृत्यु के समय उन्होंने अपने अनुयायियों को दृढ़ तथा धीर बने रहने का आदेश दिया। उन्होंने सिक्खों को विश्वास दिलाया कि जहां कहीं पांच सिक्ख एकत्रित होंगे वहां गुरू अवश्य उनके साथ होंगे। उन्होंने कहा—" मैंने परमपिता की आज्ञानुसार इस ग्रन्थ को स्थापन किया। समस्त सिक्ख 'ग्रन्थ साहब' को अपना गुरू समझें। 'ग्रन्थ साहब' को जीवित गुरू के शरीर के समान समझें। जिनके हृदय पवित्र होंगे वे गुरू के शब्दों में गुरू का दर्शन करेंगे।"

यद्यपि गुरू गोविन्दसिंह ने निज जीवन में अपने महान उद्देश्यों को सिद्ध होते हुए न देखा तथापि उनका परिश्रम व्यर्थ न गया था यद्यपि उन्होंने स्वयं उन शृंखलाओं को न तोड़ा जिन्होंने उनकी जाति को जकड़ रक्खा था तथापि उन्होंने लोगों की आत्माओं को स्वतन्त्र करदिया था और उनके हृदयों में स्वतन्त्रता तथा गौरव लाभ करने की उच्च आकांक्षा उत्पन्न करदी थी। उन्होंने दिल्लीपति* की पुण्यता के जादू को तोड़ दिया था और मुस्लिम निष्ठुर शासन से उत्पन्न हुए भय

वास्तव में गुरू के अपने पिता के वध का अभी तक बदला नहीं लिया गया था।

*ईश्वरोवा दिल्लीश्वरो वा 'यह वाक्य उस समय के भयभीत हिन्दुओं में बहुत समय तक प्रसिद्ध रहा।

तथा श्रासका नाश कर दिया था। गुरूगोविन्दसिंहने देख लिया था कि उस समयतक हिन्दू जाति में किस श्रोर जीवन शेष था और उन्होंने उस जीवनका एक महती अग्नि द्वारा प्रचण्डकर दिया था। उन्होंने चिडियों को पकड कर उन्हें शाही शशादनों का शिकार करना सिखला दिया था। गुरू गोविन्दसिंह पहिला भारतीय नेता था जिसने सार्वजनिक समता के सिद्धान्तों का प्रचार किया और अपने अनुयायियों को प्रेरणा की कि वेएक दूसरे को भाई समझे तथा मिल कर गुरमत अर्थात् सार्वजनिक सम्मति के अनुसार कार्य कर । गुरू ने अपने अनुयायियों को इस बात की शिक्षा दी कि वे अपने आप को परमात्मा के विशेष प्यारे समझें जो अन्याय तथा प्रजा पीडन को दमन करने के लिये ससार में भेजे गये थे और अपने आप को अपनी जन्मभूमि के भावी शासक समझें। गुरू ने अपना कोई उत्तराधिकारी नियुक्त नही किया । एक इस कारण क्योंकि उनके अपने समस्त पुत्र मर चुके थे और दूसरे इस कारण क्योंकि शायद उन्हें इस बात का भय था कि यदि यह पदवी किसी अयोग्य हाथों में पड़गई तो संभव है कि उससे हानि पहुचे। ऊपर लिखे अनुसार उन्होंने गद्दी के परम्परागत प्राप्त होने को अन्त करदिया और सिक्खों को यह आज्ञा दी कि वे भविष्य में "ग्रन्थ साहब" को ही अपना एक मात्र गुरू मानें। तथापि उन्होंने बन्दा बेरागी नामक एक मनुष्य को सांसारिक नेता के रूप में गुरूका कार्य जारी रखने के लिये नियुक्त कर दिया था। और अब हमारे लिये आवश्यक है कि हम इस महापुरुष के नेतृत्व में ख़ालसा की जयाजयों का पता लगायें।

अध्याय १२

बन्दा के अधीन सिक्खों की विजय।

(१७०८—१७१६)

बन्दा सन् १६७० ई० में राजौरी नामक एक ग्राम में उत्पन्न हुआ था। यह ग्राम महाराजा जम्मू और काश्मीर के आधीन पूंछ की एक छोटी सी पहाड़ी रियासत में अवस्थित है। बन्दा का पहिला नाम लछमन देव था। उसके पिताका नाम रामदेव था और वह डोगा जाति का राजपूत था। लछमन देव को लड़कपन में मृगया (शिकार) से बड़ा प्रेम था। एक दिन उसने एक हिरनी मारी परन्तु जब उसे काटा तो उसके पेट में से दो बच्चे जीते हुए निकले और उनके देखते देखते थोड़ी देर में मर गये। लछमनदेव को यह दृश्य देखकर ऐसी दया आयी कि उस ने फिर न केवल शिकार खेलना ही छोड़ दिया वरन् उसने संसार से विरक्त हो वैराग्य धारण कर लिया. इस वैरागी रूप में उसका नाम अब माधोदास* रक्खा गया और वह साधुओं की एक

---

*यद्यपि मुगल सरकार के विरुद्ध बन्दा के सांग्रामिक व्यापार ऐसे विकट थे कि उससे युद्ध करने के लिये सम्राट को स्वयम् क्षेत्र में उतरना पड़ा, तथापि अंगरेज़ इतिहास लेखकों ने उसके कार्यों का वर्णन बहुत ही थोड़ा किया है। इसलिये मैंने उसकी विजयों का इस पुस्तक की आवश्यकता से अधिक विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

मंडली के साथ तीर्थयात्रा करने निकल पड़ा। कुछ समय व्यतीत होने पर वह अपनी विद्वत्ता, धर्मभक्ति तथा दिव्यशक्तियों लिये अत्यंत विख्यात होगया। वास्तव में उस समय के लोग बन्दा जैसे असाधारण योग्यता रखनेवाले पुरुषों के विषय में भ्रम से यही समझने लगते थे कि उसमें कोई न कोई अलौकिक अथवा दिव्यशक्ति है। बन्दा ने अब भ्रमण करना छोड़ दिया और वह गोदावरी नदी के तट पर एक छोटे से नादेढ़ नामक विश्रान्त ग्राम में राजकीय शोभा के साथ रहने लगा।

यही स्थान था जहां पर कि १७०८ ई० में बन्दा तथा गुरू गोविन्दसिंह की भेंट हुई। गुरू को जब कि वे दक्षिण की यात्रा कर रहे थे नादेढ़ में ठहरने का अवसर हुआ और इस महात्मा की बहुत सी प्रशंसा सुन गुरू उससे मिलने के लिये गये। गुरू देखते ही पहिचान गये कि वह वैरागी किस प्रकृति का बना हुआ था, और अपने मन में उन्होंने तुरन्त निश्चय कर लिया कि "यह वैरागी ही भविष्य में ख़ालसा दल का नेता बन मेरे महान उद्देश्य को पूरा करेगा।" दोनों में शीघ्र ही गहरी मित्रता होगयी और गुरू के हृदयग्राही वक्तृत्व तथा उनके धार्मिक उत्साह ने माधोदास के हृदय पर ऐसा गहरा प्रभाव डाला कि वह गुरू का शिष्य होगया, अपने आपको गुरू का "बन्दा" अथवा ग़ुलाम कहने लगा, और उसने अपना जीवन सर्वथा गुरू के चरणों में सौंप दिया। गुरू अपनी इस विजय पर अत्यत प्रसन्न हुए और उन्होंने माधोदास की सेवा को स्वीकार कर लिया। गुरू ने अपने आदर्श तथा आकांक्षाओं और अपने कष्टों तथा विपत्तियों का संपूर्ण वृत्तांत उसे सुना दिया था। अब गुरू ने अपने नये चेले से निवेदन किया कि,—'अब आप मेरा कार्य संभालिये मेरे पिता और

निर्दोष बालकों के खून का बदला लीजिये तथा मुग़लों के स्वेच्छाशासन के ऊपर प्रहार कर निज जाति को अन्याय के भार से मुक्त कीजिये।"

गुरु ने उसे एक खड्ग तथा अपनी तुरई में से पांच बाण प्रदान किये और उसे निम्नलिखित पांच आज्ञाएं दीं:—

१—कदापि किसी स्त्री के पास न जाना वरन् जीवन भर ब्रह्मचर्य* रखना।

२—सदा सत्य विचार करना, सत्य बोलना और सत्य पर ही चलना।

३—सदा अपने को खालसा का सेवक समझना और उन की इच्छानुसार कार्य करना।

४—कदापि अपना पृथक मत स्थापन करने का प्रयत्न न करना।

५—कदापि अपनी विजयों पर फूल न जाना, और न कभी राज्य के अभिमान द्वारा उन्मत्त होना।

बन्दा ने बड़े आदर तथा भक्ति के साथ उस खड्ग और उन तीरों को ग्रहण किया और हृदय से गुरु की आज्ञाओं के पालन करने की प्रतिज्ञा की। गुरु ने उस पञ्जाब के समस्त

*गुरु अविवाहित जीवन पर बड़ा ज़ोर देते थे और उन्होंने स्वयम् सामाजिक जीवन आरंभ करने से पूर्व संयम धारण कर रक्खा था उनकी दूसरी स्त्री, 'साहिबा देवां' ने पुत्र की बड़ी अभिलाषा प्रकट की किन्तु गुरु ने उसे यह कह कर शांत कर दिया कि समस्त ख़ालसा ही तुम्हारे पुत्रों के समान हैं। इसलिये प्रत्येक मनुष्य से उसे सिक्ख करते समय यह कह दिया जाता है कि "इस समय से तुम्हारी जाति सोढ़ी (गोविन्द की जाति) है और तुम्हारे माता पिता "साहिबा देवां तथा गोविन्दसिंह हैं।"

सिक्खों के नाम का एक पत्र दिया जिसमें गुरू ने सिक्खों को आज्ञा दी कि वे सब बन्दा को अपना नेता स्वीकार करें और उसके झंडे तले लड़ें। गुरु ने उसे एक ढोल और अपना एक झंडा भी प्रदान किया और अपने चुने हुए अनुयायियों में से पच्चीस को उसके साथ कर उसे पंजाब की ओर भेज दिया ताकि वहां जाकर वह गुरू के उस कार्य को जो अधूरा पड़ा हुआ था पूरा करे।

जब बन्दा पंजाब पहुंचा तो हजारों सिक्ख चारों ओर से उसके झंडे तले लड़ने तथा मरने को एकत्रित होगये*। उस सेना में जो अब बन्दा के सेनापतित्व में एकत्रित हुई तीन प्रकार के मनुष्य सम्मिलित थे।

सब से प्रथम श्रेणी में वे सच्चे और भक्तियुक्त सिक्ख थे जो स्वयम् गुरू गोविन्दसिंह के चरणों में बैठ चुके थे और जिनके हृदयों में ठीक वही आग भड़क रही थी जिससे स्वयम् गुरू गोविन्द उत्तेजित थे। ये लोग अपनी जाति तथा धर्म के शत्रुओं पर चढ़ाई करने के लिये भक्ति तथा आत्मोत्सर्ग के भावों से प्रेरित हो बन्दा के चारों ओर एकत्रित होगये थे। उनको लूट मार अथवा व्यक्तिगत बढ़ौती की तनिक मात्र भी लालसा न थी वरन् इसके विपरीत उनमें से सैकड़ों अपने घर बार तक बेंच और शस्त्र मोल लेकर इस दृढ संकल्प के साथ नये नेता के आधीन एकत्रित हुए थे कि वे विजय प्राप्त करेंगे अथवा धर्म युद्ध में अपने प्राण न्यौछावर करेंगे।

दूसरी श्रेणी में वे वैतनिक योधा थे जिन्हें फूल वंश के रामसिंह तथा तिलोकसिंह जैसे सरदारों ने एकत्रित कर

*मोहम्मद कासिम और खाफ़ी खां लिखते हैं कि लोग बन्दा को गुरु गोविन्दसिंह का अवतार समझते थे।

बन्दा के पास भेज दिया था। क्योंकि इन सरदारों को इस नये आन्दोलन की विजय में कुछ संदेह था और इस भय से कि कहीं सम्राट का अनुग्रह तथा उनकी अपनी संपत्ति उनसे न छीन लीजाये वे स्वयम् बन्दा की सेना में सम्मिलित होने का साहस न कर सकते थे। उन्होंने गुप्त रीति से बड़ी बड़ी सेनाओं के लिये शस्त्र तथा अन्य सामग्री ख़रीदे जाने को धन दिया और वे अपने आपको प्रकट न कर चोरी से इस आन्दोलन की बराबर सहायता करते रहे।

तीसरी श्रेणी में वे अव्यवस्थित सैनिक थे जो केवल लूट की आशा से बन्दा की ओर खिच आये थे। इन लोगों की जीविका ही लूट तथा डाकों पर थी। वे बड़े साहसी तथा निर्भय मनुष्य थे। उनको इस आन्दोलन से इस लिये बड़ा हर्ष उत्पन्न हुआ क्योंकि इसके द्वारा उन्हें केवल व्यापारी दलों अथवा साधारण यात्रियों को लूटने के स्थान पर नगरों तथा ग्रामों कोलूटनेका बड़ा सुन्दर अवसर हाथ आया।

बन्दा ने सरहिन्दकी सीमा तक पहुंचते २ एक बड़ी सेना* इकट्ठी करली थी। उसकी प्रथम अभिलाषा यह थी कि गुरू गोविन्दसिंह के दो नन्हें बालकों के ख़ून का बदला लेने के लिये सरहिन्द को लेकर उसका नाश मिला देवे जहां पर कि उन बालकों को ऐसी निर्दयता के साथ मारा गया था।

जब बन्दा कैथल नाम के नगर में पहुंचा तो उसे सूचना मिली कि एक बड़ा भारी ख़ज़ाना देहली को जारहा है और उस ख़ज़ाने के लेजाने वाले रक्षक भूना ग्राम में ठहरे हुए हैं।

---

*ख़ाफ़ीख़ा के अनुसार ४ या ५ महीनों में ४००० सवार और ७ या ८ हज़ार पैदल उससे आमिले। जिनकी संख्या शीघ्र ही ८ या ६ हज़ार बल्कि अंतमें बढ़ते २, ४०,००० तक पहुंच गयी थी।

बन्दा तुरन्त उन पर जापड़ा और रक्षकों को मारकाट कर खज़ाने की एक २ पाई उड़ा लेगया और इस समस्त धन को तुरंत अपने सैनिकों में बांटकर उसने उनके हर्ष तथा उत्साह को द्विगुण करदिया। कैथल के नगर को खूब लुटवाने के पश्चात् बन्दा ने समाना ग्राम पर चढ़ाई की यह ग्राम उस जल्लाद जलालुद्दीन का जन्मस्थान था जिसने गुरु तेगबहादुर को वध किया था यह ग्राम खूब लूटा गया और १०,००० मुसलमानों को मार डाला* गया। घुड़ाम, ठस्का, अंबाला, कुंजपुर, मुस्तफ़ाबाद और कपूरी† नामके नगरों को लूटा गया और वहां के मुसलमान हाकिमों को अन्याय तथा प्रजापीड़न के लिये दण्ड दिया गया। इसके पश्चात् साढ़ौरा की बारी आयी। इस नगर के मुसलमानों ने भागकर सय्यदों के मकान में शरण ली परंतु बन्दा ने उन के लिये कोई ठिकाना न छोड़ा और सब को बड़ी निर्दयता के साथ मार डाला। यह स्थान अभी तक मौजूद है और 'क़तलगढ़ी' के नाम से प्रसिद्ध है। बन्दा ने इसके पीछे मुख़लिसपुर का दुर्ग विजय किया और उस का नाम लोहगढ़ रक्खा। इस के पश्चात बन्दा की दृष्टि घुट और बनूदर नामक ग्रामों की ओर गयी जहां के मुसलमान बड़े पक्षपाती थे और गोवध के लिये बदनाम थे। ये ग्राम भी विजय कर लिये गये और नियमानुकूल यहां के मुसलमानों को तलवार की भेंट किया गया।

---

*बन्दा बहादुर।

†कपूरी एक ग्राम साढौरा से ४ मील पर ज़िले अंबाले में है। इस स्थान का हाकिम बड़ा अन्यायी तथा व्यभिचारी था। उस ग्राम में शायद ही कोई ऐसा घर बचा हो जिसकी स्त्रियोंके सतीत्व को उसने भंग न किया हो उसका नाम क़द्रुमुद्दीनख़ा था।

यद्यपि ये समस्त विजय छोटी छोटी थीं तथापि इन से बन्दा के अनुयायियों में बड़ा उत्साह उत्पन्न हुआ और सरहिन्द तक पहुंचते पहुंचते हज़ारों मनुष्य आ आकर उसके झंडे तले एकत्रित हो गये। सरहिन्द वह स्थान था जहां पर कि गुरु गोविन्दसिंह के नन्हें बालक बड़ी क्रूरताके साथ वध किये गये थे। यह स्थान सिक्खों की दृष्टि में हर प्रकारकी नीचता तथा प्रणाहंता की मूर्ति दिखायी देता था और गुरु गोविन्दसिंह के भक्त अनुयायी इस हत्यारे नगर से पूरा २ बदला लेने के अवसर की प्रतीक्षा में अत्यन्त व्यग्र थे। सरहिन्द की आगामी लड़ाई में भाग लेना प्रत्येक सिक्ख अपना परमधर्म समझता था और धर्म के नाम पर निज जीवन की आहुति देने की प्रबल अभिलाषा ने माझा तथा मालवा से हज़ारों सिक्खों को उस आक्रमण में सम्मिलित होने के लिये एकत्रित कर दिया। हज़ारों ही मनुष्य केवल लूटमार के लोभ से भी एकत्रित होगये थे, क्योंकि सरहिन्द का नगर सरहिन्द नामक प्रान्त का मुख्य स्थान था और विजयिताओं को लूट मार द्वारा बहुत कुछ सम्पत्ति हस्तगत करने की प्रत्याशा थी।

यह सुप्रसिद्ध लड़ाई* ३० मई सन् १७१० ई० को लड़ी गयी। वहां का शासक वज़ीरखां मालेरकोटलेके शेर मुहम्मद ख्वाजा अली के साथ स्वयम् सेना लेकर क्षेत्र में आया। उस के पास बहुत सी तोपें और जम्बूडक तथा बहुतसे हाथी थे दूसरी ओर बन्दा के पास न तोपें थीं न हाथी और अच्छे घोड़े भी उसके पास पर्याप्त संख्या में न थे। ज्योंही कि लड़ाई आरम्भ हुई और मुग़लों ने गोले बरसाने शुरु किये वे समस्त

*प्राकीप्रां ने इस लड़ाई का सविस्तार तथा सुस्पष्ट वृतांत दिया है।

डाकू तथा लुटेरे जो केवल लूट की लालसा से ही एकत्रित हो गये थे उलटे पांव भाग गये, और लड़ाई लड़ने के लिये केवल श्रद्धावान् सिक्खही शेष रह गये। फ़तेहसिंह, कर्मसिंह धर्मसिंह, और अलीसिंह मालवा की सेनाओं के सेनापति थे और बाजसिंह तथा विनोदसिंह माझा से आयी हुई सेनाके अध्यक्ष थे। बन्दा स्वयम् एक सच्चे राजपूत के समान अपनी सेना के अग्रभाग में लड़ता रहा। धार्मिक उत्साह ने मुग़लों की अधिक संख्या तथा उनकी तोपों पर विजय प्राप्त की। वज़ीरखां और उस का दीवान दोनों मारे गये। नगर लूटा गया और समस्त मुसलमान पुरुष तथा स्त्रियां बालक तथा बूढ़े अत्यन्त क्रूरता के साथ मार डाले गये*।

---

*"उन्होंने उस स्थान के प्रत्यक मुसलमान को काटा बरछे मारे, गले घोंटे, फांसी दी, गोली मारी, टुकड़े टुकड़े किये तथा जीता जला दिया। केवल इतनाही नहीं किया गया वरन् इन भयंकर पिशाचों की क्रोधाग्निको शान्त करने के लिये मुरदों तक के साथ इसही प्रकार के अत्याचार किये गये ... अर्थात् कबरिस्तान तक की पवित्रता को भी भंग किया गया और कबरों में से लाशों को निकालकर उनके टुकड़े टुकड़े किये गये तथा उन्हें अखाद्य मांस की तरह फेंक दिया गया ...।" (लतीफ़ रचित "पंजाब का इतिहास)।

यह वृत्तान्त बहुत बढ़ाकर लिखा हुआ प्रतीत होता है। अहमदशाह का मक़बरा जो समस्त ऐसी इमारतों में सब से अधिक सुन्दर तथा विशाल है आज तक वैसाही खड़ा है जैसा कि लड़ाई से पहिले था और मेरा विचार है कि लतीफ़ के ऊपरवाले वृत्तांत की अत्युक्ति को सिद्ध करने के लिये काफ़ी प्रमाण है। तथापि खाफ़ीखां इस वृत्तान्त को ठीक बताता है और यह भी लिखता है कि गर्भवती स्त्रियों तक के पेट काटे गये और उन के बच्चों के टुकड़े किये गये।

सरहिन्द में तीन दिन तक लूट होती रही। और चौथे दिन आज्ञा द्वारा बन्द करदी गयी। बाजसिंह* जो माभा के सिक्खों का सेनापति था सरहिन्द का शासक नियुक्त किया गया और मालवा के सिक्खों का नेता अलीसिंह उस का नायब नियुक्त किया गया।

फतेहसिंह समानाका शासक और बाजसिंह का भाई रामसिंह और बाबा विनोदसिंह दोनों थानेश्वर के शासक नियुक्त किये गये। सरहिन्द के समस्त २८ परगनों के मुसलमान हाकिमों के स्थान पर हिन्दुओं को नियुक्त किया गया और इस प्रकार सतलज और यमुना के बीच का बहुत सा देश सिक्खों के हाथों में चला गया।

अब बन्दा हिन्दू धर्म† का रक्षक समझा जाता था।

*बाजसिंह बाल जाति का जाट था और अमृतसर (१) के जिले मे मीरपुर पट्टी का रहनेवाला था। वह गुरु गोविन्दसिंह का शिष्य था और उनके साथ दक्षिण जा चुका था। यह उन सलाहकारों में से एक था जो गुरु गोविन्दसिंह ने बन्दा के साथ भेजे थे। यह बन्दाकी समस्त लड़ाइयों में बराबर अपने भाइयों रामसिंह शामसिंह और कुबेरसिंह समेत उसका साथ देता रहा और अन्त में सन् १७१६ ई० में यह बन्दा तथा अन्य सिक्खों के साथ देहली में कत्ल किया गया। मोहम्मदहासिम ने इस का नाम बाजसिंह लिखा है। देखो इबरतनामा २६ तारीख मोहम्मदशाही में इसका नाम वघारसिंह लिखा हुआ है।

†बन्दा को स्वयम् भी और हिन्दुओं को भी यह विश्वास था कि परमात्मा ने मुसलमानों को उनके पापों का दण्ड देने के लिये बन्दा को कालरूप में भेजा है। दुखिया हिन्दू सहायता के लिये बन्दा की शरण लेते थे और वह सदा बड़ी प्रसन्नता तथा योग्यता के साथ उनकी सहायता करता था। यही सिक्ख बल की उन्नति का एक बड़ा कारण था।

देवबन्द के हिन्दुओं की इस शिकायत पर कि जलालाबाद* का हाकिम जलालुद्दीन उन पर बड़ा अन्याय कर रहा था उसने पूर्व की ओर यात्रा की। सब से प्रथम बन्दा ने सहारनपुर† पर धावा किया। वहां का हाकिम अलीमुहम्मद नगर छोड़कर भाग गया और सिक्खों ने शहर को खूब लूटा। फिर बन्दा का ध्यान बेहेट‡ की ओर गया क्योंकि यहां के पीरज़ादे गोवध करने में कुछ विशेष हर्ष अनुभव करते थे। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस स्थान को भी खूब लूटा गया और जो वंश इस नगर का मालिक था उसका नाश कर दिया गया। जलालाबाद पहुंचने से पूर्व सिक्खों के मार्ग में जो जो ग्राम अथवा नगर आये उन सब को उन्होंने आधीन कर लिया। उनमें से मुख्य अंबेहटा और ननैता थे। ननैता की लड़ाई का वृत्तांत जफरद्दीन नामक एक पुरुष की डायरी में से जिसने इस लड़ाई को अपने नेत्रों से देखा था "कलकत्ता रिव्यू" (Calcutta Review||) नामक अंगरेज़ी पत्रिका में उद्धृत किया गया है। इस नगर के केवल एक भाग में तीन सौ शेखज़ादे मारे गये और वह स्थान सर्वथा नाश कर दिया

गोवध करने वालों को कोई भी ठिकाना नहीं छोड़ा जाता था और यह एक मात्र घटना समस्त हिन्दू जाति की सहानुभूति बन्दा की ओर करने के लिये पर्याप्त थी। उसके नवाचारों का उद्देश्य भी यह ही कहा जा सकता है।

*सहारनपुर से ३० मील परे। अब मुज़फ़रनगर के ज़िलेमें है।

†खाफ़ीख़ा ने इसे 'सारंगपुर' लिखा है।

‡सहारनपुर से १७ मील परे।

||Vol.LX.—डायरी केअनुसार लड़ाईकी तारीख़ ११ जुलाई १७१० ई० थी (देखो बन्दा बहादुर)

गया जिसके कारण वह आज दिनतक 'फूटा शहर'* कहलाता है। इसके पश्चात् बन्दा जलालाबाद पहुंचा और उस नगर को चारों ओर से जा घेरा। वहां के अफ़गान बड़ी वीरता के साथ लड़े और वर्षा ऋतु आरंभ होजाने तथा चारों ओर के ग्रामों के सर्वथा लुट चुकने के कारण बन्दा ने परिवेष्टन† को छोड़ दिया। बन्दा ने फिर करनाल को विजय किया और शनैः शनैः पानीपत तक‡ समस्त देश को अपने आधीन कर लिया।

सिक्ख लोग अब ठीक देहली के प्रान्त में पहुंच गये थे और उनकी लूट मार के समाचार प्रतिदिन चारों ओर से देहली पहुंच रहे थे। सरहिन्द से पानीपत तक अब सिक्खों का ही प्रधान अधिकार था और किसी रईस की भी यह हिम्मत न थी कि वह देहली से चलकर सिक्खों पर चढ़ाई करता। राजधानी का शासक निज़ामुलमुल्क आसिफुद्दौला असदख़ां§ बहुत ही भयभीत होगया, उसने बड़ी कायरता प्रकट की और नगर निवासी भी भयभीत हो अपने कुटुम्बों सहित पूर्वीय प्रान्तों की ओर आश्रय लेने के लिये भाग गये॥ ?

सम्राट देहली में न था। समस्त सेनापति और रईस बन्दा से डरते थे पानीपत से देहली तक की सड़क खुली

---

*बन्दा बहादुर।

† ख़ाफ़ीख़ां कहता है कि इसके पश्चात् बन्दा सुलतानपुर गया था।

‡ रिसाला ए नानकशाह।

§ उसने केवल सम्राट के पास भयोत्पादक पत्र भेजे। सम्राट उस समय राजपूतों को विजय करने गये हुए थे।

‖ इरादतख़ां जिसको कि लतीफ़ ने उद्धृत किया है।

पड़ी थी परन्तु किसी कारणवश सिक्खों ने आगे बढ़ने का साहस न किया* । संभव है कि वे सम्राट से डर गये हों, जो सिक्खों के आक्रमणों की रिपोर्टों से चौंककर शीघ्रता के साथ देहली लौट रहा था† । दक्षिण की विजय प्राप्त करने के पश्चात् सम्राट ने लौटते हुए दम लेने तक को राजधानी में प्रवेश न किया वरन उसने सिक्खों को दंड देने के लिये सीधी सरहिन्द की राहली । सम्राट की सेना के अग्र भाग की मुठ भेड़ जिसके सेनापति सिपहसालार महाबतख़ां और फ़ीरोज़ख़ां मेवाती§ थे बन्दा के नायब रामसिंह और बिनोदसिंह की सेनाओं के साथ थानेश्वर और तारावड़ी में हुई । १० नवम्बर सन् १७१० ई० को थानेश्वर और तारावड़ी के बीच शाही सड़क के ऊपर अमीनाबाद नामक ग्राम में एक संग्राम हुआ । इस संग्राम में सिक्ख हार गये और उनके अगणित आदमी मारे गये ।

---

*पंथ प्रकाश का लेखक ज्ञानसिंह सिक्खों के उस समय आलस्य द्वारा देहली पर आक्रमण न करने पर जब कि देहली सहजही विजय की जा सकती थी बहुत शोक प्रकट करता है ।

†देहली से असदख़ां ने तथा विविध वाक़ा नवीसों ने जैसे कि:—साजदीन दीवान बोतात हाफ़िज़ख़ां दीवान, हमनरिज़ा कोतवाल, बक़रुद्दीन बख़्शी मोहम्मद ताहिर और दरवेश मोहम्मद क़ाज़ी ने ये रिपोर्टें भेजी थीं । तारीख़-ए मोहम्मदशाही ।

‡हज़ारों मनुष्य जो बन्दाके हाथों कष्ट सहनकर चुके थे अजमेरमें सम्राट को अपनी दुःख भरी कथाएं सुनाने पहुंचे । "यदि बहादुरशाहने सन् १७१० में दक्षिण न छोड़ दिया होता तो संभव था कि इन निष्ठुर आक्रमण करने वालों ने समस्त हिन्दुस्तान विजय कर लिया होता । "मेलकोम

§ख़ाफ़ीख़ां के अनुसार मोहम्मद अमीनख़ां और रुस्तम दिलख़ां चूड़ामणि जाट के साथ सेनापति थे ।

जो घायल होगये थे तथा मर रहे थे उनको भी लड़ाई के अन्य क़ैदियों के साथ वृक्षों से उनकी चोटियां* बांधकर लटका दिया गया शाही सेना के पहुंचने से डरे हुए मुग़ल शासकों में फिर से साहस उत्पन्न होगया। जलंधर दोआब के शासक अथवा फ़ौजदार शमसख़ां ने जो एक लाख धर्मोन्मत्त योधाओं की सेना लेकर सिक्खों की सेना के एक भाग पर आ पड़ा था सुलतानपुर के समीप राहौन में उनको पराजय दी। (ख़ाफ़ी ख़ां)†।

---

*मोहम्मद क़ासिम—इबरत नामा और तारीख़ ए फ़र्रुख़सियर

†प्रो॰ खालसा दीवान की प्रकाशित की हुई "बन्दा बहादुर पुस्तक में लिखा है, कि बन्दा ने सरहिंद के पतन के पश्चात् स्वयम् किसी लड़ाई में भाग नहीं लिया। परन्तु इसके लिये जो प्रमाण दिये गये हैं वे प्रत्ययजनक नहीं हैं विशेषकर जब कि उस समय के अनेक लेखक बन्दा के कई लड़ाइयों में उपस्थित होने की गवाही देते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी संभव प्रतीत नहीं होता कि बन्दा करनाल को हाथ से जाते हुए देखकर भी शान्ति के साथ लोहगढ़ के दुर्ग में चैन से बैठा रहता। दूसरी ओर यह भी ठीक नहीं मालूम होता कि बन्दा महाबतखां अथवा फ़ीरोज़ख़ां जैसे मनुष्यों से अमीनगढ़ में अथवा शमसख़ां से राहौन में हार खाता। यह मान लेना अधिक युक्तिसिद्ध प्रतीत होता है कि दोनों स्थानों पर सिक्खों को अचानक आदबाया गया हो और बन्दा के ठीक समय पर पहुंचने से पूर्व ही उन्हें हरा दिया गया हो। सिक्खों को यह आशा नहीं थी कि सम्राट् इतने शीघ्र लौट आवेगा। वे स्थानीय हाकिमों को तुच्छ समझते थे क्योंकि उनमें से किसी ने भी अभीतक सिक्खों के सामना करने का साहस न किया था। इसलिये वे समस्त पंजाब में रावी तथा पहाड़ों तक तितर बितर पड़े हुए थे और छोटे छोटे दलों में लड़ने के कारण शाहीसेना से हार गये थे।

बन्दा लोहगढ़* के दुर्ग को चला गया जो साढौरा से कुछ मील दूर एक ढालू पहाड़ी पर बना हुआ है। दुर्ग को चारों ओर से शाही सेना ने घेर लिया जो स्वयम् सम्राट अपने चारो पुत्रों† सहित इस संग्राम में उपस्थित था। इस परिवेष्टन का निम्न लिखित वृत्तांत खां इरादत खां ने लिखा है जिसने कि समस्त लड़ाई स्वयम् देखी थी अत्यन्त मनोरञ्जक प्रतीत होगाः—

शाह आलम ने अपने उमराओं को यह आज्ञा दी थी कि, आप लोग किसी हेतुसे भी सिक्खों पर उनके दुर्गोंमें आक्रमण न करना। किन्तु अपनी शक्ति भर ऐसे ऐसे उपाय करना कि जिन से किसी चाल द्वारा सिक्ख लोग अपने दुर्गों से बाहर मैदान में निकल आवें। कई दिन तक दोनों ओर की सेनाएं निष्क्रिय पड़ी रहीं उसके पश्चात् खांने खांनां अपनी कुछ सेना सहित शत्रु के बल तथा स्थिति को जांचने के लिये आगे बढ़ा

---

*मुखलिसपुर का सिक्खनामा। इरादतखां, लतीफ और कई इसको दबेर का दुग लिखते है।

'मअसिरउल उमरा'(पृ० ५१५ जिल्द २) में इसको लोहगढ़ लिखा है। अब इस दुर्ग का कुछ पता नहीं चलता परन्तु दुर्ग के स्थान पर पहाड़ के ऊपर एक टीला है जिसके चारों ओर दो पहाड़ी नाले बहते हैं। दूसरा चिन्ह जो बचा हुआ है वह टीले की चोटी पर एक छोटा सा तालाब है जो शायद उस तालाब का अवशेष है जिससे दुर्ग की सेना को जल पहुंचाया जाता था। "बन्दा बहादुर"।

†इस कार्य में उसने औरंगजेब का अनुसरण किया जो अपने शासन के अंत के दिनों में काफ़िरों के प्रत्येक दुर्ग के परिवेष्टन में स्वयम् उपस्थित रहता था जिससे उसे धर्मयुद्ध में भाग लेने का माहात्म्य प्राप्त हो"—इरादतखां।

किन्तु, जब यह निशाने की ज़द में आगया तो शत्रु ने भी शाही सेनाओं पर गोले बरसाने आरंभ कर दिये और उन के बन्दूकची तथा तीरन्दाज़ों ने जो इधर उधर की कई पहाड़ियों पर पड़े हुए थे झटपट अपने प्राण नाशक संदेश भेजने आरम्भ कर दिये।

"शाही सेना अब रोके न रुक सकती थी। उन्हें आक्रमण करनेके लिये आगे बढ़ने की आज्ञा दी गयी ग्रांनेग्रांना स्वयम् अपने घोड़े से उतर कर पैदल अपनी सेनाको अत्यंत दुरारोह पहाड़ियों पर चढ़ा लेगया और वहां से उसने शत्रुओं को विकट संहार के साथ मार भगाया। शाही डेरों से यह दृश्य दिखायी पड़ता था। उसे देख सरदार तथा सिपाही दोनों यश लाभ करने की स्पर्धा से भर गये। उन्होंने आज्ञा दिये जाने की भी प्रतीक्षा नहीं की वरन् तुरंत बड़ी बड़ी संख्याओं में उस आक्रमण में साथ देने के लिये दौड़ पड़े। जब कि सम्राट तथा उसके चारों पुत्र जो उसके साथ आये थे बड़ी उत्सुकता के साथ इस समस्त दृश्य को देखते रहे। शाही सेना ने पूर्ण विजय प्राप्त की और दुर्ग के आस पास की चोटियों पर से शत्रुओं को मार भगाया। सिक्खों को अब बीच वाले दुर्ग में लौट आना पड़ा किन्तु वहाँ तक पहुंचने के मार्ग अत्यन्त संकुचित थे। पहुंचना अत्यन्त कठिन था और प्रतिरोध के साधन भी वहाँ उत्तम न थे। प्रतिरोधी जी तोड़ कर लड़े परन्तु यदि रात्रि के अंधेरे मे, जब कि मित्र और शत्रु में भेद नहीं किया जा सकता था उन को विश्राम करने का अवसर न दिया होता तो वे एक एक कर सब मार दिये जाते। पौ फटते ही युद्ध फिर आरंभ हो गया और थोड़ी सी लड़ाई के पश्चात् दुर्ग ले लिया गया। सिक्खों का नेता रात ही रात में

एक संकुचित मार्ग से भाग निकला जो दुर्ग से पहाड़ों की ओर जाता था और जो शत्रुओं के सेनापति की दृष्टि से बच गया था और भागकर हिमालय के अति भयंकर बरफ़ानी जंगलोंमें चला गया। गुरू (बन्दा) भेष बदलना खूब जानते थे और इस कार्यमें इतने दक्ष थे कि जब कभी वह चाहते तो उस के पक्के मित्र तक उस को नहीं पहिचान सकते थे*। जब वह यह चाहा करता था कि लोग उसे जान जावें तो वह राजाओं के समान अत्यन्त मूल्यवान तथा भड़कीले कपड़े पहिन कर निकला करता था। और जब उसे अपने आप को छिपाने की आवश्यकता होती थी तो वह अधिकतर जोगी अथवा सन्यासी के भेष में निकला करता था"†।

इस उद्देश्य से कि उसका पीछा किया जाने की संभावना ही न रहे बन्दाने अपने एक अनुरक्त सेवक गुलाबू ‡ की प्रार्थना अनुसार जिसका कि आकार रूप बन्दा से बहुत मिलता जुलता था उस सेवक को अपने स्थान पर छोड दिया और

---

*प्रतीत होता है कि भेष बदलने की क्रिया में वह ऐसा ही चतुर था जैसा कि स्वयम् शिवाजी था और शायद उससे भी अधिक क्योंकि उसके अनुयायियों तथा शत्रुओं दोनों का यह विचार था कि वह जादूगर था। और अपनी इच्छानुसार आकाश तक में उड़ सकता था इसलिये जब वह अंत को पकड़ा गया तो उसे एक मुगल सरदार के साथ बांध दिया गया और लोहे के पिंजड़े में डालकर देहली लेजाया गया।

†लतीफ़कृत इतिहास में इरादतख़ां के लेख का यह स्वतंत्र अनुवाद दिया हुआ है।

‡जब यह क़ैद करलिया गया तो सम्राट ने उसकी निःस्वार्थ भक्ति की बड़ी प्रशंसा की, परन्तु उसको जीता न छोड़ा। —ख़ाफ़ीख़ां।

यह आप दुर्ग से बच निकला*। खां खानां जो हर्ष से मग्न हो दुर्ग में आया और युद्ध के क़ैदियों में बन्दा को भी देख कर हर्ष से फूला न समाया। परन्तु उसका भ्रम शीघ्र ही दूर होगया जिसके कारण सम्राट को बड़ा नैराश्य तथा क्रोध हुआ और उसके परिणामरूप वृद्ध मंत्री[1] को अपमान सहन करना पड़ा।

बन्दा नाहन में जा छिपा और उसको पकड़ने के समस्त उपाय व्यर्थ सिद्ध हुये। इस विजय के पश्चात् सम्राट कुछ समय तक साढौरा में रहा और वहां की नीचली पहाड़ियों में मृगया खेलता रहा। सम्राट अभी इसी स्थान पर था कि बन्दा ने फिर पठानकोट में सिर उठाया। जम्मू का शासक बयाजीदखां तथा उसका भतीजा शम्सखां बन्दा से युद्ध करने के लिये आगे बढ़े, परन्तु पराजित हो दोनों; लड़ाई में मारे

---

* ऐसी शूरता पूर्ण स्वामिभक्ति के और उदाहरण केवल राजपूतों के इतिहासमें ही मिलते हैं। एक धायीने अपने पुत्रको पालकी में बैठाकर राना उदयसिंह की जान बचायी थी, तथा हल्दीघाटी की लड़ाई में झालावाड़ के राजा ने अपने आपको राना प्रकट कर प्रताप की जान बचायी थी। देखो टौड "राजस्थान"।

[1] यद्यपि वह बूढ़ा फिर से सम्राट का अनुग्रह पात्र बन गया था तथापि शोक के कारण उसका स्वास्थ्य बिगड़ चुका था और वह १७११ ई० की बसंत ऋतु में मर गया। तारीख़ ए मोहम्मदशाही।

[2] यह युद्ध लोहगढ़ के परिवेष्टन के ३ या ४ मास के पश्चात् सन् १७११ ई० की बसंत ऋतु में बहरामपुर (ज़िला गुरदासपुर) के समीप हुआ था। सैरुल मुताख़रीन में लिखा है कि बयाजीद सरहिन्द का शासक था और एक दिन जब वह अपने डेरे में नमाज़ पढ़ रहा था एक सिक्ख ने आकर उसे मार डाला [पृ० ४०२]

गये। इस पर सम्राट शीघ्रता के साथ लाहौर की ओर गया और मुहम्मद अमीनखां तथा रुस्तमेदिलखां को उसने इस सिक्ख नेता से युद्ध करने के लिये भेजा। परन्तु चतुर बन्दा फिर पहाड़ों की ओर भाग गया और शीघ्र ही इन शाही सेनापतियों की पहुंच से बाहर निकल गया। सम्राट्ने छै या सात मास शान्ति के साथ लाहौर में व्यतीत किये परन्तु फिर वह पागल होगया और सन् १७११ ई०* को फ़रवरी महीने में मर गया।

सम्राट के मरते ही जैसा कि उन दिनों प्रायः हुआ करता था राजसिंहासन के विविधि अभियोगियों में सिंहासन पर बैठने के लिये परस्पर युद्ध होने लगे। इन झगडों से सिक्खों को बड़ा लाभ पहुंचा। जहांदारशाह ने जो इस संक्षोभ में विजय का भागी हुआ थोड़े ही मास तक राज्य किया और उसने ज़बरदस्तखां को लाहौर का शासक नियुक्त किया। परन्तु दोनों शासन चलाने के अयोग्य थे। इस लिये फ़र्रुख़सियर ने जहांदारशाह को सिंहासन से उतार दिया और अब्दुलसमद दिलेरजंग को लाहौर का शासक नियुक्त किया†। सन् १७१२ तथा १७१३ में सिक्खों के लिये अत्यन्त हानिकारक हुए हज़ारों सिक्ख पकड़े गये और मार दिये गये और सन्

---

* उसने लाहौर के समस्त कुत्तों और गधों के मार डाले जाने की तथा समस्त साधुओं और फ़कीरों के वहां से निकाल दिये जाने की आज्ञा देदी थी।

† सैर में लिखा है कि अब्दुलसमद उस समय काश्मीर का शासक था जिस समय कि उसे बन्दा पर आक्रमण करने की आज्ञा मिली। इस आज्ञा के साथ ही उसके पुत्र ज़करियाखां को लाहौर का शासक नियुक्त करने की सनद भी भेजी गयी थी। (पृष्ठ ४०२)

१७१४ में एक बड़ा भयंकर दुष्काल पड़ा। सन् १७१५में बन्दा फिर पहाड़ों से उतर आया और बटाला तथा कलानौर के आस पास के देश पर उसने धावा किया।

लाहौर का नया शासक तथा मुहम्मद अमीनखाँ तुरन्त उसके पीछे भेजे गये परन्तु वह फिर भाग कर पहाड़ों में जा छिपा और शाही सेनाओं से बच गया। इसके पश्चात् लगभग डेढ़ वर्ष शान्ति से व्यतीत हो गया। परन्तु सन् १७१६ के आरम्भ में ही बन्दा फिर अकस्मात् कलानौर और बटाला के ऊपर आ गिरा क्योंकि ये नगर इससे पहिली बार उसको लूटमार से बच गये थे। बन्दा ने अब इन दोनों नगरों को खूब लूटा और अगणित मुसलमानों को मार डाला। जिनमें शेखुलअहमद का प्रसिद्ध कुटुम्ब भी था।

सम्राट फर्रुखसियर इन नवीन आपत्तियों का समाचार सुनकर बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने लाहौर के नाज़िम को बन्दा का बल नष्ट कर देने की दृढ़ आज्ञा भेजी। इस आज्ञानुसार अब्दुलसमद चुने हुए योधाओं की एक भारी सेना तथा एक प्रबल तोप खाना लेकर बन्दा का पीछा करने के लिये निकल पड़ा।†

बन्दा को कलानौर के समीप कोट मिरज़ाजान पर पराजय दीगई। उसे एक स्थान से दूसरे स्थान को भागना पड़ा, परन्तु वह हर स्थान पर बड़ी वीरता से लड़ता रहा और

*ज़िला गुरदास पुर में है। अकबर का इसही नगरमें ताजपोशी हुई थी।

†अमीनाबाद, पसरूर, पट्टी तथा कलानौर के हाकिमों और कटोच के राजा भीमसिंह और जसरौटा के ध्रुवदेव ने अब्दुल समद की सहायता दी इबारतनामा (मुहम्मद क़ासिम) ५२

अपने विजेताओं के अनेकानेक सैनिकों का संहार करता गया। अन्त को उसे गुरुदासपुर के दुर्ग में शरण लेनी पड़ी।* उसको वहाँ चारों ओर से घेर लिया गया, जिससे कि कोई वस्तु बाहर से उसके पास नहीं पहुंच सकती थी। इसलिये बन्दा के पास जब भोजन की समस्त सामग्री समाप्त होगयी तो उसे घोड़े, गधे और बैल तक का निषिद्ध मांस खाना पड़ा, परन्तु जब ये पशु भी समाप्त हो गये तब उसे शत्रु की आधीनता स्वीकार करनी पड़ी।† अनेक सिक्खों को मार

---

* कनिंघम लिखता है कि यह दुर्ग सिक्खों ने १७१२-१३ में बनवाया था जब कि फर्रुखसीयर और जहांदारशाह मे परस्पर युद्ध होरहा था। फ्रौस्टर और मैलकौम गलती से इसे लोहगढ़ का दुर्ग बताते है और इस प्रकार उसे मुख़लिसपुर के साथ मिला देते है जिसको सैरुलमुताख़रीन में 'लोहगड' लिखा है। 'बन्दा बहादुर में इस दुर्ग का कहीं वर्णन नहीं मिलता सिवाय इसके कि इसको भाई दुनीचन्द की 'हवेली समझ लिया जावे, जहां पर कि लिखा है कि बन्दा जा छिपा था और वहा से ही वह पकडा गया था यह भी लिखा है कि बन्दा कोट मिरज़ा जान में एक दुर्ग बनवाना चाहता था परन्तु वह आधा भी नहीं बनने पाया था जिस समय कि मुगल सेना ने उसे आघेरा। यह वृत्तांत ठीक प्रतीत होता है क्योंकि मुहम्मद क़ासिम ने भी ऐसा ही लिखा है। देखो उसका इबारतनामा ५१

† बुद्धसिंह के रिसालये नानकशाह में लिखा है कि बन्दा जब बहुत तङ्ग आगया तो खड्ग हाथ में लिये अपने अनुयायियों समेत दुर्ग से बाहर निकल आया और लड़ता हुआ पकड़ा गया। क़ासिम के अनुसार बन्दा की सेना १०,००० थी जिसमे से ख़ाफ़ीख़ां के अनुसार ८००० भूक से मर चुकी थी। ख़ाफ़ीख़ां ने बैल का मांस खाने की बात निसन्देह पक्षपात से लिखी होगी। इसके अतिरिक्त यदि यह बात सच भी मान ली जावे तो इसके यह अर्थ नहीं निकलते कि बन्दा ने स्वयम् अथवा उसके हिन्दू अनुयायियों में से किसी ने भी इस निषिद्ध मांस को खाया था। बन्दा के साथ दुर्ग मे सैकड़ों भंगी तथा अन्य नीच जाति के लोग किंकर आदिक रहे होंगे और केवल उनको

दिया गया और जिस समय बन्दा आदिक को इस प्रकार की ऐसी दुर्गति तथा अपमान के साथ देहली ले जा रहे थे जैसी कि पक्षपाती, जंगली तथा अर्धसभ्य विजयिताओं में प्रायः प्रचलित हैं उस समय उनके आगे उन मारे हुए सिक्खों के शिरों को भालों पर लटकाकर लेजाया गया।* मुसलमान सेना बन्दा को एक बड़ा जादूगर समझती तथा उससे डरती थी और इस विचार से कि कहीं यह उड़ न जावे उन्होंने उस को एक लोहे के पिंजरे में बन्द कर एक ज़ंजीर द्वारा उसे एक मुग़ल अफ़सर के साथ बांध दिया था जिसको यह आज्ञा थी कि यदि बन्दा उड़ने का प्रयत्न करे तो उसके तुरन्त अपनी तलवार भोंप देना। † बन्दा ७४० अनुयायियों समेत देहली लाया गया, इन सब के हथकड़ियां और बेड़ियां पड़ी हुई थीं *और उनके आगे २,००० सिक्खों के शिर भालों पर लटक रहे थे।*‡

"उनकी चेष्टाओं को घृणा उत्पन्न करने वाली तथा हास्योत्पादक बना देने के लिये उनको जबरदस्ती भेड़ों की खालें पहनायी गयीं और गधों और ऊंटों पर चढ़ाकर उनको नगर

भूखे मरने से बचाने के लिये बन्दा ने उनके कुछ बैलों को मार डालने पर विरोध न किया होगा।

*कनिंघम ने 'सैर' के अनुसार यह बात लिखी है। पृ० ४०३।

†सैरमुतागरीन ने भी यह बात लिखी है। रूसी राजद्रोही पुगाट चेफ नामक को भी जब वह सन् १७७४ में पकड़ा गया था तो लोहे के पिंजरे में बन्द किया गया था।

‡ Wheeler's Early Records of British India पृ० १८० में लिखा है कि क़ैदियों की संख्या ७८० थी।

के समस्त बाज़ारों तथा ऐसे स्थानों में फिराया गया जहां पर कि बहुत लोग चलते फिरते थे। बन्दा का काला मुंह कर और एक ऊनी टोपी पहना, उसे हाथी पर बैठाया गया और एक जल्लाद खड्ग हाथ में लिये उसके शिर पर खड़ा किया गया। बन्दा को उन सब का नेता बनाकर आगे आगे उनके झूठे नेता के समान चलाया गया* "प्रतिदिन उनमें से १०० के शिर जनसमूह के सन्मुख काटे जाते थे यहाँ तक कि बन्दा के अतिरिक्त शेष सब मारडाले गये। "उन्होंने पूर्ण उदासीनताके साथ अपने भाग्यका सामना किया यही नहीं वरन् उनमें से प्रत्येक इस बात पर आग्रह करता था कि धर्म के नाम पर सब से पहिले बलि चढ़ने का सौभाग्य मुझे ही प्राप्त हो। आठवें दिन स्वयम् बन्दा को न्यायाधीशों के सन्मुख लाया गया।" उसको पहिले एक जंगली पशु के समान, पिंजड़े में से घसीट कर निकाला गया फिर उसे ज़रबफ्त (सुनहरी काम वाले) के राजकीय वस्त्र और एक लाल पगड़ी पहिनायी गयी और उसके जो अनुयायी कि उससे पहिले मारे जा चुके थे उनके शिर भालों पर लटका कर उसके चारों ओर खड़े किये गये। जल्लाद नंगी खड्ग हाथ में लिये न्यायाधीशों की आज्ञा पालन करने के लिये बन्दा के पीछे तय्यार खड़ा था। दरबार के समस्त उमराओं ने उससे ताने के साथ पूछा कि तुमने ऐसे ज्ञानवान तथा योग्य पुरुष

---

*लतीफ

†लतीफ़, मैलकोम, कनिंघम, खाफ़ीखान, सैर इत्यादि। ईस्ट इण्डिया कंपनी के कुछ गुमाश्ते इस समय देहलीमें थे और उन्होंने स्वयम् अपनी आंखों से यह सब बातें देखीं। देखो Wheeler's Early records of British India, page 180.

होते हुए भी ऐसे घोर अपराध क्यों किये। उसने उलटकर उत्तर दिया कि मैं ईश्वरके हाथों में दुष्टों को दंड देने के लिये कालरूप था परन्तु अब मुझको मेरे अपराधों का दंड देने के लिये दूसरों के हाथों में शक्ति देदी गयी है। अब बन्दा का पुत्र उसकी गोदमें दिया गया और बन्दाको यह आज्ञा दी गई कि तुम अपने हाथ से इस बालक का गला काटो और इस कार्य्य के लिये उसे छुरी दी गई* बन्दाने पूर्ण शान्ति केसाथ तथा बिना चित की कोमलता प्रकट किये ऐसा ही किया, इसके पश्चात् उसके अपने शरीर का मांस लाल तपाये हुये लोहे से काटा गया यहां तक कि इनकी पीडाओं में उसने प्राण त्याग किये" †

*लतीफ्। कई लेखक यह कहते हैं कि उसके पुत्र को मार कर उसका मांस बन्दा के मुख पर फेंका गया।

†कनिंघम। परन्तु "बन्दा बहादुर में लिखा है कि इतनी पीडाएं देनेके पश्चात् बन्दा को एक हाथी के पीछे बांध कर घसीटा गया और फिर यमुना के किनारे तक लेजाया गया जहां उसको मृत समझकर डाल दिया गया ताकि भेडिये और गीदड उसको फाड़ खावें। परन्तु एक फकीर उसमें कुछ जीवन के चिन्ह देखकर उसको उठा लेगया और ज तक कि उसके सब घाव अच्छे न होगये उसकी दवा दारू करता रहा। इस पश्चात् बन्दा भेष बदलकर पंजाब भाग गया। किन्तु इतने समय में अ दशा कुछ की कुछ हो गयी थी। सिक्ख समाज दो दलों में बट चु थी जो एक दूसरे के विरुद्ध थे। इनमें से एक दल स्वयम् बन्दाको मानता था और दूसरा जो 'तत्व खालसा' कहलाता था गुरू गोविन्द जी को अन्तिम गुरू मानता था। अब्दुलसमद के क्रियात्मक अभियो सिक्खों के हृदयों में त्रास उत्पन्न कर दिया था और उनको पहाड़ों भटिण्डे और बीकानेर के जंगलों तथा रेगिस्तानों में भगा दिया। समय उनको किसी प्रकार से भी संघटित करना असंभव

बन्दा के नेतृत्वमें सिक्खों की उन्नति ।

इसमें कोई संदेह नहीं कि वह पुरुष जिसने सिक्खों के

होता था। बन्दा जम्मू के पहाड़ों में भम्भड़ नामक स्थान पर एक साधू के रूप में रहने लगा। जिस समय उसको इतनी पीड़ा दी गयी थी और उसके पुत्र के उसकी आंखों के सामने टुकड़े किये गये थे उस समय बन्दा की पहिली स्त्री उसके पास थी, कहा जाता है कि उसको बलात मुसलमान बनाकर जबरदस्ती हज करने के लिये मक्के भेज दिया गया। बन्दा ने फिर विवाह कर लिया और उससे उसके एक पुत्र जिसका नाम रणजीतसिंह था सन् १७२८ में उत्पन्न हुआ बन्दा १४ ज्येष्ठ सम्वत् १७९८ को अर्थात् मई सन् १७४१ ई० में मर गया उसकी समाधि भम्भड़से २ वा ३ मील दूर बनी हुई है। इस स्थान पर प्रतिवर्ष एक मेला होता है जिसमें समस्त पंजाब में सहस्त्रों सिक्ख जो आजतक बन्दा की सन्तान को अपना गुरू मानते हैं एकत्रित होते हैं उस गद्दी का वर्तमान (सितम्बर १६०७) अधिकारी 'तेजसिंह' है। बन्दा के कुटुम्ब का वृक्ष (वंशावलि) इस प्रकार है :—
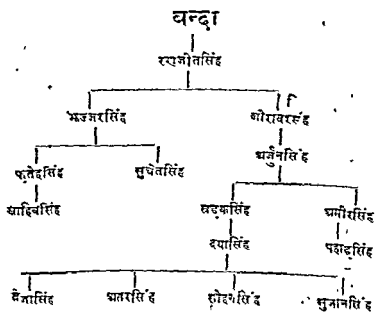
चरित्र में इतना परिवर्त्तन उत्पन्न कर दिया तथा उनमें एक नया जीवन फूंक दिया गुरु गोविन्दसिंह ही था। परन्तु यह बात भी बिना विरोध की शंका के कही जा सकती है कि वह पुरुष बन्दा ही था जिसने सब से पहिले सिक्खों को लड़ना तथा विजय प्राप्त करना सिखलाया। बिना नाम मात्र भी दशवें गुरू की असाधारण बुद्धिमत्ता तथा सांग्रामिक योग्यता का अपमान किये यह बात जतलाई जा सकती है कि उनकी उद्योगिता अधिकतर पहाड़ी रियासतों के छोटे छोटे राजाओं के साथ कभी कभी युद्ध कर लेने तक ही परिमित थी और पहिली बार ही शाही सेना का सामना करने से जो उन्हें धक्का लगा उसको वे सहन न कर सके। बिना किसी अवज्ञा के हम यह कह सकते हैं कि उनके संग्राम सिक्खों के उस महान् नाटक के केवल पूर्वाभिनय मात्र ही थे जोकि सिक्खों को बन्दा के नेतृत्व में खेलना था। निस्सन्देह उस नाटक की वस्तु रचना गुरु गोविन्दसिंह की ही कल्पनाशक्ति का फल थी। समस्त अभिनेता भी गुरू ही के तय्यार किये हुए तथा उन ही के सिखाये हुए थे परन्तु वह मनुष्य जिसने अभिनेताओं को सामने ला उस नाटक को मानों भरी सभा के सन्मुख खिलवाकर दिखाया बन्दा ही था। जब कि एक ओर गुरू की विजय पताका थोड़े समय के लिये भी पहाड़ों की सीमा से

गद्दी के वर्तमान अधिकारी अथवा उसके किसी भाई के भी सन्तान नहीं है। मैल्कौम ने अपना इतिहास एक शताब्दी से अधिक हुए लिखा था। वह ऊपर के वृत्तान्त का वर्णन करता है और भभ्भड़ का भी नाम देता है पर जहां देहली से भागकर बन्दा रहने लगा था। यह वृत्तान्त पंथ प्रकाश में भी दिया हुआ है। तथापि मुझे कहना पड़ता है कि यह वृत्तांत उस समय तक संदिग्ध ही प्रतीत होता है जिस समय तक कि हम यह न मान लेवें कि बन्दा गुरुदासपुर से दूसरी बार भाग गया था और कभी देहली ले जाया ही नहीं गया।

अधिक आगे तक नहीं लहरायी दूसरी ओर एक बार वास्तव में लाहौर से पानीपत तक का समस्त देश बन्दा के आधीन था।* उसकी बड़ी बड़ी विजयों द्वारा सिक्खमत की प्रतिष्ठा तथा शक्ति इतनी बढ़ गयी जितनी कि पहिले कभी भी देखने में न आयी थी। जिन्होंने कभी गुरुओं के नाम भी नहीं सुने थे वे भी बन्दा की विजयों द्वारा सिक्खमत का महत्त्व देखकर चकित होगये और सहस्रों की संख्या में उसकी सेना में आ मिले। उसकी व्यक्तिगत आकर्षणशक्ति भी बढ़ी हुई थी तथा उसकी निर्भय साहसिकता और असामान्य धीरता ने उसके अनुयायियों को उसके परम भक्त बना दिया था। इस बात का कारण कि उन सहस्रों सिक्खों में से जो मुग़लों के हाथों पकड़े गये तथा मार दिये गये एक† ने भी अपनी जान बचाने के लिये निज धर्म्म को नहीं छोड़ा केवल बन्दा के पूर्वाधिकारी का दिया हुआ प्रोत्साहन ही न था वरन् स्वयम् बन्दा का उच्च चरित्र तथा उसकी आदर्श धार्मिकता भी इसके कारण थे। गुरू गोविन्दसिंह ने अपने अनुयायियों का ध्यान हल से हटा कर खड्ग की ओर करा दिया था और न्याय तथा धर्म के प्रतिपादन के लिये यदि और कोई उपाय न चल सके तो युद्ध करने तथा रक्त बहाने की अनुज्ञा दे दी थी। गुरू ने बीज बो दिया था और बन्दा ने फसल काटी। गुरू ने सिद्धान्त (मूलतत्त्व) बता दिये थे बन्दा ने उनके अनुसार कार्य कर दिखाया। गुरू गोविन्दसिंह ने मुग़लों के स्वेच्छाशासन से

* बन्दा की भेजी हुई सिक्खों की टोलियों ने लाहौर के शालामार बाग तक समस्त देश को लूट डाना था। ख़ाफ़ीख़ान।

† वह गुलाबू जिसने बन्दा के स्थान पर अपने आपको पकड़वा कर बन्दा की जान बचायी थी पहिले मुग़लों की उस सेना में एक तम्बाकू वाला था जिसने १७१० में लोहगढ़ पर आक्रमण किया था।—ख़ाफ़ीख़ान।

उत्पन्न हुए भय को लोगों के हृदयों से मिटा दिया था बन्दा ने मुग़लों की दुर्जयता के जादू को सर्वथा विध्वंस कर दिया।

शताब्दियों की आधीनता के पश्चात् बन्दा के नेतृत्व में हिन्दुओं को यह पता लग गया कि उनमें अभी तक युद्ध करने तथा विजय प्राप्त करने की शक्ति शेष थी और जब बन्दा का पतन हुआ उस समय ख़ालसा प्रभुत्व के स्वप्न जो गुरु गोबिन्दसिंह के उत्पन्न किये हुए थे पहिले की अपेक्षा प्रत्यक्ष किये जाने के कहीं अधिक निकट आचुके थे। फिर भी बन्दा को सफलता प्राप्त नहीं हुई। उसकी असफलता के कारण इस प्रकार गिनाये जा सकते हैं:—

(१) फ़र्रुख़सियर का प्रबल शासन।

प्रबल शासकों के सामने विप्लवकारी शिर नहीं उठा सकते नेपोलियन कहा करता था कि यदि सोलहवां लूई फ्रांसीसी जनविप्लव के पहिले ही दिन दो तीन सौ मनुष्यों को मरवा डालता तो प्रसिद्ध फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति जैसी घटना कभी भी देखने में न आती।

प्रतीत होता है कि फर्रुख़सियर "मारो मारो और फिर मारो" के सिद्धान्त में विश्वास रखता था। राजपूतों के साथ संधि कर लेने से फर्रुख़सियर को अपने प्रधान शासन के पुष्ट करने का समय मिल गया था, और प्रधान शासन की प्रबलता द्वारा प्रान्तों के शासन को भी पुष्टि हुई आलसी विषयी तथा कायर नाज़िमों को भी सम्राट् की उद्योगिता का साथ देने के लिये सावधान तथा फुरतीला होना पड़ा। कम से कम अब्दुलसमद ख़ाँ को जो १७१४ से १७२६ ई० तक लाहौर का शासक रहा ठीक यह ही दशा थी। उसके पूर्वोपायों तथा प्रबल शासन ने बन्दा के बल को दबा दिया तथा उसकी

आकांक्षाओं को सदा के लिये रोक दिया।

(२) बन्दा के सफलता प्राप्त न करने का दूसरा कारण निस्सन्देह उसका अपना व्यवहार था। और कुछ भी हो उसने कभी विधि पूर्वक सिक्खमत की दीक्षा नहीं ली थी। और अपने ही परिमित मण्डल में वह आध्यात्मिक नेतृत्व के आनन्द को चख चुका था। उसने कभी सिक्खमत के उन अन्तर्गत भावों में प्रवेश ही नहीं किया जो गुरू गोविन्दसिंह के उत्पन्न किये हुए थे। उसने सिक्खमत के गुरूडम के भाव को तो ग्रहण कर लिया था परन्तु प्रतीत होता है कि उसने इस बात का पूरी तरह नहीं समझा था कि गुरू गोविन्दसिंह ने उस मत का एक भिन्न व्यक्तिता प्रदान करदी थी और इस पृथक व्यक्तिता को नष्ट करने के जो भी प्रयत्न किये जावेंगे वे अन्यथा चाहे कैसे ही प्रशंसनीय हों किन्तु सफल न होंगे। बन्दा ने सिक्खमत में हस्तक्षेप कर उसके स्वरूप को इस प्रकार बदल देने का प्रयत्न किया कि जिससे वह मत कम सांप्रदायिक तथा अधिक राष्ट्रीय प्रतीत हो उसके उपदेशों के अन्तर्गत भाव ने तथा गारत्ता ने जो कि बन्दा के उद्देश्य का एक मुख्य स्वरूप बनी हुई थी हिन्दुओं को उसके झंडे तले एकत्रित कर दिया था। फिर भी सिक्खमत में कुछ न कुछ विदेशीयपन अथवा ऊपरीपन सा प्रतीत होता था जिससे कि बन्दा के विचार में वह मत समस्त हिन्दू जाति को उभारने के लिये पूर्ण रीति से लाभदायक नहीं होसकता था। इसलिये बन्दा ने सिक्खमत की कई विशेष संस्थाओं को बदल कर उसके स्वरूप को अधिक स्पष्ट हिन्दू स्वरूप बना देने का प्रयत्न किया।(१) लम्बे केश जो सिक्खमत के मध्य से मुख्य चिह्न थे और जो गुरू गोविन्दसिंह के समय में अत्यंत आवश्यक समझे

जाते थे बन्दा के समय में सिक्खमत के आवश्यक अंग . नहीं समझे गये (२) गुरू गोविन्दसिंह सिक्खों को मांस खाने के लिये उत्तेजना दिया करते थे, परन्तु बन्दा वैष्णव था इस लिये वह इसके विरुद्ध था और सिक्खों को मांस छोड़ देने का उपदेश दिया करता था। (३) उसने "वाह गुरु जी का खालसा, वाह गुरूजी की फ़तह" इन शब्दों को पलट कर उनके स्थान पर "फ़तेह धर्म फ़तेह दर्शन" ये शब्द रख दिये। यह वास्तव में एक बड़ा गम्भीर परिवर्त्तन था। और (४) बन्दा सिक्खमत के प्रजातांत्रिक भाव को भी सपूर्णता के साथ नहीं समझता था। गुरू गोविन्दसिंह ने बन्दा को जो चार मुख्य आज्ञाएं दी थीं उनमें से एक यह थी कि वह सदा खालसा के सामाजिक शरीर में ईश्वर को देखे और कभी खालसा की सम्मति बिना कोई कार्य न करे। आरम्भ में बन्दा इस आज्ञा का पालन करता रहा परन्तु पीछे से उसकी विजयों ने उसको खालसा की सम्मति प्राप्त कर लेने की ओर से उदासीन बना दिया। 'पंथ प्रकाश' में लिखा है कि सामयिक सरकार ने गुरू गोविन्दसिंह की विधवा को अपनी ओर कर उससे बन्दा के नाम यह पत्र लिखवा दिया कि तुम सरकार की आधीनता स्वीकार कर लो और लड़ना छोड़ दो।" बन्दा ने उस पत्र की आज्ञापालन करने से इनकार कर दिया। इसपर उस महिला ने एक घोषणापत्र समस्त सच्चे सिक्खों के नाम प्रकाशित किया और उसमें सिक्खों को यह आज्ञा दी कि वे इस धृष्ट नये मार्ग के प्रवर्तक से कोई सम्बन्ध न रक्खें। कहते हैं कि इससे ही बन्दा के अनुयायियों तथा तत्त्व खालसाओं के बीच भेद उत्पन्न होगया।*

*श्रीयुत खालसा दीवान का "बन्दा बहादुर" इस वृत्तान्त को झूठा बताता है।

"पंथ प्रकाश में यह भी लिखा है कि फर्रुखसियर अथवा उसके लाहौर निवासी प्रतिनिधि के कई सामोपचारों द्वारा भी सिक्ख अधिक बलहीन होगये थे। ५०० सिक्खों को जो बन्दा से असन्तुष्ट होगये थे १) रु० रोज़ पर सरकारी नौकरी में ले लिया गया और शेष को अमृतसर के समीप "झब्बल नामक स्थान देकर शांत कर दिया गया था, इस स्थान से अमृतसर के दरबार साहब की आय में ५०००) रु० वार्षिक की वृद्धि होगई। इस संधि के नियम ये थे।

(१) खालसा देश में लूट मार नहीं करेंगे।

(२) खालसा बन्दा को सहायता नहीं देंगे।

(३) यदि कोई विदेशी आकर आक्रमण करेगा तो खालसा को सम्राट की ओर से लड़ना होगा।

(४) खालसा की जागीर अथवा उनके वेतन में कोई कमी नहीं की जावेगी।

(५) किसी हिन्दू को उसकी सम्मति के विरुद्ध मुसलमान नहीं किया जावेगा और न हिन्दुओं का कोई पवित्र स्थान गिराया जावेगा या अपवित्र किया जावेगा

(६) हिन्दुओं से कठोरता का व्यवहार नहीं किया जावेगा तथा उनके धार्मिक भावों का आदर किया जावेगा।

इन समस्त घटनाओं ने मिलकर तत्त खालसा को बन्दा से पृथक कर दिया और इन दोनों में एक बार विरोध उत्पन्न होकर वह विरोध फिर कभी शान्त नहीं हुआ। बहुत श्रद्धालु सिक्ख बन्दा की सेना से निकल आए और उनके एक बड़े नेता भाई बिनोदसिंह तेहून ने बन्दा का उस समय साथ छोड़ा जब कि वह गुरदास पुर के दुर्ग में अत्यन्त कष्ट सहन कर रहा था। वास्तव में सरहिन्द की विजय के पश्चात् सिक्खों

ने बन्दा का कभी भी पूर्व के समान सर्वात्मना सहायता नहीं दी। इस प्रकार बन्दा का वह चरित्र जिसमें आरम्भके दिनोंमें यश गौरव तथा पूर्ण सफलता प्राप्त होनेकी स्पष्ट आशा दिखाई देती थी उसकी गुरु बनने की आकांक्षा उसके सिक्खमत के वास्तविक स्वरूप को न समझने और मुगल सरकार की चालों के कारण तथा उस कायरता आदिक के कारण जो कुछ समय के लिये फर्रुखसियर की दमननीति ने सिक्खों में उत्पन्न कर दी थी शीघ्र ही में टूट गया।

अध्याय १२

सिक्खों का अल्पकालिक निग्रह

(१७१६—१७३८)

बन्दा के पतन के समय से लेकर सन् १७६८ ई० में सिक्खों के स्थायीरूप में लाहौर को अपने आधीन कर लेने के समय तक का सिक्खमत का इतिहास एक अत्यन्त विचित्र इतिहास है। यह कथा मुग़लों के घटते हुए बल तथा ख़ालसा के बढ़ते हुए राज्य के बीच जीवन तथा मरण के सग्रामों की कथा है। और सिक्ख इतिहास के इस भाग की हारजीत की कथाएं किसी भी दूसरी जाति के प्रभुत्व लाभ करने के प्रयत्नों के इतिहास से मनोरञ्जकता में कहीं अधिक बढ़कर है।

लगभग इस ५० वर्ष के समय को हम पांच भागों में बांट सकते हैं। प्रत्येक भाग लगभग दश वर्ष का है और प्रत्येक में ही ख़ालसा ने कुछ न कुछ विशेष उन्नति लाभ की। ये भाग इस प्रकार आरंभ तथा अन्त होते हैं:—

(१) १७१६—१७२४ ई०
(२) १७२५—१७३८ ई०
(३) १७३८—१७४८ ई०
(४) १७४८—१७५८ ई०
(५) १७५८—१७६८ ई०

बन्दा की पराजय तथा उसकी सेना के नष्ट होजाने के पश्चात् प्रतिकार तथा प्रतिरोध का समय आया जिससे कुछ समय के लिये सिक्खबल को अत्यन्त बाधा पहुंची। एक

और सिक्खों में परस्पर विरोध* जारी था दूसरी और बाहर से वे इतनी क्रूरता के साथ दबाये गये कि एक समय तो ऐसा प्रतीत होता था कि मानों फर्रुखसियर का गर्व कि "मैं इन काफ़िरों को समूल नष्ट कर डालूंगा" अक्षरशः पूरा होगा।

प्रतिदिन सैकड़ों सिक्ख मुग़ल शासकों के पक्षपात तथा धर्मोन्माद की भेंट होते थे और सहस्त्रों ही जो केवल लूट मार की लालसा से सिक्खों में आमिले थे अपने केश कटवाकर दाढ़िये मुंडवा कर फिर से हिन्दुओं में जा मिले। जो सच्चे सिक्ख थे वे जंगलों पहाड़ों तथा राजपूताने और बीकानेर के रेगिस्तानों में भाग गये। उनके शिरों पर मूल्य लगाये गये और जब कभी उनमेंसे कोई पकड़ा जाता था अथवा विश्वास घात द्वारा उसका पता लग जाता था तो उस पर तनिक मात्र भी दया नहीं की जाती थी। जब किसी माता से यह प्रश्न किया जाता था कि तुम्हारे कै बालक हैं तो वह बहुधा यही उत्तर देती थी कि मेरे चार बालक थे किन्तु उनमें से एक सिक्ख होगया है, सिक्ख हो जाने का यह अर्थ था कि

*बन्दा की बढ़ौती के समय में उसके अनुयायियों ने अमृतसर के गुरू द्वारे पर अपना अधिकार जमा लिया था और उसकी समस्त आय को हस्तगत कर लिया था। ऊपर लिखे हुए विरोध के कारणों के साथ मिलकर इस कारण ने दोनों दलों को एक दूसरे का पूर्ण शत्रु बना दिया १७२५ में ख़ालसा और बन्दा के अनुयायियों में विरोध यहां तक बढ़ गया था कि खुल्लम खुल्ला युद्ध करने की नौबत आपहुंची। और केवल भाई मणिसिंह के शुभ प्रयत्नों द्वारा ही परस्पर का युद्ध तथा रक्त प्रवाह रुक सके। पांसा फेंका गया और इस भाग्य परीक्षा में पासा ख़ालसा के पक्ष में पड़ा। इसलिये गुरू द्वारा फिर इनको मिल गया और बन्दा के

वह एक प्रकार मर चुका है। जो लोग शासकों के निर्दय हाथों से बच निकले थे वे अपना मुख तक दिखाने का साहस न कर सकते थे तथा अत्यन्त कष्टों में अपने दिन व्यतीत करते थे। वे केवल कन्द मूल फल तथा वनस्पति खाकर ही जीवन निर्वाह करते थे और इन वस्तुओं को भी वे अपने लिये बड़े विशिष्ट भोजन समझते थे। उन्होंने अपनी स्त्रियों और बालकों को मुगलों की दया पर छोड़ दिया था और स्त्रियों तक का बन्दी किया जाना उन्हें कष्ट दिया जाना तथा मार डाला जाना भी उन दिनों कोई असामान्य घटना न थी।*

अनुयायी वहां से निकाल दिये गये। यह घटना अवनति के समयमें हुई थी और इससे गुरु गोविन्दसिंहके अनुयायियोंकी निर्बल अवस्था का एक और प्रमाण मिलता है क्योंकि यदि ऐसा न होता तो जिस मन्दिर को रखने का उनको वास्तविक अधिकार था उसका निर्णय वे केवल एक पांसे के चित पट पड़नेपर न छोड़ते।

*एक समय सम्राट मोहम्मदशाह ने अपने दरबारी भांडों से यह इच्छा प्रकट की कि तुम मुझे एक ऐसी नकल कर के दिखाओ जिससे मैं निर्वासित सिक्खों की अवस्था का अनुमान कर सकूं। यह नकल पंथ प्रकाशमें दी हुई है और उससे पता लगता है कि बिना घर तथा बे ठिकाने भ्रमण करने के दिनों में सिक्ख लोग अपने मनों को किस प्रकार आश्वासित करते थे। वे बड़े सन्तुष्ट रहते थे और प्याज़, भुने हुए दाने तथा बिना लून की सबजी जैसे पदार्थो के उन्होंने बड़े बड़े प्रीतिकर नाम रख रखते थे। वे भंग पीते थे और जब उसकी छानस का गोला निकाल कर फेंकते थे तो कहते थे कि यह तोपका गोला है जो मुगलों के हृदयों को छेदता हुआ निकलेगा। वे अपना समय ऐसे गाने गाकर व्यतीत करते थे:-

"सुन्दरी मुगलों की माता तेरे जामा सिंह आते हैं,,।

"सुन्दरी मुगलों बहन की तेरे गहने सिंह ले जाएंगे,, इत्यादि।

और सिक्खों में परस्पर विरोध* जारी था दूसरी ओर बाहर से वे इतनी क्रूरता के साथ दबाये गये कि एक समय तो ऐसा प्रतीत होता था कि मानों फर्रुखसियर का गर्व कि "मैं इन काफ़िरों को समूल नष्ट कर डालूंगा" अक्षरशः पूरा होगा।

प्रतिदिन सैकड़ों सिक्ख मुग़ल शासकों के पक्षपात तथा धर्मोन्माद की भेंट होते थे और सहस्त्रों ही जो केवल लूट मार की लालसा से सिक्खों में आमिले थे अपने केश कटवाकर डाढ़िये मुंडवा कर फिर से हिन्दुओं में जा मिले। जो सच्चे सिक्ख थे वे जंगलों पहाड़ों तथा राजपूताने और बीकानेर के रेगिस्तानों में भाग गये। उनके शिरों पर मूल्य लगाये गये और अब कभी उनमेंसे कोई पकड़ा जाता था अथवा विश्वास घात द्वारा उसका पता लग जाता था तो उस पर तनिक मात्र भी दया नहीं की जाती थी। जब किसी माता से यह प्रश्न किया जाता था कि तुम्हारे कै बालक हैं तो वह बहुधा यही उत्तर देती थी कि मेरे चार बालक थे किन्तु उनमें से एक सिक्ख होगया है, सिक्ख हो जाने का यह अर्थ था कि

*बन्दा की चढ़ौती के समय में उसके अनुयायियों ने अमृतसर के गुरु द्वारे पर अपना अधिकार जमा लिया था और उसकी समस्त आय को हस्तगत कर लिया था। ऊपर लिखे हुए विरोध के कारणों के साथ मिलकर इस कारण ने दोनों दलों को एक दूसरे का पूर्ण शत्रु बना दिया १७२४ में खालसा और बन्दा के अनुयायियों में विरोध यहां तक बढ़ गया था कि खुल्लम खुल्ला युद्ध करने की नौबत आपहुंची। और केवल भाई मणिसिंह के शुभ प्रयत्नों द्वारा ही परस्पर का युद्ध तथा रक्त प्रवाह रुक सके। पासा फेंका गया और इस भाग्य परीक्षा में पासा खालसा के पक्ष में पड़ा। इसलिये गुरु द्वारा फिर इनको मिल गया और बन्दा के

शासकों को दंड देना था जिन्होंने नीच कायरों के समान सिक्खों की असहाय स्त्रियों तथा बालकों पर अपना क्रोध उतारा था।

सिक्खों की इस नई लूट मार के कारण सम्राट को अब्दुस्समद पर बहुत क्रोध आया। इस लिये सन् १७२६ ई० में उसको गुरानान बदल दिया गया और उसके पुत्र जकरिया-ख़ां को जो "ख़ां बहादुर" के नाम से प्रसिद्ध है लाहौर का शासक बनाया गया। इसके अतिरिक्त एक सैन्यदल इस कार्य के लिये नियुक्त किया गया कि वह सिक्खों की खोज में बराबर इधर उधर घूमता रहे और उन्हें किसी स्थान पर भी अधिक संख्या में एकत्रित न होने दे। इस सैन्यदल ने बड़ी उद्योगिता के साथ कार्य किया जहां कहीं सिक्ख दिखायी देते थे वहीं यह दल उनका पीछा करता था किन्तु सिक्ख लोग अब वेग के साथ प्रबल तथा बेकाबू होते जाते थे। और प्रतिदिन मुगल हाकिमों तथा ख़ालसा के बीच की मुट भेड का सातत्य बढ़ता जाता था। दलावन (ज़िला अमृतसर) के तारासिंह ने पट्टी के जाफर बग को पराजय दी। सिक्खों ने कान्हा कच्छ (ज़िला लाहौर) के समीप एक ख़ज़ाने को जिस समय कि वह कसूर से लाहौर को लेजाया जा रहा था लूट लिया। शाही सौदागर मुरतज़ा ख़ान जो सम्राट को घोडे पहुंचाया करता था उस ही वर्ष (१७२६) जन्डियाल (ज़िला अमृतसर) के समीप लूट लिया गया।

सन् १७३० में सिक्ख लोग एक और ख़ज़ाने पर आ पड़े जो लाहोर से देहली लेजाया जारहा था और उसकी एक एक पाई लेगये। इन लुटेरों को दड देने के लिये देहली से एक सेना भेजी गयी परन्तु सिक्ख लोग झट से पहाड़ों में

अंगरेज़ इतिहास लेखक प्रायः यह कहा करते हैं कि सन् १७१६ से १७३८ तक सिक्खों के विषय में कुछ भी नहीं सुना गया। यह बात इस समय विशेष के पहिले आठ वर्षों के विषय में सच है। किन्तु निस्सन्देह सिक्ख ऐसी जाति न थी जो बहुत अधिक समय तक चुप बैठी रहती। आठ वर्ष तक अपने परस्पर के विरोधों तथा अब्दुलसमद के प्रबल शासन के कारण वे कोई ऐसा कार्य नहीं कर सके जिसका परिणाम दिखाई देता।

इस समस्त समय में वे चुपचाप कष्ट सहन करते रहे और केवल अपनी जान बचाकर भाग जाने को ही अपनी बड़ी भारी विजय समझते थे। किन्तु १७१४ का वर्ष समाप्त नहीं होने पाया था कि उन्होंने फिर पंजाब के मैदानों में दर्शन देना आरम्भ किया उन्होंने अपने छोटे छोटे दल बना लिये और अपनी पुरानी चाल के अनुसार लूट मार के धावे कर तथा छोटी छोटी अनियमबद्ध लड़ाइयां (गोरिल्ला युद्ध) कर सरकार को तंग करना आरंभ कर दिया। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है समस्त अंग्रेज इतिहास लेखक १७१६ तथा १७३८ के बीच के सिक्खों के कार्यों के विषय में चुप हैं। किन्तु अलाउद्दीन के इबरतनामे' तथा ज्ञानसिंह के 'पंथ प्रकाश' में सिक्खों की १७२५तथा१७३८ के बीच की कार्यवाइयों का कुछ सविस्तार वृत्तांत दिया हुआ है।*

सब से पहिला कार्य फिर से जागे हुए खालसा ने किया वह उन विश्वासघातकों को जिन्होंने अपने भाइयों को सरकार के हवाले कर दिया था तथा उन छोटे छोटे अन्यायी

---

*फ़ारसी की हस्तलिपि "रिसालए नानकशाह (नम. २८१ Ethes' Bodlein में भी इस विषय में कुछ लिखा है।

शासकों को दंड देना था जिन्होंने नीच कायरों के समान सिक्खों की असहाय स्त्रियों तथा बालकों पर अपना क्रोध उतारा था।

सिक्खों की इस नई लूट मार के कारण सम्राट को अब्दुस्समद पर बहुत क्रोध आया। इस लिये सन् १७२६ ई० में उसको मुलतान बदल दिया गया और उसके पुत्र जकरिया-खां को जो "खां बहादुर" के नाम से प्रसिद्ध है लाहौर का शासक बनाया गया। इसके अतिरिक्त एक सैन्यदल इस कार्य के लिये नियुक्त किया गया कि वह सिक्खों की खोज में बराबर इधर उधर घूमता रहे और उन्हें किसी स्थान पर भी अधिक संख्या में एकत्रित न होने दे। इस सैन्यदल ने बड़ी उद्योगिता के साथ कार्य किया जहां कहीं सिक्ख दिखायी देते थे वहीं यह दल उनका पीछा करता था किन्तु सिक्ख लोग अब वेग के साथ प्रबल तथा बेधड़क होते जाते थे। और प्रतिदिन मुगल हाकिमों तथा खालसा के बीच की मुठ भेड़ का सातत्य बढ़ता जाता था। डलावन (जिला अमृतसर) के तारासिंह ने पट्टी के जाफ़र बेग को पराजय दी। सिक्खों ने कान्हा कच्छ (जिला लाहौर) के समीप एक ख़ज़ाने को जिस समय कि यह कसूर से लाहौर को लेजाया जा रहा था लूट लिया। शाही सौदागर मुरतज़ा ख़ान जो सम्राट को घोड़े पहुंचाया करता था उस ही वर्ष (१७२६) जंडियाल (जिला अमृतसर) के समीप लूट लिया गया।

सन् १७३० में सिक्ख लोग एक और ख़ज़ाने पर आ पड़े जो लाहौर से देहली लेजाया जारहा था और उसकी एक एक पाई लेगये। इन लुटेरों को दण्ड देने के लिये देहली से एक सेना भेजी गयी परन्तु सिक्ख लोग झट से पहाड़ों में

अंगरेज़ इतिहास लेखक प्रायः यह कहा करते हैं कि सन् १७१६ से १७२८ तक सिक्खों के विषय में कुछ भी नहीं सुना गया। यह बात इस समय विशेष के पहिले आठ वर्षों के विषय में सच है। किन्तु निस्सन्देह सिक्ख ऐसी जाति न थी जो बहुत अधिक समय तक चुप बैठी रहती। आठ वर्ष तक अपने परस्पर के विरोधों तथा अब्दुलसमद के प्रबल शासन के कारण वे कोई ऐसा कार्य नहीं कर सके जिसका परिणाम दिखाई देता।

इस समस्त समय में वे चुपचाप कष्ट सहन करते रहे और केवल अपनी जान बचाकर भाग जाने को ही अपनी बड़ी भारी विजय समझते थे। किन्तु १७१४ का वर्ष समाप्त नहीं होने पाया था कि उन्होंने फिर पंजाब के मैदानों में दर्शन देना आरम्भ किया उन्होंने अपने छोटे छोटे दल बना लिये और अपनी पुरानी चाल के अनुसार लूट मार के धावे कर तथा छोटी छोटी अनियमबद्ध लड़ाइयाँ (गेरिल्ला युद्ध) कर सरकार को तंग करना आरंभ कर दिया। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है समस्त अंग्रेज़ इतिहास लेखक १७१६ तथा १७३८ के बीच के सिक्खों के कृत्यों के विषय में चुप हैं। किन्तु अलाउद्दीन के 'इबरतनामे' तथा ज्ञानसिंह के 'पंथ प्रकाश' में सिक्खों की १७२४ तथा १७३८ के बीच की कार्रवाइयों का कुछ सविस्तार वृत्तान्त दिया हुआ है।*

सब से पहिला कार्य फिर से जागे हुए खालसा ने किया वह उन विश्वासघातकों को जिन्होंने अपने भाइयों को सरकार के हवाले कर दिया था तथा उन छोटे छोटे अन्यायी

*फ़ारसी की हस्तलिपि "रिसालए नानकशाह (नम्बर २८१ Ethes' Bodlein में भी इस विषय में कुछ लिखा है।

शासकों को दंड देना था जिन्होंने नीच कायरों के समान सिक्खों की असहाय स्त्रियों तथा बालकों पर अपना क्रोध उतारा था।

सिक्खों की इस नई लूट मार के कारण सम्राट को अब्दुससमद पर बहुत क्रोध आया। इस लिये सन् १७२६ ई० में उसको मुलतान बदल दिया गया और उसके पुत्र जकरिया-ख़ां को जो "ख़ां बहादुर" के नाम से प्रसिद्ध है लाहौर का शासक बनाया गया। इसके अतिरिक्त एक सैन्यदल इस कार्य के लिये नियुक्त किया गया कि वह सिक्खों की खोज में बराबर इधर उधर घूमता रहे और उन्हें किसी स्थान पर भी अधिक संख्या में एकत्रित न होने दे। इस सैन्यदल ने बड़ी उद्योगिता के साथ कार्य किया जहां कहीं सिक्ख दिखायी देते थे वहीं यह दल उनका पीछा करता था किन्तु सिक्ख लोग अब वेग के साथ प्रबल तथा बेक़ाबू होते जाते थे। और प्रतिदिन मुग़ल हाकिमों तथा ख़ालसा के बीच की मुठ भेड़ का सातत्य बढ़ता जाता था। डलावन (ज़िला अमृतसर) के तारासिंह ने पट्टी के जाफ़र बेग को पराजय दी। सिक्खों ने कान्हा कच्छ (ज़िला लाहौर) के समीप एक ख़ज़ाने को जिस समय कि वह कसूर से लाहौर को लेजाया जा रहा था लूट लिया। शाही सौदागर मुरतज़ा ख़ान जो सम्राट को घोड़े पहुंचाया करता था उस ही वर्ष (१७२६) जंडिमाल (ज़िला अमृतसर) के समीप लूट लिया गया।

सन् १७३० में सिक्ख लोग एक और ख़ज़ाने पर आ पड़े जो लाहौर से देहली लेजाया जारहा था और उसकी एक एक पाई लेगये। इन लुटेरों को दंड देने के लिये देहली से एक सेना भेजी गयी परन्तु सिक्ख लोग झट से पहाड़ों में

अंगरेज़ इतिहास लेखक प्रायः यह कहा करते हैं कि सन् १७१६ से१७३८ तक सिक्खों के विषय में कुछ भी नहीं सुना गया। यह बात इस समय विशेष के पहिले आठ वर्षों के विषय में सच है। किन्तु निस्सन्देह सिक्ख ऐसी जाति न थी जो बहुत अधिक समय तक चुप बैठी रहती। आठ वर्ष तक अपने परस्पर के विरोधों तथा अब्दुलसमद के प्रबल शासन के कारण वे कोई ऐसा कार्य नहीं कर सके जिसका परिणा दिखाई देता।

इस समस्त समय में ये चुपचाप कष्ट सहन करते र और केवल अपनी जान बचाकर भाग जाने को ही अप बड़ी भारी विजय समझते थे। किन्तु १७१४ का वर्ष सम नहीं होने पाया था कि उन्होंने फिर पंजाब के मैदान दर्शन देना आरम्भ किया उन्होंने अपने छोटे छोटे दल लिये और अपनी पुरानी चाल के अनुसार लूट मार के कर तथा छोटी छोटी अनियमबद्ध लड़ाइयां (गोरिल्ला र कर सरकार को तंग करना आरंभ कर दिया। जैसा कि कहा जा चुका है समस्त अंग्रेज़ इतिहास लेखक १७१ १७३८ के बीच के सिक्खों के कृत्यों के विषय में च किन्तु अलाउद्दीन के 'इबरतनामे' तथा ज्ञानसिंह प्रकाश' में सिक्खों की १७२४तथा१७३८ के बीच की चाइयों का कुछ सविस्तार वृत्तान्त दिया हुआ है।*

सब से पहिला कार्य फिर से जागे हुए खालसा यह उन विश्वासघातकों को जिन्होंने अपने भाइयों कार के हवाले कर दिया था तथा उन छोटे छोटे

*फ़ारसी की हस्तलिपि "रिसालए नानकशाह (नम्बर २८१ Bodlein में भी इस विषय में कुछ लिखा है।

सिक्खों के पास फेंकी गयी यहां तक कि अंत में फ़ैज़ुल्लाहपुर के एक जाट कपूरसिंह ने जो उस सभा में पंखा कर रहा था उस नवाब की उपाधि तथा ख़िलत से भूषित किया जाना स्वीकार किया* 'सिक्ख लोग अब कुछ समय तक इस नयी जागीर की आय पर शान्ति के साथ गुज़ारा करते रहे।

१७३४ ई० में सिक्ख लोग सुगमतार्थ अपनी अपनी आयु के अनुसार दो दलों में बँट गये, एक दल में बुड्ढे सिक्ख थे और वह बुड्ढा दल कहलाता था'। दूसरे में युवा सिक्ख थे और यह 'तरुण दल' कहलाता था। तरुण दल के फिर पाँच छोटे दल हुए:—

(१) दीपसिंह शहीद के नेतृत्व में।

(२) प्रेमसिंह तथा धर्मसिंह खत्रियों के अधीन।

(३) जिसका नेता दशवन्धसिंह था।

(४) बाबा काहन सिंह तथा बाबा विनोद सिंह के नेतृत्व में।

---

* यह कपूर सिंह सिक्खों के सब से प्रबल नेताओं में से हुआ है और बारह मिसलों में से एक उसकी स्थापित की हुई थी जो उसकी जन्मभूमि के नाम पर 'फ़ैज़ुल पुरिया' मिसल कहलाती थी। सय्यद मोहम्मद लतीफ़ उस की उपाधि का औरही कारण बताता है। वह कहता है कि उसके अनुयायियों ने जिनकी संख्या हजारों की थी उसको उसकी असाधारण बुद्धि के कारण नवाब की उपाधि दी थी। एक सिक्ख के लिये मुसलमानी उपाधि के स्वीकार करने का केवल यह ही एक उदाहरण मिलता है।" यह कहना आवश्यक नहीं कि पंथ प्रकाश के अनुसार जो ऊपर वृत्तान्त दिया गया है उसकी अपेक्षा लतीफ़ का कथन कहीं कम संभव प्रतीत होता है। कपूर सिंह ने जाटों, बढ़इयों, जुलाहों, कीवरों, खत्रियों तथा अन्य बहु संख्य लोगों को गुरु गोविन्द सिंह के मत का अनुयायी बना लिया था, और धार्मिक दृष्टि से उसका इतना अधिक मान किया जाता था कि उसके हाथों किसी को गुरु का पहुल मिलना एक विशेष गौरव की बात समझी जाती थी। उसे इस बात

भाग गये। १७२१ ई० में ये फिर उतर आये और फिर मानों लाहौर के दरवाज़ों पर ही पथिकों पर लूट मार करने लगे। लाहौर के मुसलमान बड़ी संख्या में इकट्ठे हुए और वहां के शासक के साथ मिलकर उन्होंने सिक्खों के साथ जहाद किया, पहिली दो लड़ाइयों में मुसलमानों को विजय प्राप्त हुई परन्तु अन्त में ये नगर के दरवाज़ों के निकट हार गये और उनके अगणित आदमी मारे गये*। १७२३ ई० में फिर एक बार सामोपचारों द्वारा तथा रिश्वत देकर सिक्खों का विध्वंस करने का यत्न किया गया। खां बहादुर ने देहली की सरकार को यह सम्मति दी कि आप सिक्खों को एक जागीर तथा खिताब प्रदान करें। उसकी सम्मति स्वीकार करली गयी और सिक्खों के नेता के लिये एक लाख रुपये की जागीर तथा नवाब की उपाधि का प्रस्ताव उनके प्रतिनिधि† के पास अमृत सर भेजा गया। पहिले तो इस प्रस्ताव को अवज्ञा के साथ अस्वीकार किया गया, परन्तु फिर सिक्खों के अधिक उत्तम मत मिलने पर उस जागीर को स्वीकार कर लिया गया। परन्तु उस उपाधि तथा खिलत को स्वीकार करने को लिये कोई आगे न बढ़ा। ये खिलत आदिक एक सिक्ख से दूसरे

---

*ज्ञानसिंह तथा रतनसिंह के पंथ प्रकाशों में इस युद्ध का समय १७११ लिखा हुआ है। मोहम्मद क़ासिम अपने इबरत नामें में १७१० देता है; मुफ़्ती अलीउद्दीन की इस ही नाम की पुस्तक में भी १७१० दिया है। ख़ाफ़ीख़ान और लतीफ़ भी इबरतनामों के लेखकों से सहमति रखते हैं।

†इनमें सब से प्रसिद्ध उस समय ये लोग थे दरबारासिंह, कपूरसिंह, हरीसिंह, बघ्घू री, दीपसिंह शहीद, जस्सासिंह रामगढ़िया, कर्मसिंह, बुद्धसिंह, सुकेर, चाकिया और गिरजासिंह इत्यादि—पंथ प्रकाश।

अध्याय १४

सिक्खों का फिर से प्रकट हो सत्ता लाभ करना।

(१७३८—१७४८)

जिन घटनाओं की ओर हम पिछले अध्याय में संकेत कर चुके हैं और जिनके द्वारा खालसा में नये जीवन का संचार हुआ तथा उनमें अधिक दृढ़ता के साथ तथा अधिक बड़े बड़े प्रयत्न करने का उत्साह उत्पन्न हुआ वे इस प्रकार गिनायी जा सकती हैं:—

(क) निम्न लिखित कारणों से देहली की सरकार का निर्बल हो जाना:—

(१) मोहम्मदशाह* तथा उसके उत्तराधिकारियों की निर्बलता तथा विषयासक्ति।

---

* राज्य के कार्यों की अपेक्षा सम्राट का समय कवियों गवईयों, भांडों, नक्कालचियों तथा नर्तकियों के साथ अधिक व्यतीत होता था। एक ही उदाहरण से पता लग जायगा कि सम्राट तथा उस के दरबारियों का चरित्र कहां तक गिर चुका था। नादिर की चिट्ठी का दो वर्ष तक उत्तर नहीं दिया था यहां तक कि भारतवर्ष को आते हुए उसने रास्ते में से एक और पत्र भेजा। वह पत्र उस समय सम्राट को मिला जब कि वह अपने दरबारियों के साथ मद्यपान कर रहा था। सम्राट ने पत्र को लिया और हाफ़िज का यह शेर पढ़ते हुए "इस अर्थहीन पत्र को इस चमकती हुई मद्य में डुबो दो" उस पत्र को मद्य में फेंक दिया।

मोहम्मद शाह की प्यारी बेगम एक हिन्दू नर्तकी थी जो पीछे से युवराज की माता हुई और जिस समय उसका पुत्र अहमदशाह राज सिंहासन

(५) जिसमें मज़हबी सिक्ख थे जो अपने नेताओं धीरसिंह तथा अमरसिंह के अधीन थे।

ये समस्त दल अमृतसर के चारों ओर ग्रामों में रहने लगे। सन् १७३५ में सिक्खों की जागीर को अनावश्यक समझा गया और इसलिये वह छीन ली गयी*। और ख़ालसा ने फिर लूट मार के धावे आरम्भ कर दिये। किन्तु लाहौर का दीवान लखपतराय शीघ्रही उनपर आपड़ा। और उसने 'तरुण' दल' को सतलज के पार मार भगाया। '१७३६ में 'बुड्ढे दल' तथा नवाब कपूरसिंह की मुठभेड़, जो लूट मार में 'तरुण दल' से पीछे नहीं रहा था, लाहौर के एक सेनापति हैयतख़ान के साथ हुई। और अमृतसर के समीप वासरकी नामक स्थान पर एक युद्ध हुआ जिसमें सिक्खों ने हार खायी।

' अब दोनों दल मिल गये और उन्होंने मुग़लों को हुजरशाह मुक़ीम के समीप परास्त किया।

लगभग दो वर्ष और इसही प्रकार की अव्यवस्थित लड़ाइयों में व्यतीत होगये जिससे धीरे धीरे ख़ालसा का बल बढ़ता गया और मुग़ल सरकार का बल घटता गया। इस समय के भीतर कुछ ऐसी घटनाएं हुईं जिससे मुग़लों का आसन्न नाश दिखाई देने लगा और ख़ालसा की उन्नति के लिये मार्ग पक्का होता गया।

का बड़ा अभिमान था कि मैंने अपने हाथ से ५०० मुसलमानों को मारा है निस्सन्देह जस्सासिंह अहलूवालिया तथा पटियाले के आलासिंह के समय से पूर्व वह सिक्ख सरदारों में सब से प्रसिद्ध तथा सब से भयंकर सरदार था। ......वह १७५३ ई० में अमृतसर में मरगया।" सय्यद मोहम्मद लतीफ़।

* 'पंथ प्रकाश' सरकार पर प्रतिज्ञा भङ्ग करने का अपराध लगाता है, किन्तु यह अधिक संभव प्रतीत होता है कि सरकार को 'तरुणदल' की नयी उद्योगिता के कारण यह कार्य करना पड़ा।

अध्याय १४

सिक्खों का फिर से प्रकट हो सत्ता लाभ करना।

(१७३८—१७४८)

जिन घटनाओं की ओर हम पिछले अध्याय में संकेत कर चुके हैं और जिनके द्वारा खालसा में नये जीवन का संचार हुआ तथा उनमें अधिक दृढ़ता के साथ तथा अधिक बड़े बड़े प्रयत्न करने का उत्साह उत्पन्न हुआ वे इस प्रकार गिनायीं जा सकती हैं:—

(क) निम्न लिखित कारणों से देहली की सरकार का निर्बल हो जाना:—

(१) मोहम्मदशाह* तथा उसके उत्तराधिकारियों की निर्बलता तथा विषयासक्ति।

---

* राज्य के कार्यों की अपेक्षा सम्राट का समय कवियों गवइयों, भांडों, नकलचियों तथा नर्तकियों के साथ अधिक व्यतीत होता था। एक ही उदाहरण से पता लग जायगा कि सम्राट तथा उस के दरबारियों का चरित्र कहां तक गिर चुका था। नादिर की चिट्ठी का दो वर्ष तक उत्तर नहीं दिया था यहां तक कि भारतवर्ष को आते हुए उसने रास्ते में से एक और पत्र भेजा। वह पत्र उस समय सम्राट को मिला जब कि वह अपने दरबारियों के साथ मद्यपान कर रहा था। सम्राट ने पत्र को लिया और हाफ़िज़ का यह शेर पढ़ते हुए "इस अर्थहीन पत्र को इस चमकती हुई मद्य में डुबो दो" उस पत्र को मद्य में फेंक दिया।

मोहम्मद शाह की प्यारी बेगम एक हिन्दू नर्तकी थी जो पीछे से युवराज की माता हुई और जिस समय उसका पुत्र अहमदशाह राज सिंहास

(२) राज्यके मुख्य मुख्य दरबारियोंके परस्पर विरोध। ये लोग साम्राज्य के सर्वस्व नाश हो जाने को देख सकते थे किन्तु यह न सह सकते थे कि उनका कोई प्रतियोगी साम्राज्य को बचा कर यश का भागी बन जावे। उस समय शाही दरबार में केवल आसफ़जाह ही एक मात्र समझदार मनुष्य था परन्तु उसकी यह कह कर हंसा उड़ाई जाती थी कि वह सम्राट के सामने बन्दर के समान नाचता फिरता है। इस पर एक दिन आसफ़जाह ने कहा "अच्छी बात है, मुझ को भी उस समय तक सन्तोष न होगा जब तक कि मैं देहली के कंगूरे कंगूरे पर बन्दर नाचते हुए न देखलूं।"

उसने सचमुच जो कहा सो कर दिखाया। यही था जिस ने नादिरशाह को देहली बुला कर पहिली बार साम्राज्य के खोखलेपन को प्रकट किया।

(३) मरहट्टों तथा अन्य रियासतों का बढ़ता हुआ बल। "एक पीढ़ी के भीतर कई मुसलमान साहसिकों ने बंगाल लखनऊ तथा हैदराबाद में पृथक पृथक रियासतें स्थापन कर ली थीं" और १७३७ में जिस समय बाजीराव आगरे से देहली तक सेना ले गया उस समय उस "मरहटे पेशवा ने

पर बैठा तो सब से विशेष अधिकार उस ही के हाथों में था। नवीन सम्राट स्वयम् अपने माता पिता का सपा पुत्र था। सदा अन्तःपुर में ही रहने के कारण उसको राज्य कार्य का कुछ भी बोध न था। वह भोग विलास में लिप्त हो गया और अपना समस्त समय विषयासक्ति तथा खेल कूद तमाशों में व्यतीत करने लगा। इसने यह निरर्थक व्यापार अपने माता और पिता दोनों से सीखे थे। उसने अपने अन्तःपुर को इतना बड़ा किया था कि वह एक मील तक फैल गया था। वह दो दो महीने उद्यानों में रहता था और एक एक सप्ताह तक किसी पुरुष का मुख न देखता था।

(सम्यद मोहम्मद लतीफ़।)

अचानक राजधानी के सन्मुख सशस्त्र प्रकट होकर भारतवर्ष के मुसलमानों में भय उत्पन्न कर दिया था।" रुहेलखण्ड के रुहेलों तथा भरतपुर के हिन्दू जाटों ने स्वतन्त्र राज्य स्थापन कर लिये थे। और राजपूत पहिले ही व्यवहार की दृष्टि में मुग़ल राज्य के युग को अपनी गरदनों से उतार चुके थे।

(४) नादिरशाह का आक्रमण।

(५) अहमदशाह दुर्रानी के दो धावे, चौथा और पांचवां।

(ख) दूसरी घटना जिसने सिक्खों को उभरने का उत्साह दिया, तथा उनके बल को विशेष कर बढाया लाहौर सरकार की निर्बलता थी। पहिले पहल ऐसा प्रतीत होता है कि देहली के साम्राज्य की निर्बलता से पंजाब की प्रान्तीय सरकार को बंगाल, अवध, रुहेलखण्ड इत्यादि के समान अधिक बल तथा स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिये थी। किन्तु पंजाब मुग़ल सम्राटों के बहुधा वहां आते जाते रहने के कारण दूसरे प्रान्तों की अपेक्षा सम्राटों के अधिक वश में था, इसके अतिरिक्त सिवाय एक के पंजाब के शेष समस्त शासक निर्बल थे और मन्नू ही एक मात्र प्रबल शासक था जिसे अहमदशाह दुर्रानी को हरा देने के कारण अपने बल तथा योग्यता का अभिमान था। वही एक मात्र पुरुष था जो देहली से पृथक स्वतन्त्रता स्थापन कर सकता था और उसने ऐसा किया भी। परन्तु उसकी आकांक्षा दुर्रानी के आक्रमण तथा उस की अपनी अकाल मृत्यु के कारण पूरी न हो सकी। निम्न लिखित घटनाओं ने लाहौर की सरकार को और भी अधिक निर्बल कर दिया था:—

(१) शासकों तथा शासनों का बहुधा बदलते रहना। १७१२ से १७६८ तक के समय में अर्थात पंजाब के स्थायी

रूप में सिक्खों के अधीन होने के समय तक लाहौर में बीस भिन्न भिन्न शासकों ने शासन किया। 'दस वर्ष' के भीतर अर्थात १७५६ से १७६७ तक लाहौर में सात विप्लव हुए और एक दूसरे के पीछे लाहौर के शासन की बाग डोर बारह शासकों के हाथों में आयी*। सन् १७५६ में दुर्रानी के तीसरे आक्रमण के साथ ही मुगलों का प्रभुत्व समाप्त हो गया। दुर्रानी का पुत्र एक वर्ष तक राज्य करता रहा और एक वर्ष के अंतमें जस्सासिंह कलाल ने उसको निकाल दिया। और एक वर्ष केभीतर ही मरहटों ने जस्सासिंह को निकाल बाहर किया परन्तु अब्दाली ने शीघ्र ही मरहटों को निकाल दिया और अब्दाली के प्रतिनिधि लाहौर में लग भग तीन वर्ष तक राज्य करते रहे। जब कि सिक्खों ने सोमासिंह,

*१७१२ से १७६७ तक जिन शासकों ने शासन किया उनके नाम नीचे लिखे जाते हैं:—

(१) असलय खान (इसलाम खान)
(२) जबरदस्त खान ... १७१२
(३) अब्दुल् समद खां ... १७१४
(४) ज़करिया खान ख० न० १७२६
(५) यहिया खान ... १७४३
(६) शाह निवाज़ खान ... १७४६
(७) लखपतराय और जुमला खान... ... ... १७४७
(८) मीर मन्नू १७४८
(९) मीर मन्नू की विधवा और उसका पुत्र ... १७५३
(१०) शाह ज़ादा तीमूर और जहान खान ... १७५६
(११) जस्सा सिंह कलाल ... १७५८
(१२) मिर्ज़ा खान (मरहटों के अधीन) १७५८
(१३) बापू राव मरहटा ... १७५८
(१४) हाजी करीमदाद खान १७५९
(१५) सरबुलन्द खान ... १७६१
(१६) उबेद खान १७६१
(१७) काबुली मल १७६२
(१८) गूजर सिंह, लेहना सिंह सोमा सिंह ... १७६५
(१९) दादन खान १७६६
(२०) गूजर सिंह, लेहना सिंह सोमा सिंह ... १७६७

लेहनासिंह तथा गुजरसिंह के नेतृत्व में उनको लाहौर से निकाल दिया। इन लोगों ने एक वर्ष तक लाहौर पर राज्य किया और अबदाली ने इन को फिर निकाल दिया परन्तु फिर एक वर्ष पूरा होने नहीं पाया था कि सिक्खों ने अब्दाली के शासक को फिर गद्दी से उतार दिया।

(२) राज्य कर्मचारियों की पारस्परिक ईर्ष्या तथा उनके विश्वासघातः–जिस समय ज़करियाख़ान लाहौर का शासक हुआ उस समय जसपतराय जलंधर दोआब का शासक था। ज़करियाख़ान ने जसपतराय को वहां से बदल कर एक छोटे से परगने अमीनाबाद में भेज दिया और उसके स्थान पर अदीनाबेग को जलधर दोआब का शासक नियुक्त कर दिया। अदीना एक प्रबल शासक था और उसने शीघ्र ही अपने परगने में शांति स्थापन कर दी। लाहौर के दरबार में में अदीनाबेग की बहुधा प्रशंसा हुआ करती थी परन्तु इनसे जसपतराय तथा उसके भाई लखपतराय को जो लाहौर का दीवान था बड़ी ईर्ष्या तथा नैराश्य हुआ करता था। इस लिये ये खत्री भाई ईर्ष्या से प्रेरित हो सका इस बात का यत्न करते रहते थे कि किसी प्रकार वे अपने कृतकार्य प्रतियोगी को लाहौर के शासक की दृष्टि में नीचा कर दें इस लिये जसपतराय ने सिक्खों को भड़काया कि वे अदीनाबेग को क्लेश पहुंचाने तथा कुपित कर देने के लिये जलधर दोआब में उपद्रव खड़े कर दें। दूसरी ओर अदीना ने भी पजाब के कृषकों के जिन में से अधिकतर सिक्ख थे। उपद्रव तथा विद्रोह खड़े करने के लिये उत्तेजना दी*। इस

* मुफ़्ती अलीउद्दीन का 'इबरत नामा' भी इस संदेह की ओर संकेत करता है जो अदीना के ऊपर किया जाता था अर्थात् यह कि उसने

प्रकार जब कि राज्य - कर्मचारी व्यक्तिगत ईर्ष्या में पड़े हुये थे तथा एक दूसरे से बदला निकालने के प्रयत्न करते रहते थे उस समय सिक्ख चारों ओर से उत्साह प्राप्त करते हुये तथा किसी का भी भय न करते हुए वे रोक टोक उन्नति करते चले आ रहे थे।

(३) नादिर का आक्रमण और दुर्रानी बादशाह के अवस्कन्द। पंजाब अनेक बार विदेशियों के अधीन हुआ और प्रत्येक बार विदेशियों ने इसे पूर्व की अपेक्षा अधिक निर्बल पाया तथा और भी अधिक विह्वल तथा अव्यवस्थित छोड़ा। अहमदशाह के नौ* आक्रमणों में से सात पंजाब पर हुए और इन आक्रमणों के कारण पंजाब की जो अस्ताव्यस्त अवस्था होगयी वह उस समय तक न सुधर सकी जब तक कि पंजाब रणजीतसिंह के हाथों में न चलागया।

(ग) खालसा के फिर से उपद्रव उठाने का तीसरा कारण यह था कि उनके कई एक अत्यन्त धर्मात्मा तथा उत्कृष्ट नेता मार डाले गये थे। मणिसिंह तथा तारुसिंह खालसा के

अपनी स्वार्थ सिद्ध के लिये कृषकों के राजद्रोह पर केवल टालमटोल ही की क्योंकि यह समझा जाता था कि सिक्ख उपद्रवों के जारी रहने से उसे लाभ था बुधसिंह ने साफ़ २ शब्दों में सिक्खों के उपद्रवों के विस्तार का कारण, अदीना की अपेक्षा तथा उसके कपट तक को बताया है। क्योंकि इन उपद्रवों के जारी रखने से अदीना का यह उद्देश्य था कि उसका कोई प्रतियोगी उसको जलंधर दोआब के शासक की पदवी से उतरवाने का यत्न न कर सके रिसाल ए-नानक शाह।

*समस्त इतिहास लेखक अहमद शाहके केवल आठ आक्रमणों का वर्णन करते हैं। मुफ़्ती अलीउद्दीन नवें आक्रमण का भी वृत्तांत लिखता है जिस में कि अहमद शाह चेनाब नदी के ऊपर गुजरात नामक स्थान तक आयाथा और एक फोड़े की पीड़ा के कारण लौट गया था।

परमपूज्य नेता थे और इन में से पहिला* तो गुरु गोविन्दसिंह का साथी रह चुकने के कारण पंजाब भर में आदरणीय माना जाता था। ये दोनों पकड़े गये थे और राजद्रोह के असार दोष आरोपण कर उनको मार डाला गया था।

सिक्खों का इतिहास १७३८ से लेकर, जहां पर कि हमने पिछले अध्याय में छोड़ा था' लाहौरमें सिक्खों के प्रभुत्व लाभ करने के समय तक दश दश वर्ष के तीन बराबर के भागों में विभक्त है जिनमें से प्रत्येक भाग में सिक्खों के राजनैतिक संघठन की कुछ न कुछ विशेष उन्नति दिखाई देती है।

१७१६ से १७३८ तक सिक्खों ने जो जो कष्ट तथा आपत्तियां मुग़लों की निष्ठुर दमननीति के कारण सहन की थीं उनके द्वारा उनके हृदय ना पहले ही मुग़लराज्य की ओर से फिरे हुए थे। उन्होंने बदला लेने का कोई अवसर हाथ से न जाने दिया था और जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं चारों ओर से सरकार का क्लेश पहुचाना आरभ कर दिया था। किन्तु उनके प्रतिष्ठित तथा सर्वमान्य नेताओं के बधकरवाये जाने के कारण उनके हृदयों में बदला लेने की अग्नि इतनी भड़क रही था कि वे उन निर्दय हत्याओं से अपने शहीदों के रक्त का बदला निकालने तथा अपनी जाति के पीड़कों को समूल विध्वंस करने के लिये व्यग्रता के साथ अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे।

यह अवसर उनको नादिरशाह के आक्रमण के समय मिल गया जो १७३८ के आरभ में ही पजाब के क्षत्रों में उतर आया था। उस समय जो खलबली मची वह सिक्खों के व्यवसायों

---

* कनिंघम ताड़ सिंह को भी गुरुका पुराना साथी बताता है (History of Sikhs, p. 91) किन्तु यह संभव प्रतीत नहीं होता।

के लिये बड़ी लाभकारक सिद्ध हुई। लाहौर की सरकार को अब एक अधिक भयंकर शत्रु का सामना करना पड़ा सो उसने सिक्खों को बिना रोक टोक अपने प्रयत्नों में पग बढ़ाने के लिये छोड़ दिया। सिक्खों की लूट मार के लिये टोलियां पहले ही बन चुकी थीं और उन्होंने देश भर में लूटमार मचा रक्खी थी। अब उन्होंने लाहौर से पूर्व रावी के तट पर डेरा बाबा नानक के समीप दुल्लेवाल नामक एक दुर्ग खड़ा कर लिया। इस केन्द्र स्थान से वे बड़ी बड़ी संख्या में निकलते थे और मुसलमानी ग्रामों, सरकारी कर्मचारियों तथा उन हिन्दुओं को भी जिन्होंने मुसलमान सरकार का पक्ष ले रक्खा था खूब लूटते थे। उन्होंने भयंकर नादिर तक को भी न छोड़ा वरन् उसकी सेना के उस पिछले भाग पर जा गिरे जो देहली की लूट के माल से लदा हुआ था और जो कुछ उनके हाथ लगा उड़ा लेगये। उद्धृत नादिर ने पूछा "ये लम्बे बालों वाले जंगली कहां से आगये जो मुझे कष्ट देने का साहस रखते हैं? उन्हें और उनके घरों को विध्वंस कर दो। उस को उत्तर मिला कि "उनके घर उनके घोड़ों के ऊपर की काठियां हैं।*

इस प्रकार कुछ समय तक सिक्ख बे रोक टोक फिरते रहे। सरकार का ध्यान उनकी ओर उस समय आकर्षित हुआ जिस समय कि उनके पूरे २००० सैनिक अमीनाबाद में एकत्रित हो, आस पास के ग्रामों से कर एकत्रित करने लगे। "एक दिन एक ग्राम निवासी अमीनाबाद के फौजदार जसपतराय के पास आया जो अपने स्थान से तीन मील परे खुलरान में डेरा लगाये पड़ा हुआ था, और उससे यह शिकायत की कि दो

* जनरल गौर्डन। (The Sikhs p. 58

हज़ार सिक्खों का एक दस्ता गांव पर आपड़ा है और मेरी समस्त भेड़ बकरियां हंका लेजाकर वे लोग रोडी साहब * में इस समय उन्हें मार मार कर खारहे हैं। दीवान ने सिक्खों को भाग जाने की आज्ञा भेजी किन्तु उन्होंने इतने शीघ्र टलने से इनकार किया। दीवान ने अपनी सेना के साथ उन पर धावा किया और एक घोर युद्ध हुआ। युद्ध के समय एक रंगरैठा सिक्ख दीवान के हाथी की पूंछ पकड कर हौदे पर चढ़गया और दीवान का शिर काट कर ले भागा। दीवान के मरते ही मुग़लों की सेना में भागा भागी पड़ गई। सिक्खों ने दीवान का शिर ५००) रु० लेकर एक बाबा† कृपाराम नामक मनुष्य को लौटा दिया जिस ने उस लाश का अन्त्येष्टि संस्कार किया।

"दीवान का भाई लखपतराय अपने भ्राता की इस शोक जनक मृत्यु का हाल सुनकर क्रोध में भर गया। उसने कहा कि 'इसमें सन्देह नहीं कि सिक्ख मत का संस्थापक एक खत्री था। किन्तु मैं खत्री नहीं यदि मैं इस मत का नाम सफह-हस्ती से न मिटा दूं।' इस संकल्प के अनुसार वह स्वयम् शासक‡ के साथ सिक्खों का पीछा करने के लिये निकला और जम्मू के पास उसने सिक्खों को एक घोर पराजय दी। वहां से वह बहुत से क़ैदियों को लाहौर लाया, और

* अमीनाबाद (जिला गुजरावाला) से एक मील पर सिक्खों का एक तीर्थ स्थान है। यहांपर गुरु नानक यात्रा करते हुए कुछ समय ठहरे थे।

† जहां तक प्रतीत होता है यह बाबा सुप्रसिद्ध ग्राम बेरकी गुसाईं का रहनेवाला एक गुसाईं था। यहां के गुसाईं अमीनाबाद के दीवानों के परम्परा से गुरु होते चले आये हैं।

‡ १७४३ से १७४५ तक यहियाख़ान शासक रहा और यह घटनाएं जिनका ऊपर वर्णन किया गया है इसही समय में हुई थीं।

उनके केश कटवाकर देहली दरवाजे के बाहर सर्व सामान्य पथ पर उन सब को खड्ग से उड़वा दिया जिस स्थान पर वे मारे गये यह अभी तक 'शहीदगञ्ज' के नाम से प्रसिद्ध है। उस ही समय एक घोषणा होगयी कि जो कोई गुरु अब गोविन्द का नाम तक लेगा उसका इसका पेट फाड़ डाला जायगा।*

यह समय सिक्खों के लिये फिर बड़े कष्ट का समय था। पंथप्रकाश में स्पष्ट तथा अत्यन्त करुणात्मक शब्दों में भागे हुये सिक्खों की उन विपत्तियों का वृत्तान्त दिया हुआ है जो उन्हें बसोहली के निर्वृक्ष पहाड़ों तथा मालवा के झुलसते हुए मरुस्थलों में सहनी पड़ी जहांपर कि वे क्रुद्ध लखपतराय के बदला लेनेके भय से भाग गये थे। किन्तु इन विपत्तियोंके अन्त होने में बहुत देर नहीं लगी और लखपतराय को दण्ड मिलने तथा खालसा को अवसर मिलने का समय शीघ्र ही आ गया। यहिया के छोटे भाइ शाहनवाजखान ने जो मुलतान का शासक था सन १७४५ में लाहौर पर आक्रमण किया और यहियाखान तथा उसके दीवान लखपतराय को वहां से निकाल दिया। इस प्रकार लाहौर का प्रान्त छीन लेने पर देहली की सरकार के कोप से डर कर शाहनवाज़ ने अहमद-शाह दुर्रानी को भारतवर्ष पर आक्रमण करनेके लिये बुलाया और उसको यथा शक्ति सहायता देने तथा उसकी अधीनता स्वीकार करने की प्रतिज्ञा करली। दुर्रानी बादशाह सदा ही हिन्दुस्तान की ओर लोभ भरी आंखों से ताकता रहता था। वह इस प्रस्ताव पर बड़ा प्रसन्न हुआ और १०,००० सेना ले कर पेशावर की ओर चल पड़ा। इस समय के भीतर शाहन-

---

* इबरतनामा अलीउद्दीन।

याज़ पर राजद्रोह के अपराध में बड़ी झाड़ पड़ी किन्तु इसके साथही प्रधानमन्त्री ने जो उसका नाना था उसको मना लिया और यह प्रतिज्ञा की कि यदि तुम इस आक्रमक से युद्ध कर उसे आगे बढ़ने से रोकोगे तो तुम्हें फिर से लाहौर का शासक बना दिया जायेगा।

"ख़ैबर पर पहुंचकर अहमदशाह ने अपने एक दूत मोहम्मद नईम ख़ान को शाह नवाज़ ख़ान से आक्रमण के उपायों के विषय में सलाह करने के लिये लाहौर भेजा। दूत बड़ा अभिमानी तथा असभ्य मनुष्य था उसने युवक शासक को अपनी धृष्टता द्वारा क्रुध करदिया और इसलिये उसे बिना सन्तोषप्रदायक उत्तर मिलेही लौट जाना पड़ा। अफ़ग़ान बादशाह रोहतास* तक बढ़ आया और यहां से उसने एक और दूत, इस समय अपने पीर के पुत्र, साबिरशाह को भेजा। शाहनवाज आक्रमक सेना की शक्ति को भली प्रकार जानता था और उसने दूत से बड़े घमड में आकर तथा बेपरवाही के साथ पूछा "कहा भाई अहमद शाह कैसे हैं? " साबिर इस धृष्ट प्रश्न पर क्रोध में भर गया और उसने युवक को उसके घमंड पर बहुत बुरा भला कहा। इस पर शाहनवाज़ को भी क्रोध आया और उसने दूत के मुंह में पिघलता हुआ सीसा डलवाकर उसे मरवाडाला† अहमदशाह अब लाहौर तक बढ़ आया और थोड़े से विरोध के पश्चात् उसने लाहौर को लेलिया। शाहनवाज़ देहली को भाग गया। दुर्रानी बादशाह ने लखपतराय को शासक नियुक्त किया और क़सूर के

---

* ज़िला जेहलम में एक बड़ा पक्का दुर्ग है।

† लाहौर की बादशाही मसजिद के पीछे उसकी कबर बनी हुई है। यह उदाहरण अली उद्दीन के इबरतनामें में से लिया गया है।

जुमलाहान* को उसका सलाहकार बनाया। अहमदशाह फिर देहली की ओर बढ़ा किन्तु जैसा कि प्रसिद्ध है उसको सरहिन्द पर पराजय हुई और वह शीघ्रही भाग कर काबुल को लौट गया।

इस हलचल से सिक्खों को बड़ा भारी लाभ पहुंचा। वे फिर समरस्थल में उतर आये और उन्होंने अपनी रीति के अनुसार लूट मार आरम्भ करदी। सब से सरल तथा लाभदायक शिकार उनके लिये हारे हुए आक्रमक की सेना थी जो घबराई हुई *अपनी जन्म भूमि को भागी जारही थी।*

"जागरूक सिक्खों को उसकी सेना के पिछले भाग पर आक्रमण करने तथा अपनी शक्ति में विश्वास उत्पन्न करने का अवसर हाथ आया।† इस लूट मार से उनको बहुत सा धन प्राप्त हुआ जिससे उनका बल बहुत बढ़ गया और अब अमृतसर के समीप उन्होंने एक दुर्ग बनवाया जो रामरौनी कहलाता है। इस ही समय में उनको एक बड़ा योग्य नेता मिल गया "वह जस्सासिंह कलाल जिसने निर्भयता के साथ घोषणा प्रकाशित की कि "साम्राज्य के भीतर एक नई शक्ति उत्पन्न हो गई है जिसका नाम 'खालसा' का 'दल' अथवा 'सिंहों' की सेना है।"‡

इस समय खालसा एक राज्यशक्ति बनचुकी थी और कोई भी उस शक्ति को तुच्छ समझ उसकी ओर से अनभिज्ञता न दर्शा सकताथा। और यद्यपि वे बहुधा हार खा चुके थे तथापि यह निश्चित था कि वे मुग़ल साम्राज्य की जड़ हिला कर उस की जीर्णता पर वह अपना एक स्वतंत्र राज्य स्थापना कर लेंगे।

---

* पंथ प्रकाश में 'भीमनप्रान' नाम लिखा है।

† कनिंघम पृ० ६३।

‡ चरतसिंह, टीकासिंह और किरवरसिंह जस्सासिंह के साथियों में से थे। कनिंघम पृ० ६३।

अध्याय १५

सिक्खों का लाहौर को लेना और अपना सिक्का निकालना

(१७४८—१७५८)

दुर्रानी बादशाह का पहिला आक्रमण देहली के वज़ीर के सब से बड़े पुत्र मुईनुद्दीन की योग्यता द्वारा निवारण किया जा चुका था। इस युद्ध में वृद्ध वज़ीर स्वयम् सेनापति बन कर आया था। किन्तु लड़ाई के आरम्भ में ही जिस समय कि वह अपने डेरे में क़ुरान का पाठ कर रहा था उसे मार डाला गया था। उस समय वज़ीर की पदवी अवध के शासक सआदतख़ान के जामाई सफ़दर जंग को दी गई। क्योंकि समस्त उच्च पदवियां प्रायः पैतृक होती थीं इसलिये नये वजीर को अपने प्रतियोगी अर्थात् पिछले वज़ीर के विजेता पुत्र मुईनुद्दीन के अधिकारों का भय हुआ और उस प्रभावशाली युवक को दूर रखने के लिये उस ने मुईनुद्दीन को लाहौर तथा मुलतान का शासक नियुक्त कर दिया।

जिस समय मुईनुद्दीन, जो मीर मन्नू के नाम से प्रसिद्ध है और जिसको यह उपाधि स्यात् सिक्खों ही ने दी थी, १७४८ ई० में पंजाब आया तो उसने चारों ओर पूर्ण अराजकता तथा अस्तव्यस्तता फैली हुई देखी। सिक्ख अत्यन्त साहसिक तथा उपद्रवी होगये थे। वे अपने नवीन दुर्ग के चारों ओर एकत्रित हो गये थे। और अपने कई धर्मोन्मत्त दल बनाकर

चारों ओर घूमते हुए देश को लूटते हुए तथा लाहौरके आस पास के ग्रामों तक को उजाड़ते हुए दिखाई पड़ते थे।*

इस लिये ज्योंही मीर मन्नू ने अपना शासन भली प्रकार स्थापित कर लिया। त्योंही उस ने सिक्खों को दमन करने का कार्य अपने हाथ में लिया। उसने सब से पहिले रामरौनी के दुर्ग पर धावा किया और उसे जीत कर नष्ट कर दिया। इस के पश्चात् उस ने जिस जिस स्थान पर कि सिक्ख आया करते थे उस उस स्थान पर सेनाएं नियुक्त कर दीं और उन को यह कड़ी आज्ञा देदी कि जहां कहीं कोई सिक्ख मिलें उन के केश और डाढ़ियां मुड़वा दो। इस आज्ञा का बड़ी क्रूरताके साथ पालन कराया गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि सिक्खोंका मत प्रचार रुक गया और गुरूके भक्तों को पहाड़ों तथा जंगलों में छिपना पड़ा। मीर मन्नू ने पहाड़ी राजाओंके पास कठिन आज्ञाएं भेजीं कि वे सिक्खों को पकड़ पकड़कर और हथकड़ियें डालकर उन्हें लाहौर भेज दें। इन आज्ञाओं का पालन किया गया और सैकड़ों सिक्ख प्रतिदिन लाहौर भेजे जाने लगे जहां उनको देहली दरवाज़े के बाहर नख़ास अर्थात् शहीदगंज में सैकड़ों लोगों के सामने वध किया जाता था। युवक मन्नू सिक्खों का जानी दुश्मन होगया और उनकी जाति को समूल नाश करने पर कटिबद्ध था।†

किन्तु मन्नू को लाहौर में शासन जमाए हुए थोड़े ही मास व्यतीत हुए थे कि अहमदशाह दुर्रानी फिर आ धमका और उसके इस आक्रमण के कारण कुछ काल के लिये मन्नूके सोचे हुए उपाय उलट पलट होगये। वर्षा ऋतु के अन्त में अफ़ग़ान बादशाह अपनी उन हानियों का बदला लेने के

*लतीफ़ पृ० ३२०।
†सैय्यद मुहम्मद लतीफ़ पृ० ३२१।

संकल्प से जो उसे पहिले आक्रमण के समय पहुंची थीं एक प्रबल सेना लेकर अटक के पार उतरा। मन्नू ने तत्काल देहली सरकार को अधिक सेना भेजने के लिये लिखा। किन्तु वहां के दरबारियों को शराब तथा नाच रंग से इतना अवकाश कहां मिलता था कि वे इतने आवश्यक कार्यों की ओर भी दृष्टि कर सकते। इस समय के भीतर दुर्रानी चेनाव के तट तक पहुंच गया। मन्नू देहली से सहायता मिलने के विषय में निराश होकर तथा अपनी ही सेनाओं को एकत्रित कर आक्रमक का सामना करने के लिये रावी के पार पहुंचा। दोनों सेनाओं की सोद्र* के समीप चेनावके तट पर मुट भेड़ हुई। कुछ थोड़ी सी लड़ाई भी हुई किन्तु मन्नू शीघ्र समझ गया कि वह उस आक्रमण को पीछे हटाने को सर्वथा असमर्थ था मन्नू ने संधि की इच्छा प्रगट की, और अफ़गान बादशाह ने इस युवक की योग्यता से प्रसन्न हो विशेष कर क्योंकि इसहा युवक ने सरहिन्द पर दुर्रानी को पराजय दी थी और दूसरे इस कारण कि दुर्रानी को अपने घर पर भी कुछ झगड़े निपटाने थे मन्नू के प्रस्ताव को इस शर्त पर स्वीकार कर लिया कि पसरूर, गुजरात, सियालकोट तथा औरङ्गाबाद के चारों ज़िलों की आय जो समस्त पंजाब में सब से समृद्ध स्थान हैं उसको भेजी आया करे जैसा कि पहिले नादिरशाह को भेजी जाती थी क्योंकि दुर्रानी भी अपना अधिकार नादिरशाह से ही क्रमागत बतलाता था। इस के अतिरिक्त कहते हैं कि मन्नू ने इस बातको भी स्वीकार कर लिया था कि वह समस्त पंजाब के लिये अपने आप को अफ़ग़ान बादशाह का सामन्त

*यह वज़ीराबाद के समीप एक प्राचीन नगर है जिसके १०० दरवाज़े हैं और जिसे महमूद ग़ज़नवी के प्यारे ग़ुलाम अयाज़ने बसाया था।

समझेगा*

लाहौर से यहाँ के शासक तथा उसकी सेना के चले जाने के कारण सिक्खों को फिर एक बार अपने आश्रयस्थानों से निकल आने का साहस हुआ। उनके सैंकड़ों की सख्या में पकड़े जाने तथा वध किये जाने ने उनके धर्मोन्माद को तथा उनके हृदयों में मुसलिम सरकार के विरुद्ध घृणा को और भी अधिक बढ़ा दिया था वे मन्नू की क्रूरता से घृणा करते थे और प्रतीत होता है कि निम्न लिखित राग उनमें प्रसिद्ध हो गया था:—

"मीर मन्नू असांदी दतारी असीं मन्नू दे सोए"
ज्यों ज्यों मन्नू वड्ढ दा घटीन घटीन असि होए †

उन्होंने मन्नू के राजधानी में न होने का भरपूर लाभ उठाया। वे अचानक एक बड़ी सख्या में लाहौर पर आ गिरे, उन्होंने नगर को खूब लूटा तथा नगर के बाहरी भाग को जला कर भस्म कर दिया (पाक त्रिलोचनंद) लौटने पर मीरमन्नू नगर को उजड़ा हुआ देख क्रोध में भर गया और सिक्खों को पहिले से भी कहीं अधिक क्रूरता के साथ दण्ड देने लगा। "सहस्रों सिक्खों को निर्दयी खड्ग से उड़ा दिया गया, किन्तु" मुसलमान लेखक बड़े शोक से लिखता है कि "तीर जब एक बार कमान से निकल गया तो फिर नहीं लौट सकता, नगर उजड़ चुका था‡।"

---

* रेजी अलीफ, कनिंघम, एल्फिन्स्टन, और Murray's Ranjit Singh by Princep

† इबरतनामा, अलीउद्दीन।

‡ इबरतनामा अलीउद्दीन। कनिंघम अथवा कोई और इतिहास लेखक सिक्खों के इस अवस्कन्द के विषय में कुछ नहीं लिखता। तथापि अलीउद्दीन के वृत्तान्त की सत्यता में संदेह करने का कोई कारण नहीं प्रतीत होता।

किन्तु मन्नू ने प्रत्येक सिक्ख को जो पकड़ा गया मार कर तथा शेष को पहाड़ों और जङ्गलों में भगा कर अपने राज्य में शीघ्र ही फिर से शांति स्थापन कर दी। इस बीच उसके बातों ही बातों में आक्रमक को सफलता पूर्वक लौटा देने पर देहली में उसकी बहुत प्रशंसा हुई। उसके इतना आदर प्राप्त करने पर समस्त दरबारी उससे ईर्ष्या करने लगे, किन्तु औरों की अपेक्षा वज़ीर को इस योग्य युवक की ओर से विशेष भय था। वह स्वयम् अवध में अपना स्वतंत्र राज्य स्थापन करने का प्रयत्न कर रहा था और वह इस बात को भली प्रकार जानता था कि उसके ऐसा करने का प्रभाव उस के पूर्वाधिकारी के पुत्र पर अवश्य पड़ेगा।* इस लिये मन्नू का बल घटाने के लिये उस ने शाहनवाज़ ख़ान को मुलतान का शासक नियुक्त किया। शाहनवाज़ ख़ान पहिले भी १७४५ तक मुलतान का शासक रह चुका था। १७४५ में वह अपने बड़े भाई यहियाख़ान के स्थान पर लाहौर नियुक्त हुआ था और वहां से उसे स्वयम् अहमदशाह दुर्रानी के प्रतिनिधि ने निकाल दिया था।

शाहनवाज़ ख़ान के इस प्रकार नियुक्त किये जाने से मन्नू को बड़ा कोप हुआ और उसने तुरंत अपने प्रतिनिधि दीवान कौड़ामल को नये शासक का प्रतिरोध करने के लिये मुलतान भेजा।

एक युद्ध हुआ जिस में कि कौड़ामल कुछ वैतनिक सिक्खों †की सहायता से जीत गया और शाहनवाज़ ख़ान

*कनिंघम।

†पंथ प्रकाश' लिखता है कि कौड़ामल के सिक्ख सहायकों की संख्या २०००० थी तथा उनकी वीरता द्वारा ही उसे विजय प्राप्त हुई।

मारा गया। इस विजय द्वारा व्यवहार की दृष्टि में अब से मन्नू देहली सरकार की अधीनता से स्वतंत्र हो गया। मन्नू इस विजय पर दर्प से फूला न समाया और उसने कौड़ामल को उसकी इस कृतार्थ सेनापतित्व के लिये 'महाराजा' की उपाधि देकर उसको मुलतान का शासक नियुक्त कर दिया।

मीर मन्नू को अब चारों ओर सौभाग्य ही सौभाग्य दिखायी देता था। सिक्ख लोग शांत बैठे हुए थे उसके प्रतियोगी परास्त किये जा चुके थे और देहली की सरकार ऐसी निर्बल तथा भ्रान्त चित्त हो रही थी कि उसके लिये मन्नू के साथ हस्तक्षेप करना या उसकी स्वतंत्रता में किसी प्रकार से बाधा डालना असंभव था। इस विजय के अतिरिक्त उसे इस बात का भी ज्ञान था कि वह एक बार भयंकर दुर्रानी को भी परास्त कर चुका था। इसलिये वह अपने आप को अब इतना बलवान समझता था कि अपनी स्वाधीनता को प्रकाशित कर सके और यदि उसने कभी भी दुर्रानी बादशाह को अपना स्वामी समझा हो तो अब उसके स्वामित्व को भी जवाब दे बैठे। संधि की प्रतिज्ञा अनुसार उन चारों ज़िलों की आय के भेजे जाने का समय निकल चुका था किन्तु अभी तक एक पाई भी नहीं भेजी गयी थी। अफ़ग़ान बादशाह ने अपना कर मंगवा भेजा और साथ ही १७५१–५२ में वह फिर एक बार अटक के पार आ पहुंचा। चेनाब के दक्षिण तट पर पहुंच कर उसने अपने गुमाश्ते दीवान सुख जीवनमल को पिछला कर मांगने के लिये लाहौर भेजा।

कौड़ामल स्वयम् गुरु नानक का सिक्ख था और जब कि उसका स्वामी सिक्खों का दमन कर रहा था वह सदा उनके लिये दया तथा क्षमा की प्रार्थना किया करता था। सिक्खों को मुलतान दे जाने से उसका एक ध्येय यह था कि मीर मन्नू पर उनका अच्छा प्रभाव पड़े। पद प्रकारा।

मनू ने पहिले तो यह प्रकट किया कि उसने कोई नियत कर भेजने की प्रतिज्ञा ही नहीं की थी। किन्तु फिर उसने कहा कि "और यदि शाह ने स्वयम् पंजाब तक आने का कष्ट उठाया है तो मैं प्रसन्नता पूर्वक बादशाह को इतना कर दे दूंगा जितना कि मुझे वास्तव में देना होगा इस शर्त पर कि शाह तुरंत उलटे पांव काबुल को लौट जाएं। क्योंकि समस्त जमीन्दार अब्दाली बादशाह के आगमन का समाचार सुन व्याकुल हो इधर उधर भाग गये हैं और जब तक कि दुर्रानी सेना उस स्थान पर रहेगी जहां पर कि वह अब है तब तक यह असंभव है कि लोगों से कर की एक पाई भी वसूल हो सके। *इस प्रकार बात मिला देने से शाह को कदापि सन्तोष नहीं हो सकता था और इस बात को मीर मनू भी स्वयम् खूब समझता था। ज्यों ही कि दूत ने पीठ मोड़ी मनू तत्काल अपनी सेना ले आक्रमक से मुठ भेड करने के लिये चेनाब की ओर चल पड़ा। †अब्दाली लाहौर तक बढ़ा चला आया और पहिले छे महीने तक छोटे मोटे संग्राम कर अन्त को एक घोर युद्ध के पश्चात जिस में कि वीर राजा कौड़ामल भी निज हाथी के कुछ चोट लगजाने के कारण मर गया शाह ने मनू को पूर्ण पराजय दी। मनू ने अपने आप को दुर्ग में बन्द कर लिया किन्तु जब उसने

---

*लतीफ़, पृ० २२२।

†पंथ प्रकाश लिखता है कि वह केवल आक्रमक का सत्कार करने के लिये गया था और यही ठीक भी प्रतीत होता है। अन्यथा यह समझ में नहीं आता कि अब्दाली को बिना लडाई लडे रावी तक क्यों आने दिया जाता लतीफ बिना इस असंगति को देखे लिखता है कि मन्नू अपनी समस्त सेना तथा जलंधर और मुलतान की भी सेनाएं लेकर शाह से लड़ने के लिये गया था।

देखा कि अधिक विरोध करना व्यर्थ है तो आक्रमक की अधीनता स्वीकार करली और सन् १७५२ की बसन्त ऋतु में अफ़गान सेना ने नगर को ले लिया।*

इन विप्लवों का परिणाम यह हुआ कि लाहौर दूसरी बार विदेशियों के अधीन हो गया जिसके कारण लाहौर की सरकार का बल और भी अधिक टूट गया। और जिस समय कि आक्रमक तथा आत्मरक्षक मुसलमानों में परस्पर युद्ध हो रहे थे उस समय सिक्ख चुपचाप बैठे हुए न थे। उन्होंने फिर एक बार अपने आश्रय स्थानों से निकल कर समस्त

---

* मुफ़ती अलीउद्दीन के इबरतनामें मन्नू और अफ़गान विजेता के परस्पर दर्शन के समय की एक बड़ी मनोहर कहानी लिखी हुई है। दुर्रानी बादशाह और मीर मन्नू के बीच यह वार्तालाप हुआ—

दुर्रानी—"तुम पहिले ही मेरी अधीनता स्वीकार करने क्यों नहीं आ-गये थे?"

मीर मन्नू—"क्योंकि उस समय मैं दूसरे स्वामी के अधीन था।"

दुर्रानी—"अब वह स्वामी तुम्हारी सहायता के लिये क्यों नहीं आया।"

मीरमन्नू—"क्योंकि वह यह समझता था कि उसका सेवक स्वयम् अपनी रक्षा कर सकेगा।"

दुर्रानी—"यदि मैं तुम्हारे हाथों में पड़ जाता तो तुम क्या करते?"

मीरमन्नू—"मैं आपका सिर काट कर अपने स्वामी के पास देहली भेजदेता।"

दुर्रानी—"अच्छा अब जब कि तुम मेरे हाथों में हो तुम मुझ से क्या आशा करते हो?"

मीरमन्नू—"यदि आप सौदागर हैं तो मुझको बेच डालिये यदि अन्यायी हैं तो मार डालिये और यदि बादशाह हैं तो मुझे क्षमा कर देंगे।" शाह अपने युवा शत्रु के निर्भीक तथा स्पष्ट उत्तरों को सुनकर चकित रह गया और शाह ने न केवल उसकी जान ही बख्श दी उसको 'फ़र्ज़न्द ख़ान बहादुर रुस्तमे हिन्द' की उपाधि देकर लाहौर का ही शासक नियुक्त कर दिया।

प्रांत में उपद्रव खड़ा कर दिया था। वास्तव में उन्होंने अमृतसर तथा पहाड़ों के बीच के समस्त देश को अपने अधीन कर लिया था। *

इसलिये ज्योंही कि मीर मन्नू फिर से लाहौर की मसनद पर बैठा तुरन्त उसने अपनी दृष्टि फिर सिक्खों की ओर फेरी। अदीनाबेग उनको अधीन करने के लिये नियुक्त किया गया। इस आदेश को अदीना ने अपनी ओर से उन संशयों को मिटा देने के लिये एक अत्यन्त शुभ अवसर समझा जो कि उस पर इस लाहौर के युद्ध के समय चुपचाप बैठने तथा विश्वास भंग करने और पंजाब के उपद्रवी कृषकों के दमन करने में टाल मटोल करने के विषय में किये जा चुके थे। मक्खोवाल के मेले पर जहां पर कि सिक्ख चारों ओर से एकत्रित हो गये थे वह उन पर आ पड़ा, और उसने सिक्खों को पूर्ण पराजय दी। किन्तु अभी तक भी उसका यही मन्तव्य था कि उस उपद्रवी प्रान्त में अपने नियंत्रण का महत्व बनाये रखने के लिये वह उन को सर्वथा नाश न करे वरन् एक प्रकार से उनका मित्र ही समझा जावे। इसलिये "उसने सिक्खों के साथ यह सन्धि कर ली कि उनको केवल नाम मात्र ही कर देना पड़ेगा और वे स्वयम् भी औरों से केवल उचित तथा व्यवस्थित कर लिया करेंगे!" † उसने उनमें से बहुतों को अपने पास नौकर भी रख लिया जिनमें से एक का नाम जस्सासिंह था जो जाति का बढ़ई था और जो पीछे से एक प्रबल जथे का संस्थापक तथा नेता हुआ। ‡

---

*कनिंघम, पृ० ६५।

†कनिंघम, पृ० ६५।

‡ पथ प्रकाश के अनुसार जस्सासिंह ने अदीना बेग की नौकरी पहिले ही से अथवा 'रामरौनी' के युद्ध (१७४८) से भी पूर्व से कर रक्खी थी।

इस प्रकार सिक्खों की स्वतंत्रता अथवा अर्धस्वतंत्रता को पहिली बार स्वीकार कर लिया गया। किन्तु अभी इससे भी अच्छे अच्छे अवसर सिक्खों को आगे मिलने वाले थे। दुर्रानी बादशाह की अधीनता स्वीकार करने के थोड़े ही महीने पीछे सन् १७५२ * में मन्नू मर गया, शासन की बाग अब उसकी विधवा मुराद बेगम के हाथों में पड़ी, और वह काबुल के बादशाह के अधीन अपने बालक पुत्र मोहम्मद अमीन खान के नाम से राज्य करने लगी। यद्यपि वह चालाक और यशस्कामी थी तथापि स्त्रीशासन के लिये वह समय अत्यन्त क्षोभित था। सिक्खों को अब चारों ओर धावे मारने का एक बड़ा सुन्दर अवसर मिल गया। † बालक अमीन खान शीघ्र ही शीतला से मर गया। उसकी माता ने शासन को स्वयम् संभाल कर अपने आप को ही पंजाब का शासक प्रकाशित किया। लाहौर के उमदरा लोग उसके मृत पति का का बड़ा मान करते थे और उसने भी उनको पारितोषिक तथा उपाधियां देने की प्रतिज्ञाएं कर प्रसन्न कर रक्खा था।

बाल हत्या के अपराध में उसके सहधर्मियों ने उसे जाति से बाहर निकाल दिया था और इस लिये वह मुसलमानों में जा मिला था। उसको फिर क्षमा भी कर दिया गया था और जाति में फिर से ले लिया गया था क्योंकि उसने न कभी सिक्खों का विश्वासघात किया और न कभी अपनी इच्छा से उनके विरुद्ध युद्ध किया।

---

* एलफ़िन्स्टन उसके मरने का सन् १७५६ लिखता है, और लतीफ़ भी किन्तु लतीफ़ दूसरे ही पृष्ठ में इसके विरुद्ध लिख देता है। अलीउद्दीन अपने इबरतनामें में इसकी तारीख़ ११७६ हिजरी लिखता है जो कनिंघम के ऊपर लिखे हुए सन से मिलती है।

† देखो मैल्कम।

इस कारण उन सब ने उसकी पूरी पूरी सहायता की। और उसने देहली तथा काबुल दोनों दरबारों से भी अपने राज्य सिंहासन पर बैठने के शाही फ़रमान मंगा लिये।

अपने अधिकार को पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित देख वह अपने यौवन को बट्टा लगाने लगी मीर भिकारीख़ान उस समय उसका अनुग्रह पात्र था, किन्तु बेगम की अपवित्र प्रीति को सन्तुष्ट न कर सकने के अपराध में मीर भिकारीख़ान को काममूढ़ बेगम ने अपने महल की लौंडियों से मरवा डाला। *

दूसरे दरबारियों के साथ भी उसका बरताव पलट गया। "लग भग सब ने ही दरबार में जाना छोड़ दिया, जहां कि न केवल उनकी आबरू ही वरन् उनकी जान तक भी संशय में रहती थी। और देहली के दरबार में बेगम के चरित्र के विरुद्ध आये दिन आवेदन पत्र भेजे जाने लगे। ग़ाज़ीउद्दीन का जो सफ़दरजंग को उखाड़ कर प्रधान मंत्री की पदवी तक पहुंच गया था मीर मन्नू की पुत्री के साथ विवाह ठैरा हुआ था। वह अपनी चिन्तित सास का बड़ा आदर करता था; इसलिये उसने अपने विश्वास्य नौकरों में से एक सय्यद अमील को भेजा कि वह बेगम को अपनी सम्मति से सहायता दे। इस प्रकार बिगड़ी हुई अवस्था कुछ समय के लिये सुधर गई, किन्तु स्वेच्छाचारी बेगम उस नये सलाहकार से शीघ्र ही उकता गई और उसने वज़ीर से उसको हटा देने के लिये कहा। बेगम ने अनेक बार विनती की किन्तु वज़ीर ने एक न मानी। बेगम ने बहुत क्रुद्ध होकर अब काबुल के बादशाह को शिकायत भेजी कि देहली की सरकार मेरे शासन में हस्त-'

*अलीउद्दीन उसकी मृत्युका कारण उसकी अवशता तथा धृष्टता बतलाता है किन्तु मरे Murray और ब्राउन Brown भिकारीख़ान और मुराद बेगम के संदिग्ध सम्बन्ध का वर्णन करते हैं।

प्रोप करती है। किन्तु इसकी यह चाल शीघ्र ही खुल गई और ग़ाज़ीउद्दीन इसको दण्ड देने के लिये एक भारी सेना लेकर चल पड़ा। बेगम पकड़ कर देहली लाई गई। यहां युवा वज़ीर ने इसकी पुत्री के साथ विवाह कर लिया तथा उसे कारावास में डाल दिया। अदीनाबेगख़ान को जिसने इस स्वेच्छाचारी बेगम के विनाश में बड़ी सहायता दी थी लाहौर का शासक बना दिया गया।

इन घरेलू झगड़ों तथा परस्पर के विरोधों ने सिक्खों को फिर अपना शिर उठाने तथा अपनी लूटमार फिर से आरम्भ करने का अवसर दिया। सय्यद मोहम्मद लतीफ़ कहता है कि "इन डाढ़ी वाले लुटेरों ने, प्रांत के विविध भागों में बड़ी लूटमार मचा रक्खी थी। ये लोग जहां तहां देश को शून्य कर देते थे ग्रामों तथा नगरों को खाली कर डालते थे और गाय, बैल, बकरियों आदिक को हांका ले जाते थे।

साधारण तथा सैनिक दोनों प्रकार के शासन का अन्त हो गया। ज़मीन्दारों से एक पाई भी नहीं उगाही जा सकती थी। समस्त देश में उपद्रव, अस्तव्यस्तता तथा अराजकता फैली हुई थी।"

अहमदशाह दुर्रानी के चौथे आक्रमणने मानों विनाश के कार्य को संपूर्ण कर सिक्खों की उन्नति के मार्ग को तय्यार कर दिया। यह सुनते ही कि देहली की सरकार ने लाहौर को ले लिया है सन् १७५५ की शरद ऋतु में वह शीघ्रता के साथ पंजाब की ओर आया। अदीनाबेग अपने दीवान को लाहौर में छोड़ कर भाग गया। आक्रमक तुरन्त सरहिन्द तथा देहली तक बढ़ा चला आया। उसने राजधानी को खूब लूटा, मोहम्मदशाह की पुत्री हज़रत बेगम से अपना विवाह किया

और अपने पुत्र का एक दूसरी शाहज़ादी से विवाह कर दिया, दरबारियों से भारी भारी उपहार अथवा कर लिये. और एक रुहिका सरदार नजीबुद्दौला को अपनी ओर से मुग़ल सेनाओं का प्रधान सेनापति बना कर देहली को छोड़ दिया। मथुरा तथा आगरा के नगरों को लूटता हुआ,तथा प्रजा का संहार करता हुआ, वह हज़ारों को अपने साथ दास बना कर ले गया।

जिस समय वह पंजाब में से जा रहा था सिक्खों ने उस की सेना के पिछले भाग पर आक्रमण किया और लड़ने वालों को खड्ग के घाट उतारा। वे उसका समस्त माल असबाब लूट कर ले गये। इन सिक्ख लुटेरों की इस धृष्टता पर नादिर का बड़ा क्रोध आया किन्तु ठीक उस ही समय तुरकिस्तान में एक विद्रोह खड़ा हो गया था। इस कारण सन् १७५७ में वह शीघ्रता के साथ काबुल को लौट गया और पंजाब का शासन अपने पुत्र तैमूर को सौंप गया। तथा जहान ख़ान को तैमूर का रक्षक नियुक्त कर गया।

तैमूर को अब दो शत्रुओं को अधीन करना था। एक अदीना को जिसने अपने स्वामी के साथ विश्वास घात कर उसे देहली की सरकार के सुपुर्द कर दिया था, और दूसरे उन सिक्खों को जिन्होंने उसके पिता का असबाब लूट लिया था और जो उस समय भी मुसलमान राज्य में लूट मार मचा रहे थे।

उसकी दृष्टि पहिले सिक्खों की ओर गई। जस्सासिंह बढ़ई ने अमृतसर में फिर से रामरौनी का दुर्ग खड़ा कर लिया था और उसका नया नाम 'रामगढ़' रख लिया था। *

* दूसरी दुर्ग के नाम पर जस्सा सिंह के स्थापन किये हुए जथे ने

इस स्थान पर आक्रमण किया गया, दुर्ग को भूमि के बराबर कर दिया गया और वहां के मन्दिरों को ढाकर उनका मलवा अमृत के तालाब में फिंकवा दिया गया। अपने धर्म का इस प्रकार अपमान किये जाते हुए देख सिक्ख कोप में भर गये और पहाड़ों में भाग गये।

इस अवसर में अदीनाबेग ने जालन्धर से दुर्रानी के प्रतिनिधि नासिर अली को सिक्खों की सहायता से जो उस समय अधिकतर उसकी सेना में भरे हुए थे निकाल दिया और इस प्रकार अपने इस पुराने प्रांत को फिर से अपने अधीन करलिया।

इसलिये सिक्खों को दमन करने के पश्चात् तैमूर ने अदीना बेग की ओर ध्यान दिया। अदीना लाहौर बुलाया गया किन्तु वह जानता था कि लाहौर में उसके साथ क्या सलूक होने वाला था, इसलिये उसने न जाने का यह बहाना किया कि सिक्खों के उपद्रव इतने बढ़ गये हैं कि उन उपद्रवों के कारण मेरा इस प्रांत से चला जाना अत्यन्त हानिकारक होगा।' इस पर तैमूर ने उसको अधीन करने के लिये मुराद खान के नेतृत्व में एक सेना भेजी। अदीना ने अपने सिक्खों के साथ उसका सामना किया और लाहौर की सेनाको पूर्ण पराजय दी। तैमूर कोप में भर गया। उसने अपने हारे हुए सेनापति को विश्वासघात की शंका में मरवाडाला और अदीना को दण्ड देने के लिये स्वयम् सेना सहित प्रस्थान किया। अदीना बेग अपने में विरोध करनेका सामर्थ्य न देख नालागढ़ के पहाड़ों में जा छिपा।

अपना नाम धारण किया। समस्त सिक्ख यहई अपने आप को रामगढ़िया कहते हैं जैसे कि समस्त कलाल अपने आपको लाहौर के समीप अहलू नामक ग्राम के नाम पर जो उनके नेता की जन्मभूमि थी अहलूवालिया कहते हैं।

सिक्खों ने भी पहाड़ों में ही आश्रय ले रक्खा था, दोनों ओर के पराजित राजद्रोहियों का अब निर्वासन में मेल हुआ। और उन्होंने मिलकर लाहौर के दुर्रानी शासक पर आक्रमण करने की ठानी। सिक्ख पहिलेही बदला लेने के लिये उधार खाये बैठे थे। वे केवल थोड़े से समय के लिये दम लेना तथा कुछ प्रोत्साहन चाहते थे। वे अब अपनी कमर कसकर दुर्रानी प्रजा पीड़क को नाश करने अथवा इस प्रयत्न में स्वयं नष्ट हो जाने का दृढ़ संकल्प कर पहाड़ोंसे उतर आये। उन्होंने अपने आप को दो दलों में बांट लिया, एक दल जस्सा सिंह कलाल के नेतृत्व में और दूसरा जस्सा सिंह रामगढ़िया और अदाना बेगके अधीन। पहिला दल लाहौरकी ओर चला। आस पास देश में सवारही सवार दिखायी देनेलगे। यह युद्ध एक धर्मयुद्ध था और गुरु गोविन्दसिंहके समस्त अनुयायी उस अपमानका जो उनके धर्मका किया गयाथा बदला लेनेके लिये इकट्ठे हुए। जहानखान उनसे लड़ने आया। एक बार तो उनका तितर बितर करदेने में जहानखान को सफलता हुई किन्तु शीघ्रही फिर से सिक्खोंकी एक बहुत बड़ी सख्या इकट्ठी हुई। उन्होंने नगर को चारों ओर से घेर लिया, नगर के बाहर से हर प्रकार का आना जाना बन्द करदिया और लाहौर के इधर उधर के ग्रामों से कर उगाहना तथा उसे अपनी इच्छानुसार व्यय करना आरम्भ करदिया * बहुतसी छोटी छोटी लड़ाइयों के पश्चात् १८५८ के आरम्भ में एक घोर युद्ध हुआ। "पठानों की पूर्ण पराजय हुई और इतिहास में सिक्खों की यह पहिली असंदिग्ध विजय थी जो उन्होंने अफ़ग़ानों पर प्राप्त की।†

*सय्यद मोहम्मद लतीफ़, पृ० २३०।
†सय्यद मोहम्मद लतीफ़, पृ० २३०।

खालसा सेना का दूसरा दल इसही प्रकार जालन्धर दोआब में विजय का भागी हुआ ; अफ़ग़ान सेनापति सरफ़राज़ ख़ाँ की पराजय हुई और उसकी सेना तितर वितर करदीगई शाहज़ादा तैमूर और उसका रक्षक जहानख़ान दोनों की अब बुरी गति हुई और अपने में सिक्खों की बढ़ती हुई सख्या के विरुद्ध लड़ने की शक्ति न देख तथा निराश हो वे अपनी जान लेकर चेनाब की ओर बच निकले। " वे अपनी हिन्दुस्तानी सेना से भी आंख बचाकर जिनपर कि उनको विश्वास नहीं था रात्रि के समय निकल गये। और ऐसी शीघ्रता से भागे कि राज्य कुटुम्ब के लोग शत्रुओं के हाथों में पड़गये यद्यपि पीछे से इन लोगों को छोड़ दिया गया था *।

अब विजयी सिक्खों ने जस्सासिंह कलाल के नेतृत्व में लाहौर को अपने अधान करलिया और जस्सा सिंह उस देश का राजा † बना। उन्होंने मुग़लों की ही पुरानी टकसाल में अपने रुपये ढलवाये और उनपर फ़ारसी अक्षरों में यह खुदवाया।

"सिक्काज़द दर जहां बफ़ज़ले अकाल।
मुल्के अहमद गिरफ़ जस्सा कलाल॥"

यह पहिला समय था जब कि पंजाब में सिक्खों की प्रधान सत्ता स्थापित हुई। यद्यपि हमें आगे चलकर मालुम होगाकि उस प्रांत के स्थायी रूप में सिक्खों के हाथों में आजाने से पूर्व अभी कुछ समय और व्यतीत होना था।

* सय्यद मोहम्मद लतीफ़, पृ० २३०।

† उसके अनुयायी उसको " बादशाह " कहकर पुकारते थे किन्तु सिक्ख उसको ऐसा नहीं समझते थे और न वह ही ख़ालसा पर किसी प्रकार का महत्व जताता था।

अध्याय १६

सिक्खों की प्रधान राज्य सत्ता का संस्थापन ।

(१७५८-१७६८)

सिक्खों ने लाहौर ले लिया था किन्तु पूर्ण राज्य सत्ता प्राप्त कर शासन करने का अभी उनके लिये समय न आया था। अदीना बेग अभी तक यह समझता था कि मैं सिक्खों को अपनी अर्थ सिद्धि के लिये केवल यंत्र के समान प्रयोग कर रहा हूं। अब जब उसने देखा कि उसे सिक्खों ने इस प्रकार पृथक छोड़ दिया तो वह अत्यन्त निराश होगया और चकित रह गया क्योंकि वह यह समझे बैठा था कि सिक्ख मेरेही लिये लड़ रहे हैं और उनके जीतने पर प्रधान आधिपत्य मेरे ही हाथों में दिया जावेगा। उधर वज़ीर ग़ाज़ीउद्दीन के बुलाने पर मरहट्टे पहिले ही देहली में आगये थे। इसलिये अदीना बेग ने रघोबा के पास जाकर उसे मरहट्टा राज्य को सिन्धू नदी तक बढ़ा लेने के लिये निमंत्रित किया। अदीना के अधीन अभी तक सिक्खों की कुछ सेना शेष थी। वह उस सेना को लेकर रघोबा के साथ यमुना से आगे बढ़ा मार्ग में उन्होंने सरहिन्द को विजय किया और वहां के दुर्रानी शासक समुन्दरख़ान को वहां से निकाल दिया। किन्तु सिक्ख सेना ने तुरन्त नगर को लूटना आरंभ कर दिया। क्योंकि इस स्थान

स्थान पर उनके गुरु के दोनों बालकों को मारा जा चुका था और वे उसका बदला निकालने के लिये उस नगर को लूटना सदैव अपना जातीय अधिकार तथा पुण्य का कार्य समझते थे। मरहट्टों ने जब देखा कि उन्हें इस लूट में से कुछ भी अंश नहीं दिया गया तो वे क्रोध में भर गये और उन्होंने सिक्खों को नगर से निकाल दिया इसके पश्चात् मरहट्टों के पहुंचने पर सिक्ख लोग लाहौर से भी भाग गये।

अदीना बेग ने लाहौर के शालामार बाग में रघोबा के बैठने के लिये एक उच्च तथा देदीप्यमान वेदिका १,२५,००० रुपये की लागत से बनवाई। बाग में दीपमाला रचाई गई और गुलाब जल के फव्वारे छोड़े गये। दुर्रानी शाहज़ादा तथा उसका रक्षक जहानख़ान दोनों पंजाब से चल दिये और लाहौर मुलतान तथा अटक पर मरहट्टों का झंडा लहराने लगा। रामजी शामजी को मुलतान का साहिबा पटेल को अटक का और अदीना बेग को लाहौर का शासक नियुक्त किया गया। *

यद्यपि सिक्ख लाहौर से निकाल दिये गये थे तथापि वे निष्क्रिय बैठे हुए न थे। दोनों 'जस्सासिंह हरीसिंह भंगी, जयसिंह कन्हैया, हीरासिंह निकाई, खुशालसिंह फ़ज़ुल पुरया, आलासिंह फुलकिया, तथा रणजीतसिंह का पिता-

* अमीरुद्दीन के इबरतनामे में लिखा है कि अदीना को जालन्धर दोआब का और मिरज़ाख़ान को लाहौर का शासक बनाया गया था, किन्तु मिरज़ाख़ान शीघ्र ही निकाल दिया गया था और उसके स्थान पर साबू राव्यो दादू और गोशा पंडित नियुक्त किये गये। किन्तु यह ठीक प्रतीत होता है कि अदीना कई महीने तक अर्थात् सन् १७५८ के अन्त में अपनी मृत्यु के समय तक लाहौर का शासक रहा।

मह चरतसिंह सुकेरचा किया जैसे योग्य तथा साहसी नेताओं के अधीन ये लोग प्रत्येक स्थान में प्रबल गिने जाते थे और देश के प्रत्येक भाग में वे रोक टोक धाड़े मारते थे। किन्तु अदीना को अब सिक्खों से सहायता की आवश्यकता न थी इसलिये उसने अब अपने इन पुराने मित्रों से बदला लेना चाहा। वह उनकी धृष्टता के लिये उन्हें दंड देना चाहता था और उनके उस समय के अवमकन्दों तथा लूट मार को रोकना चाहता था। सब से अधिक उपद्रव माझा देश में उठा हुआ था। इस समय सिक्खों ने गुरु द्वारा फिर से बना लिया था और अमृतसर* के तालाब को भी साफ़ करा लिया था और मुसलमानों के साथ में वैसा ही सलूक कर रहे थे जैसा कि उन्होंने इनके साथ में किया था। † इसलिये अदीना बेग ने मीर अज़ीज़ बख़्शी के अधीन एक प्रबल घुड़सवारों की सेना यह आज्ञा देकर भेजी कि जहां कहीं उसे सिक्ख मिलें वहां ही उनका विध्वंस कर दे। सय्यद मोहम्मद लतीफ़ बटाले (जो कुछ समय तक अदीना का मुख्य निवासस्थान रहा) के मौलवी मोहम्मद दीन के सहकालीन इतिहास में से उद्धृत करते हुए लिखता है कि "चार हज़ार अग्रगामी अपने तेज किये हुए कुलहाड़े आदिक लिये मीर के आगे आगे बन जंगलों को साफ़ करने के लिये चले जहां पर कि सिक्ख छिपे हुए थे। हज़ारों सिक्ख इस प्रकार पकड़ लिये गये और बड़ा

* मुफ़्ती अलीउद्दीन कहता है कि इमारतें इत्यादि मरहट्टों ने फिर से बनवा दीं थीं।

† मुसलमानों से ही खन्न के जोर तालाब इत्यादि को साफ़ कराया गया था, जिनको कि इनके ही सहधर्मियों ने नाश किया था। सय्यद मोहम्मद लतीफ़।

क्रूरता के साथ मार डाले गये। जो विशेष साहसी थे उन्होंने भाग कर रामरौनी (जो अब रामगढ़ कहलाता है) के दुर्ग की कच्ची दीवारों में जा शरण ली। इन भागने वालों में से मुख्य ये थेः—नौधसिंह रामगढ़िया, जस्सासिंह और उसके भाई मलनासिंह व तारासिंह, जयसिंह कन्हैया और अमरसिंह किङ्गा किन्तु इन लोगों का भी शीघ्र ही पता लगा लिया गया और इनमें से बहुतों का संहार कर शेष को तितर बितर कर दिया गया।

१७५८ के अन्त में अदीना का देहान्त हो गया और सदा सावधान सिक्खों में फिर से उद्योगिता उत्पन्न हो गई। एक ओर जस्सासिंह बढ़ई तथा जयसिंह कन्हैया और दूसरी ओर जस्सासिंह कलाल नये नये प्रदेशों में ख़ालसा के झंडे को ले जाने लगे। इस ही समय में अहमदशाह यह समाचार सुन कर कि सिक्खों ने उसके पुत्र को निकाल दिया है और मरहट्टों ने लाहौर ले लिया है अपने खोए हुए प्रान्त को फिर से प्राप्त करने के लिये १७५९ को सर्दियों में फिर एक बार इस देश पर उतर आया। उसके निकट आते ही मरहट्टा शासकों ने पंजाब ख़ाली कर दिया। उसने कुछ समय के लिये हाजी करीमदादख़ान को लाहौर का शासक बना दिया और आप वजीर ग़ाजीउद्दीन को दण्ड देने तथा मरहट्टों को अधीन करने के लिये शीघ्रता के साथ देहली गया। मरहट्टे उससे १७६१ के आरंभ तक भिड़ते रहे अन्त में पानीपत पर एक घोर तथा सुप्रसिद्ध युद्ध हुआ जिसमें मरहट्टों की आकांक्षाएं सदा के लिये टूट गयीं।

जब दुर्रानी तथा उसके प्रतिनिधि लाहौर से लग भग एक एक सैनिक को साथ लेकर देहली चले गये उस समय

महाराजा रणजीत सिंह

पंजाब फिर सहज ही सिक्खों का शिकार बन गया* और सिक्खों के मुख्य मुख्य नेता अर्थात् जस्सासिंह कलाल, चेतसिंह कन्हैया, हरीसिंह भंगी, गूजरसिंह भंगी तथा लेहनासिंह भंगी वैसाखी के दिन (अप्रेल १७६० के मध्य में) अमृतसर में एकत्रित हुए। एक अधिवेशन हुआ जिसमें लाहौर पर आक्रमण करने का निश्चय किया गया और सिक्ख नेताओं ने ग्रन्थ साहब के सामने खड़े होकर आक्रमण में विजय प्रदान करने के लिये ईश्वर से प्रार्थना की। शीघ्र ही वे अपनी सेनाओं को इकट्ठा कर अरदिन नगर पर आपड़े। वहां के दुर्गों को जला दिया गया और नगर को खूब लूटा गया। किन्तु नगर वालों ने सिक्खों की अधीनता स्वीकार कर ली और विजेताओं की सेवा में पीरज़ादा गुलाम हुसेन सरहिन्दी, मियां मोहम्मद नक़ी, मीर नथूशाह, मियां शहरयार, और हाफ़िज़ कादिर बख़्श इत्यादि मिल कर एक निवेदन पत्र लेकर पहुंचे ३०,००० रुपये का नज़राना सिक्खों को भेंट किया गया, और सिक्ख यह जान कर कि दुर्रानी शीघ्र ही लौट आवेगा उस नज़राने तथा लूट के माल को लेकर चल दिये।†

सिक्खों ने अब अपनी दृष्टि आस पास के परगनों की ओर की। जस्सासिंह बढ़ई तथा जयसिंह कन्हैया के नेतृत्व में एक दल ने बटाला, कलानौर, हरगोविन्दपुर, क़ादियान, तथा अमृतसर और गुरदासपुर के ज़िलों के और कई नगरों को ले लिया जिनकी वार्षिक आय छै लाख से दस लाख रुपये

* लाहौर के नवीन शासक करीमदाद तथा पसरूर के शासक तक को पानीपत बुला लिया गया था। और अमीर मोहम्मदख़ान को उस थोड़े से समय के लिये लाहौर का शासक बना दिया गया था।

† अलीउद्दीन का इबरतनामा।

गढ़ की थी।* खालसा सेना के दूसरे भाग ने जस्सासिंह कलाल के नेतृत्व में सरहिन्द तथा गोपालपुर को लूटा और फ़ीरोजपुर के ज़िले में डोगर तथा नैपाल को अधीन कर लिया जहां पर कि उन्होंने दुर्ग भी बनाये। जस्सासिंह कलाल ने होशियारपुर तथा ज़िला जालंधर के एक भाग को भी अपने अधीन कर लिया और कपूरथले के मुसलमान सरदार राय इब्राहीम भट्टी से कर वसूल किया। १७६१ की बसन्त ऋतु में अब्दाली देहली से लौट आया। पंजाब उसको दे दिया गया और यद्यपि उस ने लाहौर तथा उसके आस पास के नगरों में सिक्खों की लूट मार का सब वृत्तान्त सुन लिया था तथापि वह उनको दंड देने के लिये नहीं ठहरा। वह ज़ैनखान को सरहिन्द का, सरबुलन्द ख़ान को मुलतान का तथा ख़्वाजा उबेदख़ान को लाहौर का शासक नियुक्त कर आप मई १७६१ में काबुल को चला गया। उधर दुर्रानी ने पीठ मोड़ी ही थी कि सिक्खों ने फिर अपना कार्य आरम्भ कर दिया। भीमसिंह तथा सरूपसिंह लाहौर के आस पास दुर्ग बनाने लगे और रणजीतसिंह के पितामह चरतसिंह ने लाहौर † से उत्तर की ओर चालीस मील पर गुजरानवाला में एक मट्टी का दुर्ग बना लिया, और पंजाब के प्रत्येक भाग में सिक्खों के दुर्ग बरसाती मेंढकों के समान जहां तहां दिखाई देने लगे।

अब्दाली बादशाह बुद्धिमत्ता के साथ पंजाब को लेकर ही सन्तुष्ट हो गया था जो कि उसको देहली की सरकार ने १७६१ में दे दिया था। किन्तु अब पंजाब भी उसके हाथ से

---

* सय्यद मोहम्मद लतीफ़।

† अलीउद्दीन का इबरतनामा।

जाता दिखाई देने लगा। सिक्खों को प्रत्येक स्थान में प्रबा देख कर अब्दाली ने अपने एक विश्वास्य सेनापति नूरुद्दी खान बमिज़ाई को सिक्खों को अधीन करने के लिये एक प्रबर सेना देकर भेजा। १७६२ के आरंभ में एक घोर संग्राम हुआ जिसमें अफ़ग़ान हार गये और उन्होंने अपने आपको सियार कोटके दुर्ग में बन्द कर लिया। किन्तु वहांसे भी वे जम्मू क पहाड़ों की ओर निकाल भगाये गये।

सिक्खों का साहस अब अत्यन्त बढ़ गया और उन्हों सरकार के समस्त वार्षिक कर को मार्ग में रोकना आरंभ क दिया। * इस प्रकार विवश हो लाहौर के दुर्रानी शासक ने १७६२ के मध्य में एक भारी सेना तथा बारह तोपों के साथ गुजरानवाला पर चढ़ाई की। उस समय बाबा शामसिंह जो गुरुओं का वंशधर होने के कारण सिक्खों में बड़ा मान्य समझा जाता था उबेदख़ान के पास क़ैद था। जब लाहौर की सेना गुजरानवाले के समीप पहुंची, तो सिक्खों † ने उस का १५०० सवारों सहित सामना किया और उबैदख़ान से उस पूज्य पुरुष के छोड़ देने के विषय में वे पत्र व्यवहार करने लगे जब कि चरतसिंह केवल २५ मनुष्यों के साथ दुर्ग के भीतर रहा। इतने में रात्रि के आजाने से अफ़ग़ानों में यह भय फैल गया कि रात्रि को ही उनपर आक्रमण किया जावेगा‡ और समस्त अफ़ग़ान अपनी सारी सामग्री तथा तोपों इत्यादि को सिक्खों के लूटने के लिये छोड़ इधर उधर

---

* अलीउद्दीन का इबरतनामा।

† जस्सासिंह अहलूवालिया और हरीसिंह तथा गुजरसिंह भंगी के नेतृत्व में इबरतनामा अलीउद्दीन।

‡ अलीउ लिखता है कि सचमुच आक्रमण हुआ था।

भाग गये। लाहौर के सेनापतियों में से एक साहिबसिंह नामक अफ़ग़ानों का साथ छोड़ अपनी सेना लिये सिक्खों में जा मिला। दीवान सूबाराय तथा हरीराम चोबदार मारे गये और उबैदख़ान रात्रि के अंधेरे में जुकालियान को भाग गया, और वहां से मियानग़ान चट्ठा के तीन सौ या चार सौ सवारों के साथ लाहौर चला गया जहां से कि पूरे एक साल तक उसने फिर बाहर निकलने का साहस नहीं किया।*

इस विजय के पश्चात् सिक्ख अमृतसर में इकट्ठे हुए और पवित्र तालाब में स्नान कर उन्होंने अपनी पहिली विधिवत "गुरमत" अर्थात राज सभा की। † मालियर कोटले के हींगनख़ान ने अस्सा कलाल के सर हिन्द पर आक्रमण करने के समय वहां के शासक को सहायता दी थी। इस लिये सब से पहिले उसही को दण्ड देने का निर्णय किया गया, और फिर जंडियाला के महंत अकिलदास को ख़ालसा के साथ विश्वासघात करने तथा दुर्रानी बादशाह का साथ देने के अपराध में दंड देने की ठानी गयी।

जहां जहां हींगन ख़ान का राज्य था उन उन स्थानों को लूटा गया और जंडियाला को चारों ओर से घेर लिया गया। प्रतीत होता है कि जस्सा सिंह राम गढ़िया जिसने वर्षों तक मुसलमानों की सेवा की थी अब भी दुर्रानी बादशाह से मित्रता बनाये रखना चाहता था। इसलिये उसने जंडियाला

*इबरतनामा। अलीउद्दीन मुफ़्ती।

†मैलकम लिखता है कि सब से पहिली गुरमत स्वयं गुरुगोविन्द सिंह ने ही की थी। गुरु के मरने के पश्चात् मेरा विचार है कि इस प्रकार की पहिली सभा १७६० की बैसाखी में लाहौर पर आक्रमण करने से पूर्व हुई थी।

के महंत को पहिले ही से गुप्त सूचना भेज दी थी कि तुम पर आपत्ति आने वाली है। महंत ने तत्काल एक आवश्यक निवेदन पत्र अहमदशाह को भेजा जिस में उसने अपनी करुणायोग्य दशा का प्रकाश किया और समय पर बादशाह की सहायता की प्रार्थना की।*

दुर्रानी फिर हिन्दोस्तान को लपका और १७६२ के अन्त में लाहौर पहुंच गया। उसके पहुंचते ही सिक्ख भाग गये और अपने उन भाइयों को जो सरहिन्दके दुर्रानीशासक ज़ैनखान को घेरे हुये थे सहायता देने के लिये सतलज के पार उतर आये। अबदाली ने इस समय उस वेग के साथ कूंच किया जिस वेग के लिये कि वह अत्यंत प्रसिद्ध था अर्थात् ढाई दिन के भीतर लग भग १५० मील चलकर उसने लुधियाने के समीप सिक्खों को ठीक उस समय आ लिया जब कि वे ज़ैनखान से लड़ने वाले ही थे। एक अत्यत घोर युद्ध हुआ किन्तु अंत में सिक्ख हार गये और उनके हज़ारों सैनिक युद्ध क्षेत्र में काम आये।† इस युद्ध में सिक्खों को इतनी

---

*इबरतनामे में एक शेर लिखी है जो शायद इसही पत्र में से ली गयी होगी।

"बरलब रसीदा जानम् तो बिया कि जिन्दा मानम्,"

"पस अजा कि मन न मानम् व चे कार आई मरा"

अर्थात् "मेरी जान लबों पर है, आप आइये ताकि मैं जिन्दा रह सकूं।

अगर मेरे मरने के पीछे आये तो मेरे किस काम के"।

†जो सिक्ख इस युद्ध में मारे गये उनकी संख्या के विषय में इतिहास लेखको के बीच बड़ा मत भेद है। कनिंघम १२ और २५ हजार के बीच में लिखता है तारीख़े अहमदी ३०,०००; लतीफ और कन्हैया लाल, २४००० मेलकम २०,००० से ऊपर, इबरतनामा ३०,०००; मालेर कोटले के एक

अधिक बाधा पहुंची कि आज दिन तक उस आपत्ति को "घुल्लू घारा" अर्थात् महा बलिदान के नाम से स्मरण किया जाता है। पटियाले के वर्त्तमान राजवंश के आदिपुरुष आला सिंह को बुटाला में पकड़ लिया गया और हथकड़ी डाल कर लाहौर ले जाया गया। किन्तु उसकी धर्मपत्नी ने चारलाख रुपये का भारी दंड भर दिया और शाह ने भी क़ैदी राजा के वीर आचरण से प्रसन्न हो तथा प्रधान वज़ीर के बीच बचाव करा देने पर उसको क्षमा कर दिया और उसे उसकी समस्त जागीरें लौटाकर 'राजा' की उपाधि प्रदान की। इसके पश्चात् वह विजेता पंजाब को लौटा और अमृतसर में उतरा जहां पर कि कुछ सिक्ख दीपमाला मनाने के लिये फिर एकत्रित हो गये थे। उसके पहुंचते ही सिक्ख भाग गये और विजय भागी अफ़गान ने अपना क्रोध ठंडा करने के लिये तथा अपने अनुयायियों के निष्ठुर पक्षपात को सन्तुष्ट करने के लिये अमृतसर के फिर से बनाये हुये मंदिरों को ढवादिया, तालाबों में गौएं मारकर डलवादीं, अगणित मानारों को वध किये हुए सिक्खों के शिरों से ढांप दिया तथा भ्रष्ट की हुई मसजिदों की दीवारों को अपने काफ़िर शत्रुओं के रक्त से धुलवाया* इस बीच, कन्धार में कुछ उपद्रव खड़ा हो गया था इस कारणनुरुनीन काबुली मल† को लाहौर का शासक नियुक्त कर आप १७६३ के आरंभ में झट पट अपने देशीय राज्य को लौट गया।

मुसलमान सैनिक ने जो स्वयं इस लड़ाई में लड़ चुका था मरे Murray को विश्वास दिलाया था कि केवल १२०,०० सिक्ख मारे गये तथा घायल हुये थे। (देखो Princep P. 20)

*कनिंघम पृ० १०१

†काबुल का एक ब्राह्मण था, Hugal P. 271

यद्यपि सिक्ख अत्यन्त निर्बल हो गये थे तथापि वे सर्वथा निराश न हुये थे। मेलकम लिखता है कि "सिक्ख जाति अपने आरंभ के समस्त इतिहास में सदैव एक दबायी हुई ज्वाला के समान रही है अर्थात् उसको कुचलने के जितने प्रयत्न किये गये प्रत्येक प्रयत्न के पश्चात् वह पूर्व की अपेक्षा अधिक ज्योति के साथ चमकता हुई दिखायी देती थी"। सिक्खों में अब यह भाव उत्पन्न हो गया था कि वह एक, 'जाति' हैं, और वह इस बात को समझने लगे थे कि अब वह केवल एक डाकुओं के दल के समान ही नहीं लड़ते फिरते थे जिनका कि प्रत्येक व्यवस्थित सरकार पीछा करती रहे तथा उन्हें कष्ट देती रहे वरन उनको भी राज्य करने का उतना ही अधिकार था जितना कि किसी मुसलमान शक्ति को और वे इन मुसलमानों को विशेष कर दुर्रानियों को केवल अनाधिकारी आक्रमक तथा राज्यापहारी ही समझते थे। इसके साथ ही वे अपनी शक्ति को अच्छी तरह पहचानते थे और आलासिंह को राजा की उच्च पदवी दिये जाने से उनको यह पूरा विश्वास होगया था कि भयंकर दुर्रानी तक उनका आदर करता तथा उनसे भय करता था। वे तुरंत बड़ी बड़ी संख्याओं में एकत्रित हुये और क़सूर पर धावा कर उसे लूट ले गये। इस के पश्चात् उन्होंने अपना कोप मालेर कोटले के वृद्ध सरदार पर उतारा। हींगन को मारडाला और मालेर कोटले को लूट लिया।

इसके पश्चात दिसम्बर १७६३ में सिक्खों ने अहमदशाह के प्रतिनिध ज़ेतखान से बदला लेने के लिये सरहिन्द पर चढ़ाई की। दोनों जस्सासिंह, आलासिंह जो इस समय

पटियाले का राजा था और लग भग समस्त जथों* के नेताओं ने मिलकर इस घृणाई नगर पर पर आक्रमण किया। जैनखान ने खालसा सेना के साथ युद्ध किया किन्तु वह और उसका उपसेनापति लक्ष्मीनारायण दोनों मार दिये गये और सतलज से यमुना तक का समस्त देश सिक्खों के हाथों में आ गया जिसको कि सिक्ख सरदारों ने आपस में बांट लिया† सरहिन्द के नगर को उजाड दिया गया किन्तु आलासिंह ने इस उजडे हुए नगर को अंतिम गुरु के वृद्ध साथी भाई बुधसिंह से जिसको कि विजेताओं ने यह नगर भेंट कर दिया था २५००० रुपये में मोल ले लिया। अपनी इस विजय के हर्ष में भरे हुए सिक्ख यमुना के पार उतरे और सहारनपुर के आस पास के समस्त देश पर उन्होंने धावे

---

*कनिंघम सिक्ख सेना की संख्या लग भग ४०००० बताता है।

†कनिंघम लिखता है कि "यह कथा अभी तक परम्परा से चली आती है, कि इस लड़ाई में जीतते ही सिक्ख लोग किस प्रकार बिखरे, और किस प्रकार प्रत्येक सवार रात दिन घोडे की पीठ पर रहकर एक एक ग्राम में अपनी पेटी मियान पहरने के कपडे इत्यादि उतार उतार कर फेंकता जाता था यहा तक कि उसके शरीर पर प्राय कुछ भी शेष न रहता था इस अभिप्राय से कि वे ग्राम उसके समझे जायें"। मुफ़्ती अलीउद्दीन कहता है कि "ये सवार जिन जिन ग्रामों में जाते थे वहा के जमीनदारों से पहिले धन मागते थे। यदि वहा कुछ धन न मिलता था तो थोडा सा गुड ही माग लेते थे और यदि यह भी न मिलता था तो रोटियां ही ले लेते थे। गाव वाले ड रते थे किन्तु सिक्ख सवार तुरत लौटता था और उन छोटी छोटी भेंटों को अधीनता स्वीकार करने के चिन्ह मानकर इस प्रकार उन उन ग्रामों पर जिन में से वह हो आया था अपना शासन जमा लेता था। अलीउद्दीन उन विविध नगरों तथा ग्रामों के नाम भी देता है जो इस विजय के पश्चात् पृथक् पृथक् प्रत्येक सरदार ने लिये थे।

मारे। नजीबउद्दौला जो उस समय भरतपुर के जाटों से युद्ध कर रहा था अपने प्रदेश को बचाने के लिये दौड़ आया और सिक्खों को कुछ धन देकर उसने उन्हें अपने प्रदेश से बाहर कर दिया। उसने फिर जाकर जाटों से युद्ध आरम्भ कर दिया और उनको हरा दिया तथा उनके प्रसिद्ध सरदार सूरजमल को मार डाला किन्तु सूरजमल के पुत्र ने सिक्खों तथा मरहट्टों की सहायता से देहली को जा घेरा और वहां के रुहिल्ले सरदार को बड़ा कष्ट पहुंचाया।

सरहिन्द के हाथ से निकल जाने तथा अपने रुहिल्ले प्रतिनिधि की आपत्ति का समाचार सुनकर दुर्रानी फिर सातवीं बार १७६४ में हिन्दोस्तान आया। इसही काल में आक्रमकों के परस्पर विरोध के कारण देहली का परिवेष्टन उठा लिया गया था और अफ़ग़ानिस्तान में भी फिर से राज-विद्रोह खड़े हो जाने के कारण अहमदशाह ने सरहिन्द को फिर से प्राप्त करने का कोई यत्न नहीं किया। उसने आला-सिंह को 'महाराजा' की उपाधि दी तथा उसे अपने ही नाम का सिक्का चलाने की अनुज्ञा दे दी और उसही को अपने सामत रूप से सरहिन्द का शासक भी स्वीकार कर लिया।

इस बीच सिक्खों ने लाहौर के आस पास अपना आधि-पत्य स्थापन कर लिया था। काबुलीमल पर ज़ोर देकर उन्होंने उससे उन क़साइयों को दण्ड दिलवाया था जो नगर में गोवध करते थे। सरदार हरीसिंह भंगी का प्रतिनिधि टेकचन्द नामक शासक को राज्यकार्य में सहायता देने के लिये लाहौर के दरबार में रहता था। शाहआलमी दरवाज़े पर सोभासिंह का एक मुंशी अफ़ग़ान कर्मचारियों के साथ बैठा करता था और सोभासिंह की ओर से चुंगी की आय का

एक नियत भाग लिया करता था। लौटते समय लाहौर को जाते हुए शाह को वहां की यह दशा मालूम हुई। उसने कलानौर तक सिक्खों का पीछा किया जहां पर कि घुलाकोचक के समीप एक युद्ध हुआ और उसमें १५०० सिक्ख मारे गये किन्तु वहा की अवस्था सुधारने के लिये इससे अधिक उसने न कुछ किया और न कुछ कर ही सकता था। काबुलीमल ही वहा का शासक रहा और शाह फ़ट पट अपने देश को लौट गया।

शाह ने अपनी पीठ मोड़ी ही थी कि सिक्ख फिर लाहौर के समीप एकत्रित होगये। भंगी वंश के लैहनासिंह तथा गूजरसिंह ने अपनी अपनी सेनाओं सहित लाहौर के समीप बागवानपुर में डेरे डाले और सुलतान, गुलाम रसूल, अशरफ, चत्र् तथा बाकर नामक उस ग्राम के अराईन को जो दुर्ग में माली का काम करते थे अपनी ओर गांठा। तथा नन्दराम पूर्बिये को भी जो दुर्ग का थानेदार था अपनी ओर मिला लिया। रात्री के समय दुर्ग की दीवार तोड दी गई और गूजरसिंह ने चुने हुये पचास योद्धाओं को लेकर दुर्ग में प्रवेश किया। जैसा कि पहले से प्रबन्ध किया जा चुका था उसके अनुसार लेहनासिंह को खबर देने के लिये जो पूरी सेना लिये दुर्ग के बाहर बाट जोह रहा था उस मंडप को आग लगा दी गयी जिसमें अहमदशाह लाहौर में जाकर ठहरा करता था। इस पर खालसा की समस्त सेना अन्दर दौड पड़ी। काबुलीमल कहीं गया हुआ था। उसके भतीजे अमरसिंह तथा उसके जामाई जगन्नाथ ने कुछ देर सामना किया किन्तु वे शीघ्र ही हार गये और दुर्ग के ऊपर खालसा का झंडा लगा दिया गया*

* इस मनोरञ्जक धावे का विशद वृत्तान्त देखने के लिये अहीउद्दीन का इबरतनामा देखो।

शहर को लूटा जाने लगा, किन्तु कुछ हिन्दू मुसलमान रईसों* के मध्यस्थ बनने पर कुछ समय पीछे लूट बंद कर दी गयी। नगर तथा उसके चारों ओर के प्रदेश को तीन भागों में बांटा गया। लाहौर के दक्षिण की ओर का भाग नियाज़बेग तक सोभासिंह के हिस्से में आया, काबुली मल की हवेली और नगर का पूर्वीय भाग, गूजरसिंह† को दिया गया। और लेहना सिंह ने दुर्ग तथा शाही मसजिद ‡ हथियायीं। इस विजय द्वारा सिक्खों का राज्य जेहलम के तट तक फैल गया अर्थात् उस नदी और यमुना के बीच के समस्त देश में अब खालसा का ही प्रभुत्व था।

तत्पश्चात् विविध दलों (मिसलों) के सिक्खों ने मिल कर १७६५ में अमृतसर में एक जातीय सभा की और खालसा की दी हुई एक व्यवस्था अनुसार उन्होंने अपने धर्म को ही प्रधान धर्म माने जाने की घोषणा की। राज्याधिकार ग्रहण किये जाने के चिन्ह रूप एक नया सिक्का ढाला गया जिस पर फ़ारसी अक्षरों में यह खुदा हुआ था:—

"देगो तेगो फ़तहो नुसरत वेदरंग
याफ़्त अज़ नानक गुरु गोविन्दसिंह"

* अर्थात् चौधरी रूपा, लाला बिशनसिंह, महाराजसिंह, हाफ़िज़ क़ादिर बख़्श और मीर नत्थू शाह इनमें से आख़िरी एक बड़ा प्रसिद्ध सत हुआ है। (इबरतनामा)

† लाहौर के पूर्व और पास ही एक स्थान अब भी 'क़िला गूजरसिंह' कहलाता है।

‡ जो निस्सन्देह अब मसजिद नहीं रही थी और १८४६ ई० तक सिक्खों के मेगज़ीन का एक भाग बनी रही।

अर्थात् "गुरु गोविन्द सिंह ने नानक से अनुग्रह बल, तथा शिघ्र विजय प्राप्त थी"।

लग भग दो वर्ष शान्ति में व्यतीत हो गये किन्तु १,७६७ में अब्दाली पंजाब को जो उसके राज्य में सब से अधिक समृद्ध प्रांत था फिर से प्राप्त करने का अन्तिम प्रयत्न करने के लिये फिर एक बार हिन्दुस्तान के मैदानों में उतर आया। किन्तु वह अब वृद्ध होता जाता था और इस समय भी नाक के एक फोड़े के कारण कुछ रुग्न था तथा सिक्ख भी इस समय तक यमुना से जेहलम तक समस्त देश के स्वामी बन चुके थे। इसलिये दुर्रानी के लिये अब खोये हुये प्रान्त को शस्त्र के बल फिर से प्राप्त कर लेने की कोई सम्भावना न थी। इसलिये उसने सामोपचारों द्वारा ही अपनी प्रभुता बनाये रखना चाहा। लाहौर के सिक्ख शासक उसके आते ही भाग गये थे। जब वह लाहौर पहुंचा तो उसने लैहना-सिंह को अपने सन्मुख बुलवाया* किन्तु वह नहीं गया।

---

*बहुत से लाहौर निवासी मिलकर शाह के पास गये और उन्होंने उससे निवेदन किया कि लेहनासिंह एक बहुत अच्छा तथा दयालु शासक है। इतना अधिकार रखते हुये भी वह हिन्दू तथा मुसलमानों में कभी कोई भेद नहीं रखता। ईदुलज्जा के दिन उसने क़ाज़ी, मुफ़्ती तथा मसजिदों के इमामों को पगड़िया बांटी और समस्त नगर वासियों का बड़ा आदर किया। अहमद शाह को बड़ा शोक हुआ कि ऐसा सर्व प्रिय शासक क्यों भाग गया। इस पर उसने लेहनासिंह को एक पत्र भेजा जिस में बड़े आदर के साथ लाहौर का शासन उसके अर्पण किया किन्तु लेहना सिंह ने शाह का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया"। और उत्तर में यह लिख दिया कि यदि "मैं एक मुसलमान बादशाह की भेंट स्वीकार करलूं तो अपने सहधर्मियों की दृष्टि में गिर जाऊंगा"। इबरतनामा। अहमदशाह ने उसे फलों की एक डाली भी भेजी, किन्तु उसने यह यह कह कर लौटादी कि 'फल बादशाहों के चोंचले हैं मैं तो

दादन ख़ान को लाहौर* का तथा शुजा ख़ान को मुलतान का शासक नियुक्त किया गया, और आलासिंह के पुत्र अमर सिंह को पटियाले तथा सरहिन्द के शाधिपत्य में सुदृढ़ कर दिया गया। इस समय उसकी सेना का एक दस्ता† उसको छोड़ कर काबुल को लौट गया, और अहमद शाह अपने देश में कुछ उपद्रव उठने के भय से झट पट उनके पीछे ही पीछे घर को लौट गया।* उसने अपनी पीठ मोड़ी ही थी कि सिक्खों ने उसका पीछा किया और उसकी सेना के पिछले भाग पर आक्रमणकर उसका माल असबाब लूट लिया। और उसके अटक के पार होते ही सिक्खों ने चरतसिंह तथा औरों के नेतृत्व में 'रोहतास' के दुर्ग पर आक्रमण किया और वहां के दुर्रानी शासक सरफ़राज़ख़ान को बाहर निकाल दिया। लाहौर के तीनों संयुक्त सिक्ख शासकों ने नगर को फिर से ले लिया और रोहतास के अधीन हो जाने से ख़ालसा का राज्य अब अटक के तट तक फैल गया। इस प्रकार १७६८ में ख़ालसा का प्रजाप्रभुत्व राज्य यमुना से अटक तक फैला हुआ था। धन्य है गुरु नानकके उत्तराधिकारियों की योग्यता, गुरू गोविन्द की महती सांग्रामिक बुद्धि तथा बन्दा के अजीत

एक विनीत कृषक हूं और मेरे लिये नाज ही सब से उत्तम पदार्थ है।' सय्यद मोहम्मद लतीफ़।

*दाउद ख़ान सय्यद मद लतीफ़ के अनुसार।

†कनिंघम, लतीफ़ और ह्यूगुलके अनुसार १२०००; किन्तु इबरतनामे के अनुसार केवल ४०० या ५०० ही।

*कनिंघम यह कहने में सर्वथा ग़लत है कि उसने इस आक्रमण के समय लाहौर की ओर रुचि ही नहीं की। देखो पंथ प्रकाश इबरतनामा और मद: लतीफ़।

उत्साह को जिनके द्वारा अब गुरु नानक के बोये हुये बीज से एक समृद्ध फ़सल तैयार हो गई। इस जाति के हाथों में आरंभ में माला थी और अन्त में उसने अपने क्रूर शासकों के निर्दय हाथों से राज्य छीन लिया। सिक्खों का राजनैतिक संगठन अब संपूर्ण होगया था और पंज नदियों वाली भूमिका राज्य अब उस समय तक के लिये स्थायी रूप में खालसा की संतान के हाथों में चला गया था जब तक कि एक शताब्दी के पश्चात् एक अधिक प्रबल जाति ने देश के भविष्य की रचना करने के लिये उसे अपने हाथों में न ले लिया॥ '
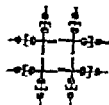
†१७६७ में शाहज़मान् के आक्रमण द्वारा सिक्खों के राज्य में कुछ थोड़ी सी बाधा पड़ गयी थी किन्तु यह एक क्षण भर की बात थी और इसके सिवा १७६८ से सिक्खों को किसी बाहर के शत्रु के साथ उस समय तक लड़ना नहीं पड़ा जब तक कि अंगरेज़ों से इनके युद्ध आरंभ नहीं हुये।

अध्याय १७

पंजाब में मिस्लोंका शासन

(१७६८—१७९८)

इस समय पंजाब में खालसा की सत्ता प्रधान सत्ता बन चुकी थी किन्तु अभी तक उस सत्ता का एक सुसंहत शक्ति बनना बहुत दूर था। समस्त प्रांत सिक्ख शासकों के तले कोई बारह स्वतंत्र रियासतों में बंटा हुआ था और उनमें एकता बनाये रखने वाली केवल दो ही बातें थीं एक उनका सामान्य मत तथा दूसरे शत्रु के विरुद्ध मिलकर युद्ध करने के समय उनकी सामान्य आपत्ति। अन्यथा ये रियासतें सर्वथा एक दूसरे से स्वतंत्र थीं, और जैसा कि अगले पृष्ठों से ज्ञात हो जायगा वे बहुधा एक दूसरे के साथ युद्ध भी करती रहती थीं। उनके राज्य की सीमा प्रायः बदलती रहती थी जिसके कारण यह सर्वथा असंभव है कि उस समय के पंजाब का एक ठीक ठीक राज नैतिक चित्र खेंचा जा सके। फिर भी उस समय किसी न किसी प्रकार का शासन अवश्य था और उस शासन में भी कई एक उत्कृष्ट राजनैतिक संस्थाएं फली फूली कुछ भी हों, मुगल राज्य के अन्त से लेकर महाराजा रणजीतसिंह के व्यवस्थित राज्य के समय तक पंजाब में मिसलोंका ही शासन रहा। इसलिये उन प्रसिद्ध संस्थाओंके मुख्य २ लक्षणोंकी समालोचना करने से पूर्व जो कि इन समस्त रियासतों में एक समान व्यापक थीं यह आवश्यक प्रतीत होता है कि इन मिसलों के विषय में संक्षेप के साथ कुछ वर्णन किया जावे।

१ भंगी मिसल

(१७१६—१८०२)

भंगी मिसल का संस्थापक अमृतसरके समीप पंजवार का रहनेवाला एक छज्जासिंह नामक जाट था। उसका 'पहुल संस्कार स्वयम् बंदा जैसे महा पुरुष के हाथों से हुआ था और प्रतीत होता है कि उस महान नेता की दी हुई दीक्षा उस पर व्यर्थ नहीं गयी। छज्जासिंह ने जाटों का ऐक छोटासा दल बना लिया जिनको स्वयम् उसने ही सिक्ख मत में सम्मिलित किया था। और इस सेना के साथ वह मुगलों के प्रदेशों में लूटमार के धावे मारने लगा तथापि भीमसिंह के नेतृत्व में इस दल ने एक व्यवस्थित स्वरूप धारण किया तथा सत्ता लाभकी। प्रतीत होता है कि यह भीमसिंह सैनिक बनाये जाने से पूर्व एक आलस्यशील आवारागर्द था जोकि अमृतसर के गुरू द्वारे में केवल भग *घोट कर पीने में ही अपन दिन व्यतीत किया करता था। किन्तु जिस समय छज्जा-सिंह ने उसको दीक्षा देकर सैनिक बनाया तब से उसकी मनुष्यों को सघटित करने तथा उनको अपने नेतृत्व में चलाने की गुप्त योग्यता का प्रकाश होने लगा। नादिरशाह के आक्र-मण से उस समय समस्त देश में बड़ी हलचल मची हुई थी। भीमसिंह ने इस अवस्था से पूर्ण लाभ उठाया और डाकुओं के उस छोटे से दल को जो उसके पूर्वज ने छोड़ा था एक प्रबल सेना बना दिया।

---

*भीमसिंह को भग पीने की आदत थी जिसके कारण उसकी मिसल का नाम भंगी मिसल पड़ गया। भीमसिंह छज्जासिंह का एक सम्बन्धी तथा कसूर रहने वाला था।

भीमसिंह की मृत्यु पर उसका भतीजा हरीसिंह जो चौदनों के समीप पटोह नामक स्थान के ज़मीनदार भूपसिंह का पुत्र था और जिस को भीमसिंह ने गोद ले लिया था गद्दी पर बैठा। हरीसिंह एक महान् योद्धा तथा एक योग्य नेता के समस्त गुणों से सुसम्पन्न था। और उसके नेतृत्व में भंगी मिसल ने अत्यन्त प्रतिष्ठा, सम्पत्ति तथा सत्ता को प्राप्त किया।

इस समय हरीसिंह के पास बीस हज़ार योधाओं की सेना थी और वह अपने समय का सब से बलवान सिक्ख सरदार था। उसने स्यालकोट करियाल तथा नारोवाल को विजय किया और चिनिओट तथा झंग को अपने राज्य में मिला लिया। १७६२ में उसने लाहौर के समीप कोट ख़्वाजा सय्यद पर आक्रमण किया और वहां से वह लड़ाई की उस समस्त सामग्री को जो लाहौर के सामयिक शासक ख़्वाजा उबेद ने उस स्थान पर इकट्ठी कर रक्खी थी उठा ले गया। इसके पश्चात् वह अपनी सेना लिये अटक के पार पहुंचा और डेरेजात प्रदेश में से जाते हुए उसने मुसलमान सरदारों को उनके पक्षपात तथा प्रजापीड़न के लिये दण्ड दिया और उनके नगरों को लूट लिया। उसने रावल पिंडी * को विजय किया और मालवा तथा माझा के समस्त प्रदेशों को अपने अधीन कर लिया। उसने जम्मू को लूटा और राजा रणजीतदेव को अपना सामन्त बना कर वह कशमीर में जा घुसा। किन्तु उस स्थान पर उस के शस्त्र आगे न चल सके

* इस आक्रमण का नेता कसूर के निकट चालेकी ग्राम का रहने वाला सरदार मिलखासिंह था जिसने पीछे थेपुर नामक ग्राम (ज़िला लाहौर) बसाया और जो आप भी फिर वहां ही रहने लगा।

और उनको हार खाकर तथा बड़ी बाधाएं उठा कर पी छे हटना पड़ा।

चुरिया ग्राम के रायसिंह के नेतृत्व में इस मिसल क सेना का एक दस्ता यमुना तक अपनी विजयपताका ल गया। कसूर जहां पर कि एक बलवान अफ़ग़ान वंश क प्रबल राजा था इस समय तक मिक्खों की लूट मार से बच हुआ था। किन्तु १७६३ में हरीसिंह ने कन्हैया तथा राम गढ़िया मिसलों के साथ आक्रमण कर कसूर को अधीन कर लिया १७६४में हरीसिंह अपने एक सहयोगी पटियाले के राजा अमरसिंह के साथ लड़ पड़ा और लड़ाई में मारा गया।

हरीसिंह की मृत्यु पर उसका सब से बड़ा पुत्र झण्डा सिंह गद्दी पर बैठा और उसके ही समय में भंगी मिसल की सत्ता अपनी पराकाष्ठा को पहुंची। १७६६ ई० में उसने मुलतान पर तथा बहावलपुर के सरदार पर चढ़ाई की। किन्तु अन्त को आपस में एक सन्धि होगई जिसके अनुसार झण्डा सिंह पाकपट्टन तक के प्रदेशों का अधिराज माना गया। १७६७ में उसने अमृतसर में लूण मण्डी के पिछवाड़े एक दुर्ग बनवाया जो बहुत समय तक "क़िलए भंगियान के नाम से प्रसिद्ध रहा*।

सन् १७७१ में मुलतान पर फिर चढ़ाई की गयी किन्तु मुलतान और बहावलपुर की सेनाओं ने मिलकर आक्रमकों को पीछे हटा दिया। परन्तु एकही वर्ष पीछे मुलतान के दो आगे पीछे के शासकों में कोई झगड़ा खड़ा हो गया और उन

---

*लतीफ़ (पृ ३१७) के अनुसार यह दुर्ग मुलतान की विजय के पश्चात् १७७२ में बनवाया गया था किन्तु मैं समझता हूँ कि पंजाब के राजाओं का ऊपर दिया हुआ वृत्तान्त अधिक विश्वसनीय है।

में से एक शरीफ़बेग तकलू नामक ने झण्डासिंह को अपनी सहायता के लिये बुलाया। सिक्ख सरदार ने इस अवसरको अत्यन्त शुभ जाना और झट पट लेहनासिंह तथा अपनी मिसल के और मुख्य मुख्य सरदारों को साथ ले वह मुलतान की ओर चल दिया। शुजाख़ान और उसके साथी दाऊद पोत्रे हार गये और मुलतान सिक्खों के हाथों में चला गया शरीफ़ बेग सिंध को चला गया। और झण्डासिंह का एक नायब दीवानसिंह नामक मुलतान का शासक नियुक्त किया गया।

उसही वर्ष झण्डासिंह ने रामनगर पर भी धावा किया जो जिला गुजरानवाला में चट्ठों की राजधानी थी और वहां से वह उस प्रसिद्ध तोप को जो 'जमज़मा, अथवा तोप भंगियां' कहलाती है ले आया। दूसरे वर्ष जम्मू क राजा रणजीत देव तथा उसके पुत्र युवराज देव में कुछ झगडा उत्पन्न हो जाने के कारण समस्त मुख्य मुख्य सिक्ख सरदार वहां गये हुए थे और १७७४ में झण्डासिंह को जिसने रणजीत देव का पक्ष ले रक्खा था एक मज़हबी सिक्ख ने मार डाला जिसको कि कन्हैयाओं ने रिशवत दे दी थी क्योंकि ये कन्हैया मिसल वाले और चरत सिंह सुकेर चाकिया रणजीत देव के राजद्रोही पुत्र के पक्षमें लड़ रहे थे।

झण्डासिंह के पश्चात् उसका छोटा भाई गण्डासिंह सिंहासन पर बैठा। उसने अमृतसर के क़िले भंगियान् को अधिक पुष्टि दी और उस पवित्र नगर को बहुत बढ़ा दिया तथा उसको अधिक सुन्दर बना दिया। वह कन्हैयाओं से अपने भाई के बध का बदला लेने को बराबर सोचता रहा और उसे शीघ्रही बदला निकालने का एक अवसर भी

पुत्र ने भागकर सरदार जोधसिंह के पास शरण ली। कुछ समय के पश्चात् गुरुदत्तसिंह अपनी जन्मभूमि अर्थात् तरनतारन की तहसील में पजवार नामक ग्राम को चला गया जहां पर कि वह मर गया। उसकी सन्तान अभी तक हैं और साधारण कृषकों के समान अपने हाथ से खेती बारी कर अपना पेट पालन करती है।

भंगी मिसल की दूसरी शाखा।

भंगी मिसल की दूसरी शाखा की सत्ता भी बड़ी उच्च अवस्था को पहुंची और सिक्खों के इतिहास में इस शाखाका नाम भी सदा के लिये प्रसिद्ध है। इस शाखा के नेता लैहनासिंह तथा गूजर सिंह थे जिनकी विजयों का कुछ वृत्तांत पहिले दिया जाचुका है।

लैहना सिंह का पितामह मडावला ग्राम का एक साधारण जाट था। अत्यन्त निर्धन होजाने के कारण वह करतारपुर के निकट मस्तीपुर नामक ग्राम को चला गया जहां के एक बढ़ई ने उसको गोद ले लिया। वहां पर उस के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिस का नाम दरगाहा था और लैहनासिंह इस दरगाहा का पुत्र था। लैहना अभी लडका ही था कि वह अपने घर से भाग गया। और अटारी के समीप रोरानवाला नामक ग्राम में पहुंच कर सरदार गुरबख्श सिंह के यहां नौकर होगया जो कि हरीसिंह भंगी के मुख्य मिसलदारों में से था। सरदार गुरबख्श सिंह के कोई पुत्र न था इस लिये लैहना को उस ने गोद ले लिया। इस शाखा का दूसरा नेता गूजरसिंह सरदार गुरबख्श सिंह का धेवता था। सरदारके मरने पर गूजरसिंह और लैह[illegible] [illegible]गड़ा हुआ, परन्तु [illegible] कुछ देर युद्ध करने के पश्[illegible]

स्वर्गवासी सरदार गुरबख्श सिंह की रियासत को उन्होंने आधा २ बांट लिया।

१७६५ में उन्हों ने सोभासिंह के साथ मिल कर लाहौर ले लिया, जहां पर कि जैसा कि पिछले अध्याय में लिखा जा चुका है, वे कुछ अन्तर के साथ अपनी मृत्यु तक शांति पूर्वक राज्य करते रहे। १७६७ में लेहनासिंह की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र चेत सिंह गद्दी पर बैठा किन्तु १८४६ में रणजीत सिंह* ने उसको निकाल दिया उसका पुत्र अतरसिंह महा राजा रणजीत सिंह के अधीन हो गया, और वह १८३६ तक जीता था जबकि ब्रिटिश सरकार ने उसको तथा उसकी माता को चकडाडो का ग्राम प्रदान किया जो कि उसकी पुरानी जागीर का एक भाग था। अतर सिंह की संतान का कुछ पता नहीं लगता। प्रतीत होता है कि लेहना सिंह का वंश अतर सिंह के साथ ही अन्त होगया।

गूजर सिंह कहीं अधिक बलवान सरदार था। लाहौर को विजय कर उसने उत्तर की ओर चढाई की और गुजरात को अपने राज्य में मिला लिया जिसको कि उसने सुलतान मुकर्रब नामक एक गक्खड़ के सरदार से विजय किया सन् १७६६ में उसने जम्मू को विजय किया भंडा सिंह के साथ मिलकर वहां के राजा से कर प्राप्त किया उसही वर्ष उसने

*लाहौर के तीन प्रसिद्ध रईस अर्थात् भाई गुरबख्शसिंह हकीम हाकिम राय, और मिया आशिक मोहम्मद को चेतसिंह तथा सोभासिंह के पुत्र मोहर सिंह दोनों की नपुंसकता से इतनी घृणा होगई कि उन्होंने रणजीतसिंह को लाहौर बुलाया। रणजीत सिंह एक बड़ी सेना लेकर पहुचा और जैसा कि पहिले प्रबन्ध किया जा चुका था नवा कोट के चोधरी मोहकम दीन ने लहौरी दरवाजा खोल दिया और रणजीत सिंह उस दरवाजे से नगर के भीतर पहुच गया।

मिलगया। पठानकोट पर झंडासिंह के एक मिसलदार नन्द-सिंह की विधवा राज करती थी। इस रानी ने अपनी पुत्री का विवाह कन्हैया मिसल के वंश में एक तारासिंह नामक युवक के साथ कर दिया और पठानकोट का राज्य उस को जहेज़ में दे दिया। गंडासिंह ने इस राज्य को वापिस लेना चाहा। कन्हैयाओं ने देने से इन्कार किया और इस पर दीना नगर में एक युद्ध हुआ। गंडासिंह बीमार होकर मर गया। और उसका भतीजा चरतसिंह भी जो उसके पीछे गद्दी का मालिक था पठानकोटकी एक लडाईमें मार दिया गया। भंगी अपने नेताओं की मृत्यु से निराश होकर क्षेत्र से भाग गये और पठानकोट का समस्त प्रदेश कन्हैयाओं के हाथों में छोड गये।

भंगियों ने गंडासिंह के नाबालिग़ पुत्र देसासिंह को जो थोड़ी आयु होने के कारण पहिले छोड दिया गया था अब अपना सरदार चुना। मिसल अब वश से बाहर हो गयी। उसके बहुत से छोटे २ सरदार स्वतन्त्र होगये। और झंग तथा मुलतान* हाथ से जाते रहे। देसासिंह ने झंग प्रदेश को फिर से प्राप्त करने का यत्न किया। किन्तु युद्ध में उसकी

---

*१७७७ में मुजफ़्फ़रख़ान और बहावलपुर के नवाबने मुलतान पर आक्रमण किया था परन्तु दीवानसिंह ने उन्हें पीछे हटा दिया था। दूसरे वर्ष अहमदशाह दुर्रानी के पुत्र तीमूरने मुलतान को अधीन करनेके लिये सेना भेजी किन्तु दीवानसिंह ने उसके भी पैर उखाड़ दिये। इसपर स्वयम् बादशाह १८००० अफ़गानों की सेना लेकर क्षेत्रमें आया। एक घोर संग्राम के पश्चात सिक्ख हार गये और उनके ३००० मनुष्य लड़ाई में मारेगये। और बादशाह ने मुलतान वहा के पुराने शासक शुजाख़ान को प्रदान करदिया जो उस समय तक मुलतान पर शासनकरता रहा जब तक कि रणजीतसिंह ने उसको वहा से न निकाल दिया।

मुठभेड़ रणजीत सिंह के पिता महानसिंह के साथ हुई और १७८२ में वह लड़ाई में मारा गया।

उसकी मृत्यु पर उसका नाबालिग़ पुत्र गुलाबसिंह 'गद्दी पर बैठा जो भोग विलास तथा विषयासक्ति में पड़ गया। गुलाबसिंह अपनी समस्त आयु भर में केवल एकबार विजय का भागी हुआ अर्थात् क़सूर को फिर से अधीन करने में किंतु १७९४ में निज़ामुद्दीनख़ान तथा क़ुतुबुद्दीनख़ान पठानों ने उससे फिर क़सूर छीन लिया।

यह रणजीतसिंह को मार देनेके लिये जिसने अभी १७९९ में लाहौर लेलियाथा एक कुविचारणामें भी सम्मिलितथा जिस में कि वह स्वयं, साहिबसिंह भंगी, जस्सासिंह रामगढ़िया, और क़सूर का निज़ामउद्दीनख़ान सम्मिलित थे। उन्होंने रणजीतसिंह को सन् १८०० में इस बहाने से 'भसीन' बुलाया कि हमें आप के साथ राष्ट्रीय सम्बन्ध की एक आवश्यक बात के विषय में सलाह करनी है। रणजीतसिंह उनसे मिलने गया किन्तु अपने साथ एक भारी सेना लेता गया। कुविचारणा छोड़ दी गयी और वे समस्त सरदार दावत उड़ाने में लग गये जिसमें कि गुलाबसिंह जो बड़ा शराबी था नशे में बेहोश होगया और मरगया। उसका नाबालिग़ पुत्र गुरदत्त सिंह गद्दी पर बैठा। इस समय रणजीत सिंह ने जो अमृतसर की ओर सदा लालसा भरी हुई आंखों से देखता रहता था गुरदत्तसिंह से उस बड़ी 'तोप' भंगियान को मांगा और उसकी माता सुक्खन ने जो नाबालिग़ की रक्षक थी देने से इन्कार कर दिया। इसपर रणजीतसिंह को भंगी मिसल के साथ लड़ाई छेड़ देने का पर्याप्त बहाना मिल गया। अमृतसर पर आक्रमण किया गया और पांच घंटे के अन्दर अन्दर क़िला भंगियान विजय कर लिया गया। माता और उसके

पुत्र ने भागकर सरदार जोधसिंह के पास शरण ली। कुछ समय के पश्चात् गुरुदत्तसिंह अपनी जन्मभूमि अर्थात् तरनतारन की तहसील में पजवार नामक ग्राम को चला गया जहां पर कि वह मर गया। उसकी सन्तान अभी तक है और साधारण कृषकों के समान अपने हाथ से खेती वारी कर अपना पेट पालन करती है।

भंगी मिसल की दूसरी शाखा।

भंगी मिसल की दूसरी शाखा की सत्ता भी बडी उच्च अवस्था को पहुंची और सिक्खों के इतिहास में इस शाखाका नाम भी सदा के लिये प्रसिद्ध है। इस शाखा के नेता लेहनासिंह तथा गूजर सिंह थे जिनकी विजयों का कुछ वृत्तांत पहिले दिया जाचुका है।

लैहना सिंह का पितामह मडावला ग्राम का एक साधारण जाट था। अत्यन्त निर्धन होजाने के कारण वह करतारपुर के निकट मस्तीपुर नामक ग्राम को चला गया जहां के एक बढई ने उसको गोद ले लिया। वहां पर उस के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिस का नाम दरगाहा था और लैहनासिंह इस दरगाहा का पुत्र था। लैहना अभी लडका ही था कि वह अपने घर से भाग गया। और अटारी के समीप रोरानवाला नामक ग्राम में पहुंच कर सरदार गुरबख्श सिंह के यहां नौकर होगया जो कि हरीसिंह भंगी के मुख्य मिसलदारों में से था। सरदार गुरबख्श सिंह के कोई पुत्र न था इस लिये लैहना को उस ने गोद ले लिया। इस शाखा का दूसरा नेता गूजरसिंह सरदार गुरबख्श सिंह का धेवता था। सरदारके मरने पर गूजरसिंह और लहना सिंहमें झगडा हुआ, परन्तु कुछ देर युद्ध करने के पश्चात् दोनों का मेल होगया और

स्वर्गवासी सरदार गुरबख्श सिंह की रियासत को उन्होंने आधा २ बांट लिया।

१७६५ में उन्हों ने सोभासिंह के साथ मिल कर लाहौर ले लिया, जहां पर कि जैसा कि पिछले अध्याय में लिखा जा चुका है, वे कुछ अन्तर के साथ अपनी मृत्यु तक शांति पूर्वक राज्य करते रहे। १७९७ में लैहनासिंह की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र चेत सिंह गद्दी पर बैठा किन्तु १८९९ में रणजीत सिंह* ने उसको निकाल दिया। उसका पुत्र अतरसिंह महाराजा रणजीत सिंह के अधीन हो गया, और वह १८४९ तक जीता था जबकि ब्रिटिश सरकार ने उसको तथा उसकी माता को चकडांडो का ग्राम प्रदान किया जो कि उसकी पुरानी जागीर का एक भाग था। अतर सिंह की संतानका कुछ पता नहीं लगता। प्रतीत होता है कि लेहना सिंह का वंश अतर सिंह के साथ ही अंत होगया।

गूजर सिंह कहीं अधिक बलवान सरदार था। लाहौर को विजय कर उसने उत्तर की ओर चढ़ाई की और गुजरात को अपने राज्य में मिला लिया जिसको कि उसने सुलतान मुकर्रब नामक एक गक्खड़ के सरदार से विजय किया सन् १७६६ में उसने जम्मू को विजय किया झंडा सिंह के साथ मिलकर वहां के राजा से कर प्राप्त किया उसही वर्ष उसने

*लाहौर के तीन प्रसिद्ध रईस अर्थात् भाई गुरबख्शसिंह हकीम हाकिम राय, और मियां आशिक मोहम्मद को चेतसिंह तथा सोभासिंह के पुत्र मोहर सिंह दोनों की नपुसकता से इतनी घृणा होगई कि उन्होंने रणजीतसिंह को लाहौर बुलाया। रणजीत सिंह एक बड़ी सेना लेकर पहुंचा और जैसा कि पहिले प्रबन्ध किया जा चुका था नजां कोट के चौधरी मोहकम दीन ने लाहौरी दरवाज़ा खोल दिया और रणजीत सिंह उस दरवाजे से नगर के भीतर पहुंच गया।

पुत्र इसलाम गढ़ और देवा वोटाला को अधीन कर लिया। १७६७ में वह अमृतसर पहुंचा और वहां उसने अपने नामपर एक क़िला गूजरसिंह उस स्थान पर बनवाया जहाँ पर कि अब गोविन्द गढ़ है * गूजरसिंह के तीन पुत्र थे सुखासिंह, साहिबसिंह और फ़तेह सिंह सुखासिंह साहिब सिंह के विरुद्ध एक युद्ध में मार डाला गया। साहिबसिंह का विवाह महानसिंह की एक बहिन अर्थात् रणजीत सिंह की फूफी के साथ हुआ था और उसने एक मुसलमान सरदार को अपने पिता गूजर सिंह की इच्छा के विरुद्ध अपने साले के अधीन कर अपने पिता को नाराज कर दिया। क्यों कि रामनगर की लड़ाई के समय इस मुसलमान सरदार ने उसके बाप के पास शरण ली थी। जब इस मुसलमान सरदार को मारडाला गया तो गूजरसिंह ने परिवेष्टन से मुख मोड़ लिया और अपना राज्य फ़तेहसिंह को सौंप थोड़ेही समय के पश्चात् सन् १७८८ में लाहौर में क्रोध तथा शोक के कारण शरीर त्याग दिया। उसके फूल लाहौर के दुर्ग में सम्मन बुर्ज के तल दबाये गये।

गूजर सिंह का गद्दी पर बैठने के लिये खालसा ने फ़तेहसिंह को स्वीकार नहीं किया। इसलिये उन्होंने साहिब सिंह को अपना नेता बनाया। महान सिंह अपना काम निकालने के लिये अपने ही बहनोई के विरुद्ध फ़तेह सिंह के साथ मिल

---

*अमृतसरमें चार दुर्ग थे। एक चरत सिंह का बनवाया हुआ शहरमें था और दूसरा भंगियों ने दक्षिण में बनवाया था। जस्सासिंह राम गढ़िया ने पूरब में और गूजरसिंहने अब पश्चिम में एक दुर्ग बनवाया। इस घटना से रणजीत सिंह के समय से पूर्व के सिक्ख राज्य का सयुक्त पन प्रकट होता है।

गया, और सन् १७६२ में सोढरा नामक स्थान पर साहिब सिंह और महान सिंह के बीच युद्ध हुआ जिसमें महान सिंह बीमार होकर उलटा फिर आया और भंगी सरदार के हाथों में जा पड़ा। साहिब सिंह वर्षों तक बड़ी सफलता के साथ अपने प्रदेश पर राज्य करता रहा, और वह उन सिक्ख सरदारों* में से एक था जिन्होंने १७६८ में शहांचों को पराजय दी जिसको कि शाहज़मान पंजाब को आधीन करने के लिये ७००० सिपाहियों की सेना सहित छोड़ गया था। इसके पश्चात् जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है सन् १८०० में वह रणजीत सिंह का वध करने के लिये एक कुविचारणा में सम्मिलित था किन्तु फिर भसीन पर वह रणजीत सिंह का मित्र बन गया। १८०६ तक वह महाराजा रणजीत सिंह का वशवर्ती होगया था और महाराजा ने १८१० में उसको एक लाख रुपये की एक जागीर दी जिसको कि वह १८११ तक अर्थात् अपनी मृत्यु के समय तक भोगता रहा। फ़तेह सिंह कपूरथले चला गया और वहां उसने राजा के वहां नौकरी करली। वह फिर शीघ्र ही मर गया और अपना एक पुत्र जयमल सिंह नामक छोड़गया जो सन् १८७१ में एक अत्यन्त धनहीन अवस्था में मरा। जयमल का पुत्र ज्वाला सिंह था और उसके पुत्र का नाम बुध सिंह था जिससे आगे इस वंश का कुछ पता नहीं चलता।

२—अहलूवालिया मिसल।

अहलूवालिया मिसल जस्सासिंह कलाल ने स्थापन की

*शेष सरदार ये थेः—अटारी के निहालसिंह तथा वज़ीर सिंह, वज़ीराबाद का जोध सिंह और चिक्कौन का कर्म सिंह।

थी। उसके माता पिता अहलूग्राम के रहने वाले थे। उसकी माता भागसिंह की बहिन थी, जो कि एक बड़ा मशहूर डाकू था और जिसको नवाब कपूरसिंह ने 'पहूल' दिया था। जस्सासिंह १७१८ में उत्पन्न हुआ उस में अपने मामा के सब लक्षण पाये जाते थे और वह अपने समय के बड़े से बड़े सिक्ख सर्दारों में से एक था और एक दृष्टि से उनमें सब से अधिक विख्यात था। वह ही था जिसने पहिले पहिल खालसा को राजत्व का चरित्र प्रदान किया क्योंकि सिक्खों में सब से पहिले उसही ने अपने नाम का सिक्का खुदवाया। वह युद्ध विद्या में बड़ा निपुण था और यद्यपि वह आरम्भ में नवाब कपूरसिंह का केवल एक सैनिक ही था तथापि नवाब की मृत्यु पर उसने अपनी स्वतन्त्र रियासत खड़ी करली और शीघ्र ही अहलूवालिया, मिस्लवाला, भूपाला, गोगरवाल इत्यादि स्थान विजय कर लिये। व्यास नदी की दूसरी ओर उसने सुलतानपुर तथा तलवंडी को अपने अधीन कर लिया और कपूरथले के राय इब्राहीम से 'कर' वसूल किया। इसके पश्चात् १७७७ में उसने कपूरथले को अपने राज्य में मिलाकर उसे अपनी राजधानी बना लिया। सतलज के इस ओर उस ईसाखान तथा उमराओं का विजय किया और विस्त जलधर में वह सब से बड़ा सरदार समझा जाने लगा। उसके अनुयायी उसको बादशाह कहा करते थे किन्तु खालसा समाज उसे इस नाम से नहीं पुकारता था। वह बड़े उदार स्वभाव-वाला मनुष्य था और अपने अनुयायियों को उसने इनाम आदि दे देकर धनवान बना दिया था। वह पक्का देशभक्त था और सदा अपने मत के देश वालों के लिये अपने प्राण तथा अपनी स्वतन्त्रता तक को आपत्ति में डालने को तय्यार रहता

था। एक समय अहमदशाह हिन्दुस्तान से बहुत सी स्त्रियाँ कन्याओं को लूटकर ले जा रहा था। जस्सासिंह को इसबात की सूचना मिली। इस पर वह शाह के पीछे चल पड़ा और रात्रि के समय बड़ी सफलता के साथ उस पर धावा कर उन निर्दोष अबलाओं को बचा लाया और उनको बहुत सा धन तथा अन्य आवश्यक वस्तुएं देकर उसने ठीक २ हिफाजत के साथ उन्हें अपने अपने घर पहुंचा दिया। इस वीरता तथा देशभक्ति के कार्य ने न केवल जस्सासिंह को प्रत्येक श्रेणी के हिन्दुओं में प्यारा ही बना दिया तथा न केवल उसके प्रभाव तथा बल को ही बढा दिया वरन् इस कार्य ने सिक्ख मत तथा मिसलशासन की प्रतिष्ठा तथा सर्वप्रियता को भी अधिक कर दिया।

जस्सा सिंह का सन् १७८३ में अमृतसरमें देहांत होगया, और उसका एक भतीजा भागसिंह उसकी गद्दी पर बैठा। इस सरदार ने कोई नया प्रदेश विजय नहीं किया किन्तु अधिकतर वह अपने प्रति योगी सरदार जस्सा सिंह राम-गढिया से ही लडता रहा। सन् १८०१ में उसका सेनापति हमीरसिंह रामगढ़ियों से हार गया। भाग सिंह निराशा का सामना होते हुए भी शत्रु से युद्ध करनेके लिये तुरत फगवाड़े का ओर चला परन्तु रास्ते में ही बीमार पडगया और कपूर-थले को लौटा लाया गया जहां पर कि वह उस ही वर्ष मर गया।

भागसिंह का इकलौता पुत्र फतेहसिंह अपने पिता की गद्दीपर बेठा। यह एक बडाही योग्य पुरुष था, और यदि वह इतनाही साहसी तथा निपुण भी होता जितना कि रणजीत सिंह था तो वह स्वयं पंजाब का महाराजा होता। रणजीत॰

सिंह ने उसके विशिष्ट मानसिक तथा हार्दिक गुणों को पहचान कर आरम्भ में ही उसके साथ संधि कर ली। दोनों सरदारों ने ग्रन्थ साहब की शपथ खायी कि हम सदा एक दूसरेके मित्र रहेंगे और प्राचीन विधि अनुसार पगड़ियां बदल के एक दूसरे के भाई होगये। फतेहसिंह से रणजीतसिंह को बड़ी सहायता मिली और उसने अपने धर्म भाई के लिये बहुत बड़ा प्रदेश विजय कर रणजीतसिंह को दिदया। कुछ समय तक महाराजा रणजीतसिंह के पक्ष में निरन्तर युद्ध करनेके पश्चात् वह अपनी आयु के अंतिम सोलह या सतरह वर्ष कपूरथला में शान्ति पूर्वक राज्य करता रहा जहां कि १८३७ में उसका देहान्त होगया। उसकी सन्तान उस दिनसे आज दिन तक बराबर कपूरथले में राज कर रही है और अंग्रेजी सरकार के साथ अपनी सच्ची मैत्री दरसाती रही है।*

३—रामगढ़िया मिसल।

इस मिसल का संस्थापक बढ़ई जाति का जस्सासिंह था। उसका पिता भगवाना एक निर्धन बढ़ई था परन्तु साथ ही वह एक बड़ा उत्साही सिक्ख था और ग्रंथ साहब का अधिक ज्ञान रखने के कारण 'भगवाना' ज्ञानी के नाम से प्रसिद्ध था। उसके पांच पुत्र थे, तारा सिंह, मालीसिंह, खुशाल सिंह, जस्सासिंह और जयसिंह। जस्सासिंह और उसके भाई आरंभ में जलंधर दोआब के फौजदार अदीनाबेग की नौकरी में थे और जस्सा सिंह उसकी सिक्ख सेना का सेनापति था। जिस समय शहज़ादा

*किन्तु सिक्खों की पहिली लड़ाईमें कपूरथलेका तात्कालिक राजा निहाल सिंह अलीवाल तथा मुदोवाल की लड़ाइयों में अंग्रेज़ों के विरुद्ध लड़ा था।

तीमूर जलंधर आया था उस समय अदीना पहाड़ों में भाग गया था और जस्सा सिंह और उसके भाई अमृतसर आकर वहां पर नन्द सिंह संघानी के यहां नौकर होगये थे। नन्द-सिंह और जस्सा सिंह ने रामरौनी के दुर्ग को फिर से बनवा लिया किन्तु अदीना के सेनापति मीर अज़ीज बख़शी ने उसको दबा दिया जो कि १७५८ वाली लाहौर की विजय के पश्चात् इन सिक्खों को अदीना का आदर न करने के अपराध में दण्ड देने के लिये भेजा गया था। किन्तु वह सेनापति उसही वर्ष मर गया और जस्सा सिंह ने उस दुर्ग को फिर बनवा लिया तथा अबकी बार उसका नाम 'रामगढ़' रक्खा जिस नाम पर कि पीछे से इस मिसल का नाम रामगढ़िया मिसल रखा गया जस्सा सिंह ने अब कन्हैयाओं के साथ मिलकर दीनानगर, बुटाला, कलानौर, श्री हरगोविन्दपुर, कादियान, घुम्मान तथा अमृतसर और गुरदासपुर ज़िलों के बहुत से नगर तथा जलंधर दोआबे का कुछ भाग अपने अधीनकर लिया। उसकी वार्षिक आय इस समय छः और दश लाख के बीच में थी।

प्रतीत होता है कि जस्सा सिंह की बढ़ती हुई सत्ताने उसके भाइयों के शिर फेर दिये। एकबार जस्सा सिंह अहलूवालिया जो इस समय सबसे अधिक प्रबल तथा मान्य सिक्ख सरदारों में से एक माना जाता था। यात्राके लिये जा रहा था जब कि खुशाल सिंह, माली सिंह और तारा सिंह उस पर आगिरे और उसको लूटकर तथा क़ैद कर अपने घर लेआये इस पर उसको बड़ा क्रोध आया और उसने इस बात की शपथ खायी कि एक न एक दिन मैं इस रामगढ़िया मिसल का अवश्य विध्वंश करदूंगा थोड़े ही काल पीछे भंगी सिक्ख झंडा सिंह के नेतृत्व में, कन्हैया सिक्ख जयसिंह तथा हकी-

फन सिंह के अधीन और सुकेरचाकिया चरतसिंह के तथा निमयारी के सरदार नाहर सिंह के अधीन इन सब ने जस्सा सिंह अहलूवालिया के साथ मिलकर रामगढ़ियों को पराजय दी और जस्सासिंह को सतलज के पार मार भगाया। रामगढ़ियों का सरदार अब सरसे में जा बसा जहां पर कि वह १७८३ तक रहा। उसकी जीविका लूट मार पर थी और वह देहली तथा मेरठ तक धावे मारता था। एक बार उसने देहली में मुगलों के मोहल्ले पर धावा किया और वहां से वह चार तोपें और अन्य लूट का माल लेगया। मेरठ के नवाब ने अपने प्रदेश को बचाने के लिये १०,००० रुपये उसको भेंट किये। उसने हिसार को लूटा और वहां से वह दो ब्राह्मण लड़कियों को बचा लाया जिनको कि वहां का हाकिम ज़बरदस्ती भगा लेगया था। उसही नगर के एक कूप में से उसे पांच लाख अशर्फ़ियां दबी हुई मिलीं। १७८३ में दुष्काल तथा अनावृष्टि के कारण उसे सरसे से लौट आना पड़ा। इस ही बीच महानसिंह और जय सिंह के बीच में झगड़ा हो गया था। इसलिये उसने महानसिंह तथा राजा संसार चन्द कटोच के साथ मिलकर जिसको कि धोखा देकर जयसिंह ने कांगड़े का दुर्ग हस्तगत कर लिया था। कन्हैयाओं को निकाल दिया और अपने समस्त पूर्व के प्रदेश फिर से प्राप्त कर लिये।

सन् १७८६ में महाराजा रणजीतसिंह की सास-सदाकुर ने जिसका पति गुरबक्शसिंह कन्हैया जस्सासिंह रामगढ़िया के विरुद्ध लड़ते हुए एक युद्ध में मारा जाचुका था, अपने जामाई की सहायता से ज़िले होशियारपुरमें मियानी नामक एक स्थानपर जस्सासिंह पर-आक्रमण किया। जस्सासिंहने बहुत

तंग आकर बाबा साहिबसिंह वेदी से प्रार्थना की कि 'आप मेरी ओर से बीच बचाओ करादें' किन्तु दुराग्रही सदाकुर बड़ी कठोर हृदय थी और उसने उस पूज्य पुरुष की भी बात न मानी। कहते हैं बाबा ने उसको शाप दिया। किन्तु कुछ भी हो जो घटना कि देखने में आयी वह अत्यन्त विचित्र थी। थोड़े ही दिनों में व्यास नदी इतनी चढ़ी कि सदाकुर और उसके जामाई का समस्त असबाब उसमें बह गया और बड़ी कठिनता के साथ वे दोनों अपने प्राण बचाकर भागे।

इस के पश्चात् जस्सासिंह शान्ति के साथ राज्य करता रहा और अन्त को १८०३ में उसका देहान्त होगया। उस के पुत्र जोधासिंह ने महाराजा रणजीतसिंहकी अधीनता स्वीकार करली और सन् १८०८ में वह महाराजा का वशवर्त्ती होगया। स्वयं जस्सासिंह की सन्तान के विषय में अधिक पता नहीं लगता किन्तु उसके भाई तारासिंह का वंश जिसमें इस समय सरदार मंगलसिंह सी० आई० ई० हैं पंजाब में अत्यन्त प्रसिद्ध है।

४—नकाई मिसल

इस मिसल का संस्थापक लाहौर के ज़िले में चुनिया तहसील के एक ग्राम भरवाल के रहने वाले एक सिन्धू जाट चौधरी हेमराज का पुत्र हीरासिंह नामक था। पंजाबके अन्य समस्त राज्यवंशों के संस्थापकों के समान वह भी आरम्भ में लुटेरा ही था और धीरे धीरे उस ने एक इतना बड़ा प्रदेश विजय कर लिया जिस के द्वारा कि उसकी वार्षिक आय नौ लाख की होगयी।

सन् १७६७ के लग भग 'पाकपटन' के हिन्दुओं ने उससे बाबा फ़रीद शाकर गञ्ज की दरगाह के पीर शेख़ शुजा नामक

की शिकायत की जो गोवध कर हिन्दुओं के हृदयों को दुखाया करता था। हीरासिंह ने अपनी सेना इकट्ठी कर २००० आद-मियों के साथ शेख़ पर आक्रमण किया। किन्तु युद्ध के आरंभ में ही उसके सिर में एक गोली लग गयी और वह मर गया। शेख़ ने उसकी सेना को तित्तर बित्तर कर दिया, ४००० स-वारों के साथ सिक्खों का पीछा किया और उनमें से बहुतों को मार डाला।

हीरासिंह के नाबालिग़ पुत्र दलसिंह को छोड़कर, उस के भाई नत्थासिंह का पुत्र नाहरसिंह गद्दी पर बैठा। किन्तु वह थोड़े ही मास के पश्चात् सन् १७६८ में कोट कमालिया के युद्ध में मारा गया और उसका छोटा भाई रामसिंह उस की गद्दी पर बैठा।

रामसिंह और उसके उत्तराधिकारी अपने जीवन भर सय्यदवाला के वज़ीरसिंह और उसके उत्तराधिकारियों से ही लड़ते रहे।

इस मिसल का राज्य लगभग चालीस वर्ष तक जिस प्र-देश पर रहा उसमें चूनियां, क़सूर, शरकपुर, गुगेरा, और एक समय कोट कमालिया भी सम्मिलित थे। ज्ञानसिंह ने जो सन् १७९० में गद्दीपर बैठा अपनी बहिन राजकौरान* का विवाह रणजीतसिंह के साथकर दिया। यह राजकौरान खड़कसिंह की माता थीं। ज्ञानसिंह ही नकाई मिसल का अन्तिम स्वतंत्र सरदार था। उसकी मृत्युके तीन वर्ष पीछे अर्थात् सन्१८०७ में रणजीतसिंह ने इस मिसल के राज्य को अपने अधीनकर ज्ञानसिंह के पुत्र काहनसिंह† को १५०००) रुपये की एक

*यह वही महिला थीं जो 'माई नकाइन' के नाम से प्रसिद्ध हुई। जिसकी हवेली जो अब 'नज़ूल' भूमि बनी हुई है लाहौर की बच्चोवाली मुहल्लेमें बनी हुई थी।

†काहन सिंह का देहान्त १८७२ में लाहौर में हुआ। उसके वंश में, भरवाल के सरदार ज्वन सिंह हैं।

जागीर प्रदान कर दी। काहनसिंह इस मिसल का अन्तिम मनुष्य था जिस को कुछ भी राजनैतिक महत्व का समझा जा सकता है।

५—कन्हैया मिसल

इस मिसल का संस्थापक लाहौर से लग भग १५ मील पर कान्हा नामक ग्राम के रहने वाले एक ख़ुशाली नामक निर्धन सिन्धू जाट का पुत्र जयसिंह था। कान्हा ग्राम के नाम पर ही इस मिसल का नाम कन्हैया पड़ गया। जयसिंह के दो भाई थे एक झण्डासिंह और दूसरा सिंहा। और यद्यपि केवल सिंहा की सन्तान ही इस समय तक चली आती है तथापि सिंहा ने इतिहास में अपने कोई पदचिन्ह नहीं छोड़े। जयसिंह तथा झण्डा सिंह ने नवाब कपूर सिंह के यहां नौकरी करली किन्तु नवाब की मृत्यु पर दोनों भाई अमृतसर से ८ मील दूर सोहियां नामक एक ग्राम को चले गये जहां जय सिंह की सुसराल थी। वहाँ पर लग भग ४०० सवार एकत्र कर जयसिंह ने आस पास के प्रदेश को अपने अधीन करना आरम्भ कर दिया।

१७६३ में कुसुर के परिवेष्टन तथा वहां की लूट में उसने अहलूवालिया, भंगी तथा रामगढ़िया मिसलों के नेताओं का साथ दिया। वह जम्मू के परिवेष्टन में उपस्थित था और झण्डा सिंह भंगी के वध के लिये जो कुमंत्रणा की गयी थी उसमें भी वह सम्मिलित। था एक प्रबल प्रतियोगी का नाश कर जयसिंह इसके पश्चात जस्सासिंह रामगढ़िया के नाश के लिये जस्सासिंह अहलूवालिया के साथ जा मिला क्योंकि अहलूवालिया सरदारको रामगढ़िया सरदार से अपना किसी समय का बदला निकालना [illegible] जाकि हम ऊपर लिखा चुके

हैं यद्दें हांसी तथा हिसार के जंगलों में मार भगाया गया और पंजाब में जयसिंह की सत्ता इस समय प्रायः सब से अधिक दिखायी देने लगी।

इसके पीछे उसने सरहिन्द पर चढ़ाई की और उस सुप्रसिद्ध संग्राममें भाग लिया जिसमें सरहिन्दके शासक ज़ेनखान को परास्त कर तथा वधकर सिक्खों ने नगर को अपने अधीन करलिया था। फिर उसने गरोटा, हाजीपुर, नूरपुर, दातारपुर तथा साइबाहनामक पहाड़ी रियासतोंको विजयकर वहांके राजाओं से कर वसूल किया। उसने एक घोर संग्राम तथा विकट संहार के पश्चात मुकेरियान के 'आवान' शासकों को भी परास्त कर उस स्थान को भी हस्तगत करलिया। शीघ्रही उसके सौभाग्य ने प्रसिद्ध कांगड़ा दुर्ग के रूप में एक और महान पारितोषिक उसके मार्ग में रखदिया। राजा संसार चन्द कटोच सदा से इस दुर्ग की ओर लालसा भरी आंखों से देखा करता था किन्तु वहां का शासक सैफ़अली देहली की सरकार को अपना रक्षक बताता था जिसके कारण कटोच को उस दुर्ग पर आक्रमण करने का साहस अभी तक न हुआ था। इस समय जयसिंह की कीर्ति पराकाष्ठा को पहुंची हुई थी इसलिये संसारचन्द ने उसकी सहायता चाही और दुर्ग को अधीन करने में साहाय्य करनेके लिये उसे बुलाया। कन्हैया सरदार ने इस प्रस्ताव को स्वीकार करने में कुछ भी विलंब न किया और तुरन्त अपने पुत्र को एक बड़ी सेना सहित दुर्ग के विजय करने के लिये भेज दिया। सन् १७५४ में वृद्ध क़िलेदार मर गया और कुछ बल द्वारा तथा कुछ छल * द्वारा सिक्ख सरदार ने दुर्ग को विजय कर अपने अधीन करलिया। कटोच

* सैफ़ख़ान के पुत्र जीवनख़ान को जय सिंह ने रिशवत देदी थी।

चक्रमें में आ गया। उसे बड़ा नैराश्य हुआ किन्तु प्रतिरोध द्वारा कुछ भी आशा न देख उसने कन्हैया सरदार की अधीनता स्वीकार करली। कांगड़े का दुर्ग समस्त कांगड़ा उपत्यका की कुंजी * थी और उसके प्रवेश द्वारा जयसिंह आसपास के समस्त राजाओं तथा ठाकुरों का महाराजाधिपति बन गया।

जस्सासिंह बढ़ई तथा जयसिंह पहिले एक दूसरे के मित्र थे किन्तु कुसूर का लूट के माल पर उनमें कुछ विवाद हो गया और जैसा कि हम अभी कह चुके हैं जयसिंह ने अहलूवालिया तथा भंगी सरदारों के साथ मिल कर बढ़ई को पंजाब से बाहर निकाल दिया। किन्तु जयसिंह का अब एक और शत्रु उत्पन्न हो गया जो कि जस्सासिंह की अपेक्षा अधिक चतुर तथा कहीं अधिक बलवान था। यह शत्रु रणजीत सिंह का पिता महान सिंह था। विवाद जम्मू की लूट के माल पर हुआ जिस देश पर कि महान सिंह ने १७८० में धावा किया था। कन्हैया सरदार महान सिंह को सदा अपना एक पालित समझता रहा था इस लिये स्वभावतः उस वृद्ध योधा को महानसिंह के अपनी इच्छानुसार जम्मू को विजय कर लेने तथा लूटने पर क्रोध आया। महान सिंह डर गया और जय सिंह से क्षमा मांगने के लिये शीघ्रता के साथ अमृतसर पहुंचा। वृद्ध सरदार उस समय अपने बिछौने पर लेटा हुआ था। उसने महानसिंह को देखते ही अपने मुख को चद्दर से ढक लिया और महान सिंह से बात करने तक से स्पष्ट इन-

*यह दुर्ग १००० वर्ष से अधिक का पुराना था। रणजीतसिंह ने इसकी मरम्मत करायी थी और उस समय तक वह उत्तम अवस्था में था जिस समय तक कि १६०५ के भूकम्प ने उसका नाश नहीं करदिया।

कार कर दिया । * महानसिंह बन्दी किये जाने ही को था जब कि उसे अपनी संशयापन्न स्थिति का पता लग गया। वह अमृतसर से भाग गया और अपने अभिमानी वृद्ध उपकारक से बदला लेने के प्रयत्न करने लगा। जस्सासिंह बढ़ई तथा राजा संसार चन्द कटोच उसकी सहायता के लिये तुरन्त तय्यार हो गये क्योंकि कन्हैया सर्दार ने राजा संसार चन्द से,छल द्वारा कांगड़े का कोट छीन लिया था। १७८४ में बटाला नामक स्थान पर एक युद्ध हुआ। गुरु सुन्दर दास के एक अनुयायी के एक बाण से जय सिंह का इकलौता पुत्र मारा गया। जयसिंह परास्त हो गया। उसका दिल टूट गया और अपने शत्रुओं के साथ सन्धि कर लेने के अतिरिक्त उसे और कोई उपाय न दिखायी दिया। उसने कांगड़े का कोट कटोच सरदार को दे दिया, जस्सा सिंह रामगढ़िया को उसके पुराने प्रदेश लौटा दिये और महानसिंह को प्रसन्न करने के लिये महानसिंह के चार वर्ष के पुत्र रणजीत सिंह के साथ अपनी छोटी सी पोती महताब कौर की सगाई कर दी।

जयसिंह फिर कभी भी अपने पहिले बल को प्राप्त न कर सका और १७८६ में मर गया। उसकी पुत्रवधू सदा कौर (सदाकुर) गद्दी पर बैठी। वह एक अत्यन्त योग्य तथा राजनीतिज्ञ महिला थी और सन् १८२० तक बड़ी योग्यता के साथ अपने प्रदेशों पर राज्य करती रहा। १८२० में उसके जामाई महाराजा रणजीतसिंह ने उसके प्रदेशों को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया।

गुरबख्श सिंह के कोई पुत्र न था और उसकी मृत्यु के

---

* अलीउद्दीन का 'इबरतनामा'।

साथ जयसिंह का वंश समाप्त हो गया ॥ जयसिंह का दूसरा भाई झंडा सिंह बालकपन में ही मर चुका था किन्तु उसके सब से छोटे भाई सिंहा के हेमसिंह नामक एक पुत्र हुआ। और हेमसिंह के वंशधर आज दिन तक कन्हैया मिसल के अवशेष हैं।

आज दिन सरदार काहनसिंह इस कुटुम्ब का कुलपति है और चुनियां अधिनिवेश में रखनवाला नामक ग्राम उस की जागीर है।

६—दल्लेवाल मिसल।

इस मिसल का संस्थापक डेरा बाबा नानक के निकट रावी नदी के तट पर डल्लेवाल नाम के एक छोटे से ग्राम का रहने वाला गोलाबा नामक एक खत्री था। वह सिक्ख हो गया और अपना नाम गोलाबसिंह रख कर अन्य समस्त राजवंश संस्थापकों के समान एक लुटेरा बन गया। इस प्रकार उसने अपरिमेय धन सम्पादन कर लिया और एक बहुत बड़ी सेना एकत्रित कर ली जिसकी सहायता से उसने अपने लिये एक छोटी सी रियासत बना ली। उसका उप-सेनापति तारासिंह गैबा नामक एक मनुष्य था जो उसकी मृत्यु पर उसका उत्तराधिकारी बना। प्रतीत होता है कि तारासिंह एक अत्यन्त चतुर तथा साहसी मनुष्य था। वह जन्म से केवल एक गडरिया था किन्तु उस विनीत अवस्था में भी उसमें उसके भावी महत्त्व के लक्षण दिखायी देते थे, उस का ग्राम एक गहरी खड्ड के एक ओर था और खड्ड के दूसरी ओर एक हरी भरी चरागाह थी। उसने रस्सों का एक पुल बनाकर उस खड्ड को पूर दिया और उस पुल के ऊपर से प्रतिदिन प्रातःकाल तथा सायंकाल वह अपने पशुओं को ले जाने तथा लाने लगा।

कार कर दिया । * महानसिंह बन्दी किये जाने ही को था जब कि उसे अपनी संशयापन्न स्थिति का पता लग गया। वह अमृतसर से भाग गया और अपने अभिमानी वृद्ध उपकारक से बदला लेने के प्रयत्न करने लगा। जस्सासिंह बढ़ई तथा राजा संसार चन्द कटोच उसकी सहायता के लिये तुरन्त तय्यार हो गये क्योंकि कन्हैया सरदार ने राजा संसार चन्द से छल द्वारा कांगड़े का कोट छीन लिया था। १७८४ में बटाला नामक स्थान पर एक युद्ध हुआ। गुरु सुन्दर दास के एक अनुयायी के एक वाण से जय सिंह का इकलौता पुत्र मारा गया। जयसिंह परास्त हो गया। उसका दिल टूट गया और अपने शत्रुओं के साथ सन्धि कर लेने के अतिरिक्त उसे और कोई उपाय न दिखायी दिया। उसने कांगड़े का कोट कटोच सरदार को दे दिया, जस्सा सिंह रामगढ़िया को उसके पुराने प्रदेश लौटा दिये और महानसिंह को प्रसन्न करने के लिये महानसिंह के चार वर्ष के पुत्र रणजीत सिंह के साथ अपनी छोटी सी पोती महताब कौर की सगाई कर दी।

जयसिंह फिर कभी भी अपने पहिले बल को प्राप्त न कर सका और १७८६ में मर गया। उसकी पुत्रवधू सदा कौर (सदाकुर) गद्दी पर बैठी। वह एक अत्यन्त योग्य तथा राजनीतिज्ञ महिला थी और सन् १८२० तक बड़ी योग्यता के साथ अपने प्रदेशों पर राज्य करती रही। १८२० में उसके जामाई महाराजा रणजीतसिंह ने उसके प्रदेशों को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया।

गुरबख्श सिंह के कोई पुत्र न था और उसकी मृत्यु के

---

* अलीउद्दीन का 'इबरतनामा'।

साथ जयसिंह का वंश समाप्त हो गया। जयसिंह का दूसरा भाई झंडा सिंह बालकपन में ही मर चुका था किन्तु उसके सब से छोटे भाई सिंहा के हेमसिंह नामक एक पुत्र हुआ। और हेमसिंह के वंशधर आज दिन तक कन्हैया मिसल के अवशेष हैं।

आज दिन सरदार काहनसिंह इस कुटुम्ब का कुलपति है और चुनियां अधिनिवेश में रक्खनवाला नामक ग्राम उस की जागीर है।

६—दल्लेवाल मिसल।

इस मिसल का संस्थापक डेरा बाबा नानक के निकट रावी नदी के तट पर डल्लेवाल नाम के एक छोटे से ग्राम का रहने वाला गोलाबा नामक एक खत्री था। वह सिक्ख हो गया और अपना नाम गोलाबसिंह रख कर अन्य समस्त राजवंश संस्थापकों के समान एक लुटेरा बन गया। इस प्रकार उसने अपरिमेय धन सम्पादन कर लिया और एक बहुत बड़ी सेना एकत्रित कर ली जिसकी सहायता से उसने अपने लिये एक छोटी सी रियासत बना ली। उसका उप-सेनापति तारासिंह गैया नामक एक मनुष्य था जो उसकी मृत्यु पर उसका उत्तराधिकारी बना। प्रतीत होता है कि तारासिंह एक अत्यन्त चतुर तथा साहसी मनुष्य था। वह जन्म से केवल एक गड़रिया था किन्तु उस विनीत अवस्था में भी उसमें उनके भावी महत्त्व के लक्षण दिखायी देते थे, उस का ग्राम एक गहरी खड्ड के एक ओर था और खड्ड के दूसरी ओर एक हरी भरी चरागाह थी। उसने रस्सों का एक पुल बनाकर उस खड्ड को पूरदिया और उस पुल के ऊपर से प्रतिदिन प्रातःकाल तथा सायंकाल वह अपने पशुओं का ले जाने तथा लाने लगा।

इस विचित्र इन्जिनियरिंग कुशलता के कारण उसे 'गुँगा' की उपाधि मिल गयी। अब यह मिसल की सरदारी का अधिकारी बना तो फगूर के आक्रमण में यह संगी तथा अन्य सिक्खों के साथ गया और उस नगर की लूट में चार लाख रु० के भूषण और इसके अतिरिक्त नकद धन तथा अन्य बहुमूल्य सम्पत्ति उसके हाथ आयी। उसने गंज के प्रभावशाली चौधरी गौहर दास नामक को सिक्ख मत में लेकर अपनी मिसल के बल को और भी अधिक बढ़ा लिया। गौहरदास अपने समस्त अनुयायियों सहित 'पहुल लेकर' डल्लेवालिया मिसल में सम्मिलित हो गया। नारसिंह सरहिन्द की लूट में भी उपस्थित था। अब लगभग ३००० सवार उसकी सेना में थे और फतहाबाद तथा आस पास के समस्त प्रदेश को उसने अपने अधीन कर लिया था।

किन्तु इस समय तक रणजीतसिंह ने सिक्ख साम्राज्य को संघटित करने का कार्य आरम्भ कर दिया था। और फतहसिंह अहलूवालिया के अधीन डल्लेवालिया सरदार के विरुद्ध एक सेना भेजी गयी। तारासिंह भाग गया और उसकी रियासत लेकर सिक्ख साम्राज्य में मिलाली गयी। तारासिंह की मृत्यु पर रणजीतसिंह ने उसके पुत्रों दश्वन्धसिंह तथा चन्दा सिंह को कुछ ग्राम जागीर में दे दिये। किन्तु उनके व्यवहारसे असन्तुष्ट हो महाराजा ने उनसे जागीर छीन कर उसे बाबा विक्रमसिंह बेदी को दे दी। इस प्रकार मिसल का अन्त हो गया।

७—निशानवालियामिसल

इस मिसल की विशेषता यह थी कि जब कभी सिक्ख किसी युद्ध के लिये एकत्रित होते थे तो इस मिसल का सं-

स्थापक अम्वाले का संगतसिंह सिक्खों की जातीय पताका को लेकर चला करता था। संगतसिंह की रियासत सतलज के उस पार थी और वह वर्त्तमान संयुक्त प्रान्त में लूट मार किया करता था। मोहरसिंह सगतसिंह का उत्तराधिकारी बना। किन्तु उसने अपने जीवन भर कोई भी वर्णन करने योग्य कार्य नहीं किया। मोहर सिंह के कोई सन्तान न थी इस कारण उसकी मृत्यु पर मिसल का कोई भी वास्तविक नेता न रहा। ठीक उसही समय रणजीतसिंह सतलज के तट के आस पास घूम रहा था। रणजीतसिंह ने इस अवसर को बड़ा शुभ समझा और अपने सुप्रसिद्ध सेनापति मोहकमचंद को एक प्रबल सेना सहित इस मिसलको अधीन करनेके लिये भेज दिया। दीवान को सहज ही विजय प्राप्त हो गयी। निशानवालियों को क्षेत्र से निकाल दिया गया और १८०८ ई० में मिसल का अन्त होगया।

८—सिंहपुरिया मिसल

इस मिसल का संस्थापक सुप्रसिद्ध नवाब कपूरसिंह था, हम ऊपर* लिख चुके हैं कि किस प्रकार फैज़ुल्लाहपुर का निर्धन जाट कपूरसिंह बढ़ते २ पंजाब के सब से अधिक बलवान सरदारों में से एक हो गया। देहली सरकार ने अमृतसर की सिक्ख सभा के पास ख़िलअत तथा नवाबकी उपाधि भेजीथी किसीने भी उस उपाधि अथवा ख़िलअतको स्वीकार न किया कपूरसिंह पंखा झल रहा था। अर्द्ध परिहास के साथ यह कहा गया कि नवाब की उपाधि उसको देदीजावे। इसपर उसे ख़िलअत से भूषित किया गया और वह उसही समयसे नवाब कपूरसिंह कहलाने लगा। निस्सन्देह कभी कभी परि-

*देखो अध्याय १३ और उसका एक नोट।

इस विचित्र इन्जिनियरिङ्ग कुशलता के कारण उसे 'गैवा' की उपाधि मिल गयी। जब वह मिसल की सरदारी का अधिकारी बना तो कसूर के आक्रमण में वह भंगी तथा अन्य सिक्खों के साथ गया और उस नगर की लूट में चार लाख रु० के भूषण और इसके अतिरिक्त नक़द धन तथा अन्य बहुमूल्य सम्पत्ति उसके हाथ आयी। उसने गंज के प्रभावशाली चौधरी गौहर दास नामक को सिक्ख मत में लेकर अपनी मिसल के बल को और भी अधिक बढ़ा लिया। गौहरदास अपने समस्त अनुयायियों सहित 'पहुल लेकर' दल्लेवालिया मिसल में सम्मिलित हो गया। तारासिंह सरहिन्द की लूट में भी उपस्थित था। अब लगभग ३००० सवार उसकी सेना में थे और फतहाबाद तथा आस पास के समस्त प्रदेश को उसने अपने अधीन कर लिया था।

किन्तु इस समय तक रणजीतसिंह ने सिक्ख साम्राज्य को संघटित करने का कार्य आरम्भ कर दिया था। और फ़तहसिंह अहलूवालिया के अधीन डल्लेवालिया सरदार के विरुद्ध एक सेना भेजी गयी। तारासिंह भाग गया और उसकी रियासत लेकर सिक्ख साम्राज्य में मिलाली गयी। तारासिंह की मृत्यु पर रणजीतसिंह ने उसके पुत्रों दशवन्धसिंह तथा चन्दा सिंह को कुछ ग्राम जागीर में दे दिये। किन्तु उनके व्यवहारसे असन्तुष्ट हो महाराजा ने उनसे जागीर छीन कर उसे बाबा विक्रमसिंह बेदी को दे दी। इस प्रकार मिसल का अन्त हो गया।

७—निशानवालिया मिसळ

इस मिसल की विशेषता यह थी कि जब कभी सिक्ख किसी युद्ध के लिये एकत्रित होते थे तो इस मिसल का सं-

नेताओं को अपने अपने लिये राज्य बना लेने का उत्साह हुआ उसके पश्चात समस्त पंजाब में सिक्ख रियासतें बरसाती मेंढ़कों के समान निकल पड़ीं।

नवाब कपूरसिंह का अमृतसर में सन् १७५३ में देहान्त हुआ। उसे सिक्ख सेना में जो कुछ विशेष सन्मान प्राप्त था उसे वह अपनी मृत्यु के समय जस्सासिंह अहलूवालिया को प्रदान कर गया। उसने गुरू गोविन्द सिंह का एक लोहदण्ड *भी जस्सासिंह को दे दिया और उसे ख़ालसा का भावी नेता कहकर आवाहन किया।

तथापि कपूर सिंह का भतीजा ख़ुशाल सिंह उसका उत्तराधिकारी बना। यह सरदार बुद्धिमत्ता तथा वीरता में अपने चचा के समान था और उसन सतलज के दोनों ओर अपने प्रदेशों को बढ़ा लिया। उसके राज्य में जलंधर, नूरपुर, बरहामपुर, भरतगढ़, पट्टी इत्यादि सम्मिलित थे। अपने सुयोग्य पूर्वाधिकारी के समान उसने भी बहुत से लोगों को सिक्ख किया जिनमें से एक पटियाले का राजा आलासिंह भी था। १७९५ में ख़ुशाल सिंह का देहान्त हो गया और उसका पुत्र बुधसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। किन्तु इस समय रणजीत सिंह समस्त छोटी छोटी सिक्ख रियासतों को अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर रहा था और बुधसिंह की रियासत उस से बच न सकती थी। सतलज के इस पार का समस्त प्रदेश उस से छीन लिया गया और सरदार को भाग कर ब्रिटिश राज्य में शरण लेनी पड़ी जहां पर कि वह सन् १८१६ तक अर्थात् अपनी मृत्यु के समय तक शान्ति पूर्वक रहता रहा।

---

*यह शस्त्र अभी तक अमृतसर के अकाल बुङ्गा में रक्खा हुआ है।

हानिकारी भी उत्तम भविष्यवक्ता सिद्ध होते हैं और इस मनुष्य के सहयोधाओं ने उसे जिस आदराभास में सुसज्जित किया उस के द्वारा उसकी आकांक्षा तथा भाग्य दोनों जाग उठे। उसने कुछ योधाओं को एकत्रित कर फ़ैज़ुल्लाहपुर नामक अपना जन्मस्थान उस नगरके संस्थापक तथा स्वामी फ़ैज़ुल्लाह से छीन लिया और उसका नाम सिंहपुर रख लिया। इस ग्राम के नाम पर ही मिसल का नाम 'सिंह पुरिया' मिसल* रख दिया गया। नवाब कपूरसिंह ने आस पास के प्रदेश को विजय कर लिया और अपनी सेना को बढ़ा कर २५०० सवारों तक पहुंचा दिया। उसका प्रत्येक सवार निर्भयता, साहस, धर्मोन्माद तथा क्रूरता में अपने नेता का प्रतिस्पर्धी था। इन साहसी वीरों की सहायता से उसने अमृतसर के बाहर से लेकर देहली की दीवारों तक समस्त देश को रौन्द डाला। जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं जस्सासिंह कलाल तथा पटियाले के आलासिंह के प्रतिष्ठित होनेके पूर्व कपूरसिंह सब से अधिक बलवान सिक्ख सरदार था। वह ख़ालसा में सब से अधिक धर्मात्मा पुरुष प्रसिद्ध था क्योंकि उसने अपने हाथ से ५०० मुसलमानों का वध किया था। उस के हाथ से 'पहुल' लेना बड़े पुण्य का कार्य समझा जाता था और इस में सन्देह नहीं कि जिन जिन को उस ने सिक्ख बनाया उनमें से बहुत से बढ़ते बढ़ते प्रबल सरदार बन गये।

बन्दा के पश्चात् सब से पहिले उसने ही एक व्यवस्थित सिक्ख सेना बनाई और उसका नाम 'ख़ालसा दल' रक्खा। और उसही की वीरता, सत्यता तथा धर्मोन्माद द्वारा सिक्ख

*ग्राम के पहिले नाम पर इस मिसल को कोई कोई फ़ैज़ुल्लाहपुरिया मिसल भी कहते हैं। यह ग्राम अमृतसर के निकट है।

अधीन मरहट्टों ने सिक्ख राज्य पर आक्रमण किया उस समय भी भगेलसिंह ही ने मरहट्टों का स्वागत कर उन्हें सहायता दी।

भगेल सिंह की मृत्यु पर कलसिया वंश के संस्थापक गुरुबख्श सिंह का पुत्र जोधसिंह इस मिसल का नेता हुआ। जोध सिंह भगेल सिंह का एक साथी तथा परम मित्र था। वह एक चतुर आदमी था और उसने अपने राज्य में बहुत कुछ वृद्धि कर ली। उसने फुलकियान सरदारों के प्रदेशों को भी न छोड़ा और इन सरदारों ने उसके बारम्बार के धावों से तंग आकर एक विवाह सम्बन्ध द्वारा उसे सन्तुष्ट किया। पटियाले के राजा ने उसके पुत्र हरा सिंह के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। किन्तु थोड़े दिनों पीछे ही जोधसिंह रणजीतसिंह का वशवर्ती हो गया और १८०७ में नारायणगढ़ के परिवेष्टन में तथा १८१८ में मुलतान के परिवेष्टन में वह अपनी सेना सहित उपस्थित था मुलतान के परिवेष्टन में ही जोधसिंह की मृत्यु हुई। उसकी मृत्यु के पश्चात उसका राज्य कलसिया सरदार के हाथों में चला गया। यह कलसिया वंश आज दिन तक पंजाब के राज्यवंशों में से एक है।

१०—शहीद तथा निहंग मिसल।

इस मिसल का अत्यन्त संक्षेप से वर्णन कर देना ही पर्याप्त होगा। सतलज के पूर्वीय तट पर इस मिसल का बहुत बड़ा प्रदेश था। और कर्मसिंह तथा गुरबख्शसिंह के अधीन २००० सवार इसकी सेना में थे। किन्तु इस मिसल की—विशेषता यह थी कि इस में वे धर्मोन्मत्त पुरोहित स॰

९–करोड़ा सिंही मिसल।

यह मिसल अपने प्रथम नेता के जन्म स्थान के नाम पर पंजगढ़िया मिसल भी कहलाती है। इस का संस्थापक पंजगढ़ नामक ग्राम का रहने वाला करोड़ी मल नामका एक जाट था।

निस्सन्देह वह आरम्भ में एक लुटेरा था और अपने सुप्रसिद्ध उपसेनापतियों मस्तानसिंह तथा कर्मसिंह की सहायता से उसे एक राजवंश का संस्थापन करने में सफलता प्राप्त हुई। उसके कोई सन्तान न थी इस कारण उसकी मृत्यु के पश्चात उसका सब से अधिक साहसी तथा नितान्त अनुयायी भगेलसिंह उसका उत्तराधिकारी बना। इस सरदार के अधीन मिस्ल की सत्ता बहुत बढ़ गयी, सेना की संख्या १२००० योधाओं तक पहुंची और उसका राज्य सतलज से जलंधर दोआब तक फैलगया। इस मिस्ल की राजधानी करनाल के निकट 'चलडाली' नामक नगरी थी।

किन्तु जातीय दृष्टि से सिक्खों में भगेल सिंह का नाम आदर से नहीं लिया जाता। वह होसब से पहिले उस समय शाही सेना के साथ जा मिला था जब कि २०००० योधा लेकर शहजादे जवानबख्त ने सिक्खों पर आक्रमण किया था। उस बार आरम्भ में शाही सेना को कई विजय प्राप्त हुईं किन्तु अन्त में राजा पटियाला, अन्य फुलकियान सरदारों तथा कन्हैया और रामगढ़िया मिसलों की सेनाओं ने मिलकर शाही सेना को परास्त कर दिया। इस युद्ध में जो १७७८–७९ की सरदियों भर चलता रहा भगेल सिंह सदा अपने सहधर्मियों के विरुद्ध देहली सरकार की ओर से लड़ता रहा इस के अतिरिक्त जिस समय १७८८ में अम्बाराव के

अधीन मरहट्टों ने सिक्ख राज्य पर आक्रमण किया उस समय भी भगेलसिंह ही ने मरहट्टों का स्वागत कर उन्हें सहायता दी।

भगेल सिंह की मृत्यु पर कलसिया वंश के संस्थापक गुरुबख्श सिंह का पुत्र जोधसिंह इस मिसल का नेता हुआ। जोधसिंह भगेल सिंह का एक साथी तथा परम मित्र था। वह एक चतुर आदमी था और उसने अपने राज्य में बहुत कुछ वृद्धि कर ली। उसने फुलकियान सरदारों के प्रदेशों को भी न छोड़ा और इन सरदारों ने उसके बारम्बार के धावों से तंग आकर एक विवाह सम्बन्ध द्वारा उसे सन्तुष्ट किया। पटियाले के राजा ने उसके पुत्र हरा सिंह के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। किन्तु थोड़े दिनों पीछे ही जोधसिंह रणजीतसिंह का वशवर्ती हो गया और १८०७ में नारायणगढ़ के परिवेष्टन में तथा १८१८ में मुलतान के परिवेष्टन में वह अपनी सेना सहित उपस्थित था मुलतान के परिवेष्टन में ही जोधसिंह की मृत्यु हुई। उसकी मृत्यु के पश्चात उसका राज्य कलसिया सरदार के हाथों में चला गया। यह कलसिया वंश आज दिन तक पंजाब के राज्यवंशों में से एक है।

१०—शहीद तथा निहंग मिसल।

इस मिसल का अत्यन्त संक्षेप से वर्णन कर देना ही पर्याप्त होगा। सतलज के पूर्वीय तट पर इस मिसल का बहुत बड़ा प्रदेश था। और कर्मसिंह तथा गुरुबख्शसिंह के अधीन २००० सवार इसकी सेना में थे। किन्तु इस मिसल की—विशेषता यह थी कि इस में वे धर्मोन्मत्त पुरोहित स०

सिम्मिलित थे जो अपने आप को सिक्ख शहीदों की सन्तान व ताते थे और गुरु गोविन्दसिंह के स्थापन किये हुए सिक्ख मत के प्राचीन शुद्ध स्वरूप को बनाये रखना अपना धर्म सम-झते थे। 'निहंग' अर्थात् व लोग जो 'अकाली' कहलाते हैं। अब दिनों दिन लोप हो रहे हैं किन्तु रणजीतसिंह के एक महान सेनापति फूलसिंह के वीर कृत्यों के कारण इन निहंगों का नाम इतिहास में सदा जीवित रहेगा।

११—फुलकियां मिसल।

मिसलों में सब से अधिक महत्व की मिसल फुलकियां मिसल है क्योंकि सिक्खों में सब से पहिले इस मिसल के सरदार का ही मुसलमानों तथा स्वयं सिक्खों दोनों ने एक स्वाधीन राजा स्वीकार किया।

इस मिसल का संस्थापक फूल नामक एक सिन्धू जाट था जो १६१६ में उत्पन्न हुआ था। समझा जाता है कि जैसल-मेरके संस्थापक जैसलसे यह तेरहवीं पीढ़ीमें था। इसमें सं-देह नहीं कि फूल एक बड़े प्रसिद्ध कुलमें उत्पन्न हुआथा क्यों कि कहा जाताहै कि शाहजहानने उसका विशेष सत्कार किया था। प्रतीत होता है कि फूल आरम्भसे ही सिक्ख मतकी ओर विशेष रुचि दर्शाता था। वह गुरु हरगोविन्द का अनुग्रहपात्र बनगया और कहते हैं कि गुरु ने यह भविष्यवाणी की थी कि फूल तथा उसके वंशधर बहुत बड़े महत्व को प्राप्त होंगे। यह भविष्यवाणी यथेष्ट पूरी हुई। फूल के पुत्र पटियाला, झीन्ध तथा नाभा के राजकुलों और भदोर, मलोर, जियन्दान इत्यादि के प्रसिद्ध सरदारों के पूर्वज हुए। और पटियाला, झीन्ध तथा नाभा की रियासतें उस के नाम पर फुलकियांन कहलायीं।

फूल ने अपना समय जैसलमीर के मुसलमान राजपूतों तथा जगरांओं के शाही शासक के साथ युद्ध करने में व्यतीत किया अन्त में सरहिन्द के शासक ने उसे क़ैद करलिया। वह १६५२ में अंगविकृति रोग से मरगया *।

फूल का पुत्र राम चन्द उसका उत्तराधिकारी हुआ। रामचन्द एक वीर योधा तथा योग्य नेता था। वह निरन्तर भट्टियों के साथ तथा 'कोट' के सरदार के साथ युद्ध करने में लगा रहता था और उनमें से प्रत्येक को उसने सर्वथा अपने अधीन कर लिया था। अन्त को सन् १७१४ ई० में ७५ वर्ष की आयु में चैनसिंह नामक एक मनुष्य के पुत्रों ने उसे वध कर डाला। यह चैन सिंह रामचन्द के अपने उपसेनापतियों में से एक था और रामचन्द ने स्वयं उसे मार डाला था।

रामचन्द का तीसरा पुत्र सुप्रसिद्ध आला सिंह जो सन् १६९५ में उत्पन्न हुआ था अपने पिता का उत्तराधिकारी बना। आलासिंह के अधीन सिक्खों ने पहिली बार एक स्वाधीन जाति की पदवी को प्राप्त किया। अपने मुसलमान पड़ोसियों तथा प्रतियोगियों के साथ छोटी मोटी लड़ाइयां लड़ने के पश्चात् आलासिंह की जलंधर दोआब के शाही शासक नवाब असद अली के साथ मुठभेड़ हुई। आलासिंह ने एक घोर संग्राम तथा विकट संहार के पश्चात् १७३१ में नवाबको परास्त किया। नवाब स्वयं इस संग्राममें काम आया इससंग्राममें

---

* एक लौकिक कथा के अनुसार वह योगी था और जब उससे करदेने के लिये कहा गया तो उसने अपना श्वास चढ़ाकर मृत्यु का बहाना करलिया उसका कोई अनुचर भी उसके योग बल को न जानता था इसलिये उसे मृत समझ लिया गया और समाधि खोलने से पहिले पहिले ही उसे दाह कर दिया गया।

भट्टी राजपूतों तथा शाही सेना का संयुक्त दल आलासिंह के विरुद्ध था इस लिये इस विजय द्वारा आलासिंह की प्रतिष्ठा अत्यन्त बढ़ गयी और सतलज के दोनों ओर से सिक्खों के समूह के समूह आकर उसकी पताका तले एकत्रित होने लगे। उसकी कीर्ति देहली तक पहुंच गयी और सम्राट मोहम्मद शाह ने इस भय से कि आला सिंह उसका एक भयंकर शत्रु न बन जाये उसे सामोपचार द्वारा विजय करने का संकल्प किया। सम्राट ने उसके पास २१ रमज़ान ११६७ हि० *का लिखा हुआ एक शाही फ़रमान और कुछ दूत भेजे, सरहिन्द के प्रबन्ध में उस से सहायता की प्रार्थना की और उसे लिखा कि "यदि आप देहली सरकार को अपने व्यवहार से सन्तुष्ट कर देंगे तो आप को 'राजा' की उपाधि दे दी जावेगी"।

उसकी आयु के अगले १८ वर्ष अपने पैतृक शत्रुओं भट्टियों तथा सरहिन्द के शाही फ़ौजदार के साथ युद्ध करने में व्यतीत हुये। फ़ौजदार ने उसे बन्दी कर लिया किन्तु एक भक्त अनुयायी के चातुर्य तथा आत्मोत्सर्ग द्वारा वह फिर स्वतन्त्र हो गया। १७४९ में उसने भवानीगढ़ का दुर्ग बनाया और १७५२ में उसने सनावर का ज़िला विजय किया जिसमें ८४ ग्राम थे। इन ग्रामों में से एक 'पटियाला' था जो आज दिन पटियाला नामक रियासत की राजधानी है। यहां पर उसने एक कच्चा दुर्ग बनाया जिसका नाम 'गढ़ी सोढियान' रखा और जिसके अवशेष अभी तक दिखायी देते हैं। १७५७ में आठ दिन के विकट युद्ध के पश्चात उसने हिसार के मुग़ल शासक तथा भट्टियों को परास्त किया।

सिक्खों की विजयों और विशेषकर आलासिंह की विजयों

*मोहम्मद तारीख़ पृ० १२६ ।

ने अहमदशाह दुर्रानी का ध्यान पंजाब की ओर आकर्षित किया। १७६२ में वह सरहिन्द के फ़ौजदार की सहायता के लिये लपका हुआ आया और लुधियाने के निकट एक घोर संग्राम में उसने सिक्खों को परास्त किया। इस युद्ध में सहस्रों सिक्ख मारे गये और सहस्रों ही घायल हुए। * आलासिंह क़ैद कर लिया गया किन्तु दुर्रानी उसके वीरता भरे व्यवहार से ऐसा चकित रह गया कि आलासिंह की धर्मपत्नी रानी फत्तो के चार लाख का दण्ड भर देने पर उसने आलासिंह को छोड़ दिया। शाह ने उसकी स्वाधीनता को स्वीकार कर लिया, उसे ख़िलअत प्रदान की और एक पूर्ण सुहृद के समान उसे आलिंगन किया।

१७६५ में आलासिंह का देहान्त हुआ और उसका पुत्र अमरसिंह गद्दी पर बैठा। इस बीच पंजाब में सिक्खों का बल बड़े वेग के साथ बढ़ रहा था। यहां तक कि जब दुर्रानी बादशाह जो अब शीघ्रता के साथ वृद्ध हो रहा था १७६७ में फिर हिन्दोस्तान आया तो उसने अमरसिंह के युद्ध व्यापारों में हस्ताक्षेप करना उचित न समझा। इसके विपरीत उसने विवश हो अपनी विवशता को अनुग्रह बताते हुए अमरसिंह को एक स्वतंत्र शासक स्वीकार करना तथा राजत्व के चिन्ह रूप उसे एक पताका तथा एक ढोल भेंट करना ही अपने लिये बुद्धिमत्ता का कार्य समझा। यह भी स्वीकार कर लिया गया कि अमरसिंह को अपने नाम का सिक्का ढालने का अधिकार था।

---

* यह सुप्रसिद्ध 'घुल्लू घाड़ा' था जिसे हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं (अ० १६)।

अपने सांग्रामिक जीवन के आरंभ में अमरसिंह ने मलेर-कोटला पर आक्रमण किया और वहां के नवाब जमालखान को युद्ध में मार डाला। थोड़े दिनों पीछे उसने सैफ़ाबाद और बरना के दुर्ग विजय किये, मनीमाजरा और कोटकपूरा को हस्तगत किया, फ़रीदकोटपर धावा किया और भटिंडा के राजा सुखचैन को गद्दी से उतार कर उस प्रदेश को अपने राज्य में मिला लिया। सुखचैन को उसने १२ ग्राम जागीर में दे दिये। इसके चार वर्ष पीछे अर्थात् १७८१ में अमरसिंह जलोदर के रोग में मर गया।

अमरसिंह का ६ वर्ष का पुत्र साहिबसिंह अपने पिता का उत्तराधिकारी बना। इस सरदार के शासन काल में बड़े बड़े परिवर्तन हुए। प्रसिद्ध अंगरेज साहसिक जार्ज टामस उसके प्रदेश में कई बार सेना सहित घुस आया किन्तु १८०१ की सन्धि में उसे धन देकर सन्तुष्ट कर दिया गया। इस बीच रणजीतसिंह ने सतलज के पार के प्रदेशों की ओर ध्यान दिया और उसका सब से बड़ा सेनापति मोहकमचन्द इन प्रदेशों को एक एक कर विजय कर अपने स्वामी के राज्य में मिलाने लगा। इसके पश्चात् महाराजा का ध्यान साहिब सिंह की ओर गया किन्तु दोनों में एक सन्धि हो गयी जिसमें दोनों सरदारों ने परस्पर स्थायी मैत्री बनाये रखने की शपथ खायी और इस मैत्री के चिन्ह रूप एक दूसरे से अपनी पगड़ियां बदलीं।

ठीक उस समय नैपोलियन के भारतीय आक्रमण का प्रवाद उड़ा हुआ था। जिसके कारण ब्रिटिश सरकार बड़ी चिन्ता में पड़ी हुई थी, और इस भयंकर विपत्तिको रोकने को यथाशक्ति प्रयत्न कर रही थी। ब्रिटिश सरकार तथा फ़्रांस

और अफ़गानिस्तान की सरकारों में पत्र व्यवहार हो रहा था। सामयिक लाट लार्ड मिन्टो रणजीतसिंह के साथ भी मैत्री स्थापन करना चाहता था। किन्तु साथ ही वह यह न चाहता था, कि रणजीतसिंह को अत्यधिक बलवान होने दिया जावे। इस ही कारण महाराजा से सतलज के दक्षिण से अपनी सेनाएं हटा लेने तथा अंगरेजों के साथ संधि कर लेने की प्रार्थना करने के लिये मेटकाफ को उसके पास दूत रूप से भेजा गया था। यदि ब्रिटिश सरकार को सर्वथा सफलता होती तो वह भारत तथा नैपोलियन के बीच चार प्रबल शिलाएं खड़ा कर देना चाहता थी। अर्थात् फ़ारिस, अफ़ग़ानिस्तान, रणजीत सिंह तथा सतलज के इस पार की सिक्ख रियासतें। उन दिनों रणजीत सिंह उत्तरीय भारत में ब्रिटिश सरकारका दिन प्रतिदिन एक प्रबल प्रतियोगी होता जाता था, और इसमें सदेह नहीं कि सतलजके दक्षिण से रणजीत सिंह को निकाल देने का परिणाम जब कि एक ओर यह होता कि उस प्रदेश की प्रबल सिक्ख रियासतों की सेनाएं आदिक बृटिश सरकार के वश तथा प्रयोग में आजातीं। दूसरी ओर उसही परिमाण में रणजीतसिंह का बल भी कम होजाता। अन्त को मेटकाफ की राजनीतिज्ञता ने औकुरलोनी के सांग्रामिक व्यापार का सहायता से सफलता लाभ की और ३० मई सन् १८०६ को रणजीतसिंह के साथ सुप्रसिद्ध मिण्टो-मेटकाफ़ सन्धि करली गई। इस सन्धि के अनुसार पटियाला तथा उसकी सहवंशी नाभा तथा जीन्धकी रियासतें और सतलज के पार की अन्य रियासतें ब्रिटिश सरकार के रक्षण में आगयीं और उस दिन से आज दिन तक प्रायः लगातार

हा ये रियासतें ब्रिटिश सरकार की अनुरक्त सहायक रही हैं*।

मिसलों के अधीन पंजाब की शासन पद्धति।

रणजीतसिंह के समय से पूर्व की सिक्ख रियासतें छोटी छोटी रियासतें थीं जिनमें प्रत्येक रियासत का प्रधान सेनापति ही वहां का शासक अथवा राजा होता था। इन छोटी २ रियासतों की सेनाएं ही उनका मुख्य आधार थीं इसलिये आरम्भ में इन सिक्ख सेनाओंका संक्षेप से वर्णन करना आवश्यक है।

रणजीतसिंह के समय से पूर्व ख़ालसा की सेनाओं में केवल तुरगबल अर्थात् सवारही सवार हुआ करते थे। घोड़े प्रायः भटिन्डा के निकट लक्खी जङ्गल में पाले जाते थे और यह समझा जाता था कि प्रत्येक सच्चा ख़ालसा एक घुड़सवार है। वास्तव में कई पीढ़ियों तक काठी ही ख़ालसा का घर रही। अनुमान किया जाता था कि सन् १७८३में सिक्ख सैनिकों की संख्या ३ लाख थी किन्तु उसे दो लाख समझ लेना अधिक उचित प्रतीत होता है•। किन्तु प्रतीत होता है

---

* बारहवीं मिसल सुकर चाकिया मिसल थी जिससे महाराजा रणजीत सिंह की उत्पत्ति हुई। इस ग्रन्थ के लेखक का विचार है कि इसही माला के दूसरे ग्रन्थ में सर्वथा रणजीतसिंह का ही इतिहास प्रकाशित किया जावे इसलिये वह इस बारवीं मिसल के वृत्तान्त को उस समय के लिये ही छोड़ देना उचित समझता है।

• फोर्स्टर की 'यात्रा' १—३३१।

कि इस सेना का वास्तविक बल ब्राउन * के अनुमान अनु-सार ७३००० सवार तथा २५००० पदातिबल (पैदलों) से अधिक न था अथवा इससे भी अधिक ठीक ठीक जैसा कि जार्ज टामस ने लिखा है ६०,००० सवार तथा ५००० पैदलही था। जार्ज टामस एक अङ्गरेज़ साहसिक था जिसकी स्वयम् एक समय सिक्खों के साथ मुठभेड होगयी थी।

पदातिबल जिसका ऊपर लिखा हुआ अन्तिम परिसंख्यान बिलकुल ठीक प्रतीत होता है केवल दुर्गों की रक्षा के काम में लाया जाता था †

सन् १७६२ में लाहौर की पराजित सेना ख्वाजा ओवेद के नेतृत्व में जो १२ तोपें गुजरानवाले में छोड़ गई थी उन तोपों को लेलेने से पूर्व ऐसा प्रतीत होता है कि सिक्खों के पास कोई भी तोप न थी। किन्तु हम समझते हैं कि सिक्खों ने किसी युद्ध में इन तोपों का भी प्रयोग नहीं किया। सन् १८०० ई० तक सिक्खों के पास चालीस से अधिक तोपें ‡(field guns) न थीं। "सब युद्धके लिये सन्नद्ध होतेथे तो वे प्रायः खड्ग भाले तथा दस्ती बन्दूकें (musket)लेजाते थे॥" ये लोग शीघ्रही घोड़े की पीठ पर से बन्दूक का ठीक ठीक निशाना लगाने के लिये प्रसिद्ध होगये और कहा जाता है कि यह निपुणता उन्होंने क्रमागत अपने पूर्वजों से प्राप्त की थी

*(India Tracts)करनल फ्रेन्कलिन अपनी "जार्ज टामसकी जीवनी" में लिखता है कि लड़ने योग्य सैनिकों की संख्या ६४००० थी।

† कनिङ्घम।

‡ फ्रेन्किलिन (जार्ज टामस की जीवनी) जो स्वयं जार्ज टामस से उद्धृत करता है।

॥सय्यद मोहम्मद लतीफ़।

जोकि धनुष के प्रयोग में अत्यन्त निपुण थे। *

आरम्भ के दिनों में सिक्खों की कोई उचित वर्दियां नहीं थीं। प्रत्येक साधारण सैनिक एक पगड़ी एक कुरता और एक जांघिया पहिने होता था और उसके पांव में एक कसा हुआ देशी जूता होताथा स्यात-सरदार अर्थात् सेनापति शृंखलों का कवच पहरते थे। और उसके साथ एक फ़ौलाद का शिरस्त्राण, तथा छाती, पीठ, कलाई और जंघा के लिये कवच धारण करते थे। उनके उन अस्त्र शस्त्रों का एक चित्र जो रणजीतसिंह के समय में प्रचलित थे इसके साथ दिया जाता है।

रणजीतसिंह ने अङ्गरेज़ों की भारतीय सेना में के भागे हुए कुछ लोगों और कुछ फ़्रान्सीसी, इटेलियन तथा अमरीकन अफ़सरोंकी सहायतासे जिनमें से कुछ नेपालियनके युद्धों में रह चुके थे सिक्खों को क़वायद आदि की शिक्षा दी किन्तु इससे पूर्व सिक्खों को क़वायद के नाम तक का बोध न था। क़वायद के स्थान पर उनका साहस तथा उत्साह ही था जो कार्य करते थे। प्रत्येक सैनिक जानता था कि उसे विजय अथवा मृत्यु दोनोंमें से एक अवश्य लाभ कर लेनी चाहिये तथापि प्रत्येक आक्रमण का एक प्रधान सेनापति होता था जिसे अन्य समस्त सेनापति इस कार्य के लिये चुनते थे और यह समस्त सेनापति प्रधान सेनापति की आज्ञाओंके अनुसार पृथक २ अपनी सेनाओं को नय करतेथे। निस्सन्देह बहुत कुछ इन छोटे छोटे अध्यक्षों की विलक्षणता पर ही छोड दिया जाता था।

---

* कनिंहम।

यह शस्त्र जो महाराजा रणजीतसिंहजी के समय में

सिक्खों की जातीय पताका प्राचीन हिन्दू पताका के अनुरूप केसरी * वर्ण की होती थी किन्तु मुझे यह पता नहीं लगसका कि उसके ऊपर कोई सूत्रपात अथवा चित्र थे या नहीं।

सिक्खों का सिंहनाद यह थाः—

"सत-श्री अकाल, वाह गुरु जी का खालसा श्री वाह गुरु जी की फतह।"

सिक्ख लोग जिस युद्ध पद्धति का अनुसरण करते थे उसे मेजर फ्रेन्कलिन ने इस प्रकार वर्णन किया है†:—

"सिक्खों के शस्त्र एक भाला एक बन्दूक और एक खड्ग हैं। टामस साहब के कथनानुसार उनके युद्ध करने की विधि विचित्र है। स्नान प्रार्थना आदिक अपने आवश्यक धार्मिक कर्त्तव्यों को पूरा करने के पश्चात् वे एक विचित्र सावधानी के साथ अपने शिर तथा डाढ़ी में कंघा करते हैं। फिर अपने अपने घोड़ों पर सवार हो वे शत्रु की ओर जाते हैं और कभी आगे बढ़ते हुए और कभी पीछे हटते हुए उनके साथ लगातार युद्ध करते रहते हैं यहां तक कि घोड़ा तथा सवार दोनों एक समान थक जाते हैं। फिर वे शत्रु से कुछ दूर निकल जाते हैं और खेतों में पहुंचकर अपने घोड़ों को स्वच्छन्द चरने के लिये छोड़ देते हैं और स्वयम् अपने लिये कुछ दाने भून लेते हैं और उस अल्प आहार द्वारा थोड़ा बहुत अपनी भूक को शान्त कर यदि शत्रु निकट हो तो फिर लड़ना

---

* It is a copy of the illustration gives in Osbornes 'Court and Camp of Ranjit Singh' and is, perhaps, his own drawing.

†Memories of George Thomas p. 71.

आरम्भ कर देते हैं। और यदि शत्रु पीछे हट गया हो तो वे अपने पशु के लिये चारा आदिक डाल देते हैं और अपने लिये कुछ भोजन प्राप्त करने का यत्न करते हैं। शत्रु के देश में रहते हुये वे प्रायः कभी भी डेरों का सुख नहीं भोगते इस लिये एक सिक्ख सैनिक का आहार उत्कृष्ट अथवा स्वादिष्ट कुछ भी नहीं समझा जा सकता। वे भूमि पर बैठे होते हैं उनके सामने एक चटाई पड़ी होती है और एक ब्राह्मण जो इस ही कार्य के लिये नियुक्त होता है प्रत्येक के सन्मुख थोड़ा थोड़ा भोजन परोस देता है और वे आटे की रोटियां ही जिन्हें वे खाते हैं उनके लिये रकाबियों का काम दे देती हैं। बालकपन से ही परिश्रमी तथा कठोर जीवन का अभ्यास होने के कारण सिक्ख लोग डेरों के सुख से घृणा करते हैं। डेरे के स्थान पर प्रत्येक सवार को दो कम्बल मिलते हैं एक अपने लिये और दूसरा घोड़े के लिये। ये कम्बल जो काठी के नीचे रक्खे होते हैं, एक दानों का बोरा और एक एड़ी की रस्सियां प्रत्येक सिक्ख के साथ कुल मिलाकर युद्ध के समय केवल इतना ही असबाब होता है। उनके रोटी पकाने के बरतन टट्टुओं पर ले जाये जाते हैं।

शासन की पद्धति।

हम इस पुस्तक में ऊपर दर्शा चुके हैं कि गुरु गोविन्द-सिंह ने सिक्ख मत के स्वरूप को बदलकर उसे एक धर्म प्रधान राज्य सत्ता बना दिया था। समस्त जाति के हृदयों में यह जीवित विश्वास उत्पन्न हो गया था कि उस जाति के ऊपर परमपिता का विशेष अनुग्रह था। परमेश्वर से उतर कर गुरु था और यह समझा जाता था कि गुरु अपने अनु-

यायियों की सदैव रक्षा तथा सहायता करते रहते थे। जाति का प्रधान आधिपत्य स्वयं जाति के सार्वजनिक शरीर को प्राप्त था। बारह मिसलों के अधिपति बारह प्रबल सरदार थे किन्तु ये सरदार अपने अनुयायियों की हितेच्छा द्वारा ही अपना शासन चलाते थे। और ये अनुयायी वर्ग सदा विधि अनुसार स्वयं अपने सरदार का निर्वाचन करते थे। अनेक बार ऐसा हुआ कि भूतपूर्व सरदार के क्रमागत उत्तराधिकारी को पृथक कर उस सरदार के वंशधरों अथवा बन्धुओं में से और कभी कभी साधारण सैनिकों तक में* से एक वास्तविक योग्यता रखने वाले मनुष्य को शासक निर्वाचित कर दिया गया। इन घटनाओं से यह सिद्ध होता है कि अनुयायियों द्वारा शासक का निर्वाचन सदा केवल नाम मात्र को ही न कराया जाता था।

जिन बातों का समस्त जाति के साथ सम्बन्ध होता था उनका निर्णय समस्त सरदारों की एक सभाद्वारा किया जाता था। यह सभा जो 'गुरमत' कहलाती थी दशहरे की छुट्टियों में अमृतसर में हुआ करती थी। दशहरा एक क्षात्र त्यौहार है जो आज दिन तक हिन्दू रियासतों में बड़े ठाठ के साथ मनाया जाता है। उस दिन विशेष दरबार किये जाते हैं और रियासत का सेनाओं का पुनरीक्षण किया जाता है। 'गुरमत' के आह्वान करने वाले अकाली होते थे। ये अकाली एक प्रकार के योधा पुरोहित होते थे जो किसी के भी अधीन न होते थे मन्दिर की रखवारी करते थे और धर्मत्यागियों तथा जाति घातकों को दण्ड दे तथा उपदेश और उदाहरण द्वारा खालसा के भक्ति उन्माद

*मुफ्ती अलाउद्दीन—इबरत नामा

तथा रणोत्साह को बनाये रख कर जाति की सेवा में अपना समस्त समय व्यतीत करते थे। इस सभा की कार्यवाही को मैकाफ़ इस प्रकार वर्णन करता है:—

"जिस समय सरदार लोग इस गम्भीर अवसर पर एकत्र होते हैं तो समझा जाता है कि समस्त व्यक्तिगत दोषों का अन्त हुआ और प्रत्येक मनुष्य ने अपने व्यक्तिगत भावों की सार्वजनिक कल्याण की वेदी पर आहुति दी और शुद्ध देशभक्ति के भावों से प्रेरित हो स्वधर्म तथा स्वराज्य के हित के अतिरिक्त वह और किसी बात को ध्यान में नहीं लाता। जब सरदार लोग तथा मुख्य २ नेता बैठ जाते हैं तो आदिग्रन्थ और दसवें बादशाह के ग्रन्थ उनके सन्मुख रक्खे जाते हैं। इन पवित्र ग्रन्थों के सन्मुख वे सब शिर नवाते हैं और "वाह गुरूजी का खालसा इत्यादि" वाक्य उच्चारण करते हैं। इसके पश्चात् समस्त सदस्य कड़ाह प्रसाद को नमस्कार करते हैं और खड़े हो जाते हैं जबकि अकाली उच्चस्वर से प्रार्थना करते हैं। प्रार्थना के पश्चात् सदस्य अपने अपने स्थानों पर बैठ जाते हैं और फिर कड़ाह प्रसाद के बंटजाने पर सब मिलकर खाते हैं। 'जिसका अर्थ यह है कि उन सब में एक महान कार्य के लिये सार्वजनिक तथा सम्पूर्ण ऐक्य व्याप्त है।' फिर अकाली चिल्लाकर कहते हैं 'सरदारो यह गुरमता है! इस पर फिर उच्चस्वर से प्रार्थना की जाती है। फिर सरदार पास पास आकर एक दूसरे से कहते हैं 'पवित्र ग्रन्थ साहब हमारे बीच में है। आओ हम सब अपने इस धर्मग्रन्थ की शपथ खावें कि हम समस्त पारस्परिक झगड़ों को भूलकर एकमत हो कार्य करेंगे।

"समस्त द्वेषों को शान्त करने में धार्मिक उन्माद तथा प्रचण्ड देशभक्ति के इस अवसर से लाभ उठाया जाता है। फिर वे अपनी आसन्नविपत्ति पर विचार करते हैं, उसको निवारण करने के सर्वोत्तम उपायों का निश्चय करते हैं और निज जातीय शत्रुओं के विरुद्ध सेनाएं लेजाने के लिये, सेनापति चुनते हैं? सबसे पहिला गुरमत स्वयं गुरु गोविन्द सिंह ने की थी और अन्तिम (१८०५ तक) सन् १८०५ में हुई थी जब कि अंगरेज़ी सेना ने होलकर महाराज का पीछा करते हुए पंजाब में प्रवेश किया था"। *

अपने राज्य के भीतरी प्रबन्ध में प्रत्येक सरदार स्वाधीन था। समस्त लूट का माल सरदार लोग आपस में बराबर बांट लेते थे और फिर प्रत्येक सरदार उसे अपने २ अनुयायियों में बांट देता था। ये अनुयायी गुलामों (Serfs or slaves) के समान न होते थे वरन् ठीक मध्यमकालीन योरप के 'फ्यूडल रिटेनर्स' के समान युद्ध में जाकर अपने सरदार के साथ लड़ने की शर्त पर अपनी २ भूमि के स्वामी होते थे। उनमें एक विशेषता यह थी कि प्रत्येक अनुयायी एक सरदार को छोड़कर स्वच्छन्दता के साथ चाहे जिस सरदार के पास जा सकता था। इस घटना द्वारा औरभी अधिक इस बात का प्रमाण मिलता है कि समस्त सिक्ख एक 'जाति' थे तथा प्रत्येक सिक्ख इस एकता में विश्वास रखता था।

भूमिकर से सरदारों की आय दो प्रकार की थी। एक उस भूमि से जो स्वयं सिक्खों के हाथों में थी और दूसरी उस भूमि से जो सिक्खों के आधीन हो चुकी थी किन्तु तथापि दूसरों के हाथों में छोड़दी गयी थी। इस दूसरी प्रकार के कर

* मेलकम —Sketch of the sikhs (pp 77, 78)

को 'राखी' कहा जाता था। राखी का रुपया सरकारी लगान के $\frac{1}{5}$ से लेकर $\frac{1}{2}$ तक होता था ?* अन्य प्रकार के करों के विषय में मेलकम लिखता है कि "यह एक सामान्य नियम बताया जाता है कि पैदावार का आधा उस प्रदेश के सरदार को मिले और दूसरा आधा कृषकको। किन्तु सरदार कभी भी अपना पूरा भाग नहीं लेता, और स्यात् किसी भी दूसरे देशमें रय्यत अथवा कृषक के साथ इससे अधिक नरमी नहीं बरती जाती जितनी कि सिक्ख सरदारों के राज्यों में †। पहिले पहल व्यापार के ऊपर बहुत भारी टेक्स लगे हुए थे। किन्तु सिक्ख सरदारों को शीघ्रही "इस बात का पता लग गया।

कि इन भारी टेक्सों द्वारा उन्हें बड़ी हानि पहुँची है और उन्होंने सफलता पूर्वक इस बात का प्रयत्न किया कि व्यापारियों में विश्वास उत्पन्न किया जावे और अब उनके प्रयत्न के फल रूप हिन्दोस्तान तक अधिकतर शालों का व्यापार लाहौर अमृतसर तथा पटियाले के नगरों में होकर जाता है ‡ प्रत्येक छोटा बड़ा सरदार व्यापार पर टेक्स लगाने के निज अधिकार का प्रयोग करता था और टेक्स प्रत्येक देश से बीस मील तक पर लिया जाता था तथापि टेक्स हलके थे।

भारत के समस्त भागों तक 'नौरियाह' सौदागरों द्वारा

---

* धनिघम।

† Sketch p 80, "नाज या कर नाज ही के रूप में लिया जाता है जिसके परिमाण का पहिले से निश्चय करलिया जाता है। गन्ना, रुई पोस्त इत्यादि पर नक़दी के रूप में नियत करलिया जाता है (मरे)।

‡ मेलकम

सस्ते दामों बीमा कराया जा सकता था।

न्याय शासन।

माल के अभियोगों तथा अन्य दीवानी के अभियोगों का निर्णय पंचायत द्वारा अर्थात् ग्राम के मुखियों द्वारा किया जाता था। "क्योंकि ये लोग सदा अपने स्थान के सब से अधिक प्रतिष्ठित लोगों में से चुने जाते हैं इस कारण इनकी अदालत न्यायशासन के लिये अत्यन्त उच्च चरित्र वाला होती है" * प्रत्येक अभियोग सरदार के सन्मुख भी उपस्थित किया जा सकता था। फ़ौजदारी के अभियोग केवल सरदार ही सुनता था।

'मध्यम कालीन योरोप के समान अपराधों तथा राज नियमों के उल्लंघनों का निपटारा धन द्वारा कराया जाता है। जुरमाने को परिमित करने के लिये कोई नियम नहीं है। और प्रायः अपराधी की सामर्थ्य के अनुसार जितना चाहे जुरमाना कर दिया जाता है। अपराधी का माल असबाब क़ुर्क़ कर लिया जाता है और जुरमाना वसूल करने के लिये उसके कुटुम्बियों को बन्दी कर दिया जाता है।

जो अभियोग जीतता है वह 'शुकराना' देता है और जो हारता है वह 'जरीमाना' देता है। वे समस्त कर्मचारी जो सरदार के आधीन होते हैं और जिन्हें सरदार विविध ज़िलों तथा महकमों में नियुक्त करता है अपने स्वामी का अनुसरण करते हैं। किन्तु यदि ये लोग अत्याचार करते हैं तो इन्हें अन्त को 'बोरा' (भोरा) अथवा अंधकूप में डाल दिया जाता है और उन्हें उचित से अधिक लिया हुआ 'शुकराना' अथवा

---

*मेलकम का Sketch पृ० ८१।

'जरीमाना, जौटा देना पड़ता है। जब वे अपने अधिपति की लाभ लिप्सा को तृप्त कर देते हैं तो प्रायः उन्हें फिर से अपने अधिकार पर नियुक्त कर दिया जाता है और सरदार के अनुग्रह तथा मानरूप उन्हें एक 'शाल' प्रदान की जाती है।

प्राण दंड बहुत ही कम दिया जाता है। असाध्य से असाध्य अपराधियों को दंड देने के लिये उनके एक या दोनों हाथ तथा नाक या कान काट लिये जाते हैं। * किन्तु इस प्रकार का अंगकर्त्तन बहुत ही कम होता है क्योंकि जिस किसी के पास देने के लिये धन होता है अथवा जो कोई अपने बदले एक नियत समय के भीतर दंड भर देने के लिये किसी मान्य बंधक को उपस्थित कर सकता है वह बुरे से बुरे अपराधों का धन द्वारा प्रायश्चित् कर सकता है।

डाका—यदि किसी एक सरदार की प्रजा पर दूसरे सरदार के राज्य से डाका पड़ जाता है तो जिसके राज्य से डाका पड़ा है उससे हानि भर देने के लिये कहा जाता है और यदि वह स्वीकार न करे तो जिस सरदार की प्रजा लुटी है वह प्रतिकार नियम का प्रयोग करते हुए दूसरे सरदार के राज्य में से सैकड़ों पशु हुंका ले जाता है या किसी न किसी अन्य प्रकार से बदला लेता है।

छोटी चोरियां—"जब कभी किसी 'मुद्दरखाई' (अर्थात् निज अपराध स्वीकार कर लेने वाले अपराधी) द्वारा अथवा

---

* इङ्गलैंड में आठवें हेनरी, छठे एडवर्ड, एलिज़ेबेथ तथा प्रथम जेम्स के शासन कालों में कानून पास हुए थे जिनके अनुसार ऐसे ऐसे अपराधों के लिये दाहिना तथा बायां हाथ तथा एक कान काट दिये जाने की अनुज्ञा तथा आज्ञा दी गयी थी जिन अपराधों पर कि लिखत धन दंड देने की भी आवश्यकता न समझते। म० रे।

'मूड़' या 'नमूने' द्वारा (अर्थात् चोरी की किसी वस्तु के निकल आने द्वारा) चोरी प्रमाणित हो जाती है तो जिसका माल चोरी गया है उसे प्रायः आरम्भ में अपने खोये हुए माल का मूल्य प्राप्त करने से पूर्व सरदार अथवा उसके थानेदार को उस मूल्य का 'नहारम' दे देना पड़ता है। इसके अतिरिक्त मुहुररचायी प्रायः यह शर्त कर लेता है कि उसे पूर्णतया क्षमा कर दिया जावेगा और कंडी अर्थात् चोरी के माल का कोई भाग व जो कुछ भाग उसे मिला हो वह उससे न मांगा जावेगा" यह भाग दूसरे चोरों से वसूल किया जाता है और हिसाब तै करने पर उनमें बराबर बांट दिया जाता है।"

पशुओं की चोरी—जब कभी पशु चोरी जाते हैं तो यह एक व्यवस्थित नियम है कि यदि किसी ग्राम के द्वारा अथवा खेतों तक सुराग़ खोज अर्थात् पद चिन्हों का पता लगा लिया जाता है तो उस ग्राम के ज़मींदारों को या तो अपने ग्राम की तलाशी करवा कर अपनी सीमा से आगे तक पदचिन्ह दिखाने पड़ते हैं अन्यथा पशुओंका मूल्य भर देना पड़ता है*।

भूमि आदिकका उत्तराधिकार—सिक्ख रियासतों में भूमि इत्यादि के उत्तराधिकार के नियम निमंत्रित नहीं हैं और विविध कुटुम्बों के रिवाज, हित तथा विचारों के अनुसार भिन्न भिन्न नियम बने हुये हैं। और न इस अनिमंत्रित पद्धति को काट छांट कर सब के लिये एक समान स्थिर

---

* ऐङ्गलो सेक्सन (अगरेजों) का वर्णन करते हुये ह्यूम कहते हैं यदि कोई मनुष्य अपने चोरी गये हुये पशुओं के पद चिन्ह दूसरे की भूमि तक दिखादेवे तो दूसरे को वा अपनी भूमि से बाहर चिन्ह दिखाने पड़ते थे या पशुओं का मूल्य देदेना पड़ता था।

तथा क्रियात्मक नियम बना देना ही सम्भव है। माझा तथा मालवा के सिक्खों के बीच भी उत्तराधिकार के नियमों में भेद हैं।

जायदाद धन जेवर इत्यादि के उत्तराधिकार का निर्णय माझा सिक्खों में दो प्रकार से होता है। एक भाईबन्द द्वारा और दूसरे चूण्डाबन्द। द्वारा भाईबन्द के अनुसार समस्त भूमि, दुर्ग, भवन, द्रव्य इत्यादि पुत्रों में बराबर बांट दिये जाते हैं। कहीं कहीं सब से बड़े पुत्र को विशेष अथवा द्विगुण भाग दिया जाता है। इस भाग को खर्च सरदारी कहते हैं और हजरत मूसा के धर्मशास्त्र के द्विगुण भाग से यह मिलता जुलता है।

चूण्डाबन्द के अनुसार समस्त सम्पति माताओं में उनके अपने अपने पुत्रों के लिये एक बराबर बाँट दी जाती है। यह प्रथा हिन्दू धर्मशास्त्र के अनुसार है।

जहां कोई पुत्र न हो—जब कोई माझा सिक्ख मरता है और उसके कोई पुत्र नहीं होता तो उसकी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी उसके भाई वा उसके सगे भाइयों के पुत्र होते हैं और मृतपुरुष की विधवा वा विधवाओं के साथ उनका विवाह अर्थात् प्रनियोग होता है शास्त्रों के अनुसार विधवाओं का अधिकार अधिक समझा गया है किन्तु सिक्खों ने इस अधिकार से बचने के लिये, चादर अन्दाजी, की प्रथा निकाल रक्खी है।

चादर अन्दाजी में मृत पुरुष के भाइयों में सबसे बड़ा विधवा को नव के ऊपर एक सफ़ेद चद्दर डाल देता है जिस क्रिया द्वारा वह विधवा अब उसकी पत्नी होजाती है।

जहां कोई भतीजा इत्यादि न हो—यदि कोई भाई या

भतीजा न हो तो मांका सिक्खों में सामान्य प्रथा यह है कि समस्त सम्पत्ति मृत पुरुष की विधवाओं में बराबर बांट दी जाती है।

विधवाओं का गोद लेना—विधवाओं को गोद लेने का अधिकार नहीं है। और स्त्रियों को उत्तराधिकार से सर्वथा पृथक रखा गया है जिससे कि जायदाद दूसरे कुटुम्ब में न चली जावे।

मालवा के सिंह—मालवा के सिक्खों में मृतपुरुष के ज्येष्ठ पुत्र को ही उत्तराधिकारी बनाया जाता है और छोटे पुत्रों के पालन पोषण के लिये जागीरें नियत कर दी जाती हैं।

'भाइयों' को छोड़ कर शेष मालवा सिंहों में 'करेवा' अर्थात् विधवा विवाह की भी अनुज्ञा है। इस प्रकार उनमें एक मृत सरदार के भाई भतीजों तथा उसकी विधवाओं के बीच उत्तराधिकार का झगड़ा मिट जाता है। कैथल तथा अन्य स्थानों के 'भाई' करेवा के विरुद्ध हैं तथापि वे विधवाओं के अधिकार को नहीं मानते और उनके निर्वाह के लिये छोटी छोटी जागीरें दे देते हैं।

मुसलमानों को इस विषय में अपने ही धर्मशास्त्र का अनुसरण करने की अनुज्ञा प्राप्त है।

सीमाओं के झगड़ों का निर्णय करने के लिये आस पास के ज़मीनदारों की एक पंचायत की जाती है और उन्हें निर्पक्षता के साथ निर्णय करने की शपथ दी जाती है *।

* सीमा के स्तम्भ लगाने वाले पुरुष को यदि वह हिन्दू हो तो गंगाजल और (गौ का कच्चा चमड़ा) या अपने पुत्र की शपथ खानी होती है। यदि मुसलमान हो तो उसे कुरान की शपथ खानी होती है या अपने पुत्र के सिर

प्रत्येक अभियोगी कहीं कहीं एक एक और कहीं कहीं दो दो या तीन तीन 'मुनसिफ़' निर्वाचित करता है। इन पंचायतों में सामान्य रीति से निर्णय करने के पांच ढंग प्रचलित थे।

(१) विवादग्रस्त भूमि के दो बराबर के भाग कर देना।

(२) पंचायत अपने में से सब से अधिक वृद्ध तथा सब से अधिक प्रतिष्ठित मनुष्य को सीमा नियत करने के लिये चुन लेती थी और शेष उसके निर्णय को अंगीकार करना स्वीकार कर लेते थे।

(३) सीमा का एक भाग एक ओर के पंच निर्णय करते थे और दूसरा भाग दूसरी ओर के।

(४) पंचायत आस पास के ग्राम के किसी वृद्ध मनुष्य पर अन्तिम निर्णय छोड़ देती थी क्योंकि वे अपने परिमित ज्ञानकी अपेक्षा उसके स्थानीय ज्ञान तथा अनुभव पर अधिक विश्वास करते थे।

(५) कभी कभी पंचायत अभियोगियों में से एक को ही निर्णय सौंप देती थी जो अपनी प्रतिष्ठा तथा सत्यता के लिये आस पास विख्यात हो।

सीमा के विवाद तथा रक्तपात—यदि किसी सीमा के विवाद में ज़मींदारों के बीच रक्तपात हो जाये तो उसके निपटारे के लिये, 'नाता' कर दिया जाता है अर्थात् मृतपुरुष के किसी सम्बन्धी के साथ एक कन्या विवाह दी जाती है। या १५०) या २००) रु० भर दिये जाते हैं या १२५ बीघे भूमि दे दी जाती है। प्रायः प्राण के बदले में धन लेना पर्याप्त नहीं

पर हाथ रखने होते हैं। और 'तथा अपने पुत्र की शपथ खाना सब से अधिक आवश्यक है।

समझा जाता और दूसरी प्रकार बदला लेने का प्रयत्न किया जाता है।

नदी के बीच के टापु—यदि दो सरदारों की भूमि के बीच से नदी बहती हो और उस नदी के बीच में टापु हों जिनके विषय में विवाद हो तो वा नदी के बहाव से इस प्रकार के टापु बन गये हों तो उसका निर्णय 'कचमच' वा 'किमती' बस्रा' द्वारा किया जाता है। इसका अर्थ यह है कि वे टापु आदिक उस तट अथवा 'इमानी' के स्वामी को दिये जाते हैं जिसकी ओर मट्टी बह कर जा रही हो-अर्थात् जिसकी ओर से पानी दूर होता जा रहा हो। जा टापु नदी के बीच में हों जहां पर कि नौका चल सकती हो वे दोनों तटों के सरदारों की संयुक्त सम्पत्ति समझे जाते हैं। यदि इस दूसरी अवस्था में मट्टी बहकर आयी हो तो जिस सरदार की भूमि से मट्टी बह कर आयी हो उसका अधिकार बना रहता है।

विवाह सम्बन्धी इत्यादि—यदि विवाह की प्रतिज्ञा कर किसी ने भङ्ग कर दी हो तो सरदार ऐसे अभियोगों को पंचायतों के सन्मुख उपस्थित कर देता था। निर्णय इन तीनों में से एक होता था:—

(१) अभियोगी को कन्या के कुटुम्ब में से कोई और लड़की दे दी जाती थी।

(२) यदि कोई और लड़की कुटुम्ब में न होती थी तो अभियुक्त को अभियोगी के लिये कोई अन्य लड़की दिलानी पड़ती थी।

(३) धन की जो कुछ हानि हुई हो वह उससे अधिक कुछ और भी हरजाना दिलवाया जाता था।

दूसरे सरदार के राज्य से भागे हुये अपराधियों को लौटा

देने के नियम—यदि कोई स्त्री दूसरे सरदार के राज्य में भाग गयी हो तो पंचायत उसको लौटा देने की प्रार्थना करती थी या प्रतिकार में यहाँ की कोई स्त्री भगालाते थे। अन्य कोई उपाय न था। ऋणी लोग अथवा वे जो सरकारी लगान न दे सके हों पंचायत की प्रार्थना के अतिरिक्त अन्यथा कभी भी न लौटाये जाते थे और यह भी तब जब कि पंचायत इस बातका विश्वास दिलादे कि अपराधी को कुशल पूर्वक रक्खा जायेगा।

दान—दरिद्रों के लिये कोई पूरला (Poor law) न था। आकस्मिक व्यय के लिये जिसे "आया गया" कहते थे अर्थात् अतिथियों तथा सरकारी कर्मचारियों की सेवा के लिये प्रत्येक ग्राम में एक पद्धति थी जिसे 'मालबा' कहते थे। सदाव्रत तथा ठाकुर द्वारे थे जहां दरिद्रों को भोजन तथा वस्त्र बांटे जाते थे।

ज़मींनदारी

मिसलों के शासन में चार प्रकार की ज़मींनदारी होती थी (१) पट्टीदारी, (२) मिसलदारी, (३) तावेदारी और (४) जागीरदारी.

पट्टीदारी पद्धति के अनुसार एक मिसल के प्रत्येक अनुवंशी को जो सरदार से कम पदवी का हो वा एक छोटे से घुड़सवार तक को अपनी मिसल की भूमि में से एक भाग दिया जाता था। "ये समस्त पट्टीदार अपनी पट्टी का समस्त प्रबन्ध स्वयं करते थे। और अपने अधीन के किसी भी छोटे ज़मींनदार अथवा रय्यत पर अपनी इच्छानुसार जुरमाना करते थे, उसे क़ैद कर देते थे अथवा अन्य प्रकार से अधिक

कष्ट देते थे। पट्टीदार की अपने सरदार के साथ केवल यह ही प्रतिज्ञा तथा शर्त होती थी कि वे एक दूसरे की रक्षा तथा बचाव के लिये दूसरे को सहायता करेंगे।*

मिसलदारी पद्धति के अनुसार—"कम शक्ति वाले समूह अथवा छोटे छोटे सरदार अपने अनुयायियों सहित कभी कभी किसी प्रकार के साहचर्य अथवा अधीनता की प्रतिज्ञा किये बिना ही किसी मिसल के साथ मिल जाते थे। इन्हें जो भूमि दी जाती थी वह उनकी सहायता का स्वतंत्र पारितोषिक समझी जाती थी और वे किसी प्रकार से अधीन न समझे जाते थे। यदि कोई मिसलदार अपने सरदार से असन्तुष्ट हो जाता था तो वह अपनी भूमि आदिक समेत किसी ऐसे दूसरे सरदार से जा मिलता था। जिसकी रक्षा तथा अनुग्रह में रहना वह अधिक उत्तम समझता हो।"

"दूसरी ओर एक तावेदार मध्यमकालीन योरोप के एक रिटेनर (Retainer) के समान होता था। वह सर्वथा पराधीन होता था। यदि वह आज्ञाभंग करता था वा किसी प्रकार से विद्रोह करता था तो उसकी भूमि छीन ली जाती थी। और यदि कभी सरदार उससे अप्रसन्न होता था तो तुरन्त उससे भूमि वापिस ले लेता था।"

"चौथी पद्धति के अनुसार उन निर्धन सम्बन्धियों, उपजीवियों तथा संमानित सैनिकों को "जागीरें" दी जाती थीं जो इसके योग्य समझे जाते थे। और जागीरदारों को किसी भी समय अपनी अपनी जागीरों के अनुसार अपने व्यय पर सशस्त्र तथा अश्वारोह सेनाएं लेकर व्यक्तिगत सेवा

---

* Prinsep p. 28.

के लिये बुलाया जा सकता था। तावेदारों से भी ये सरदारों के अधिक अधीन होते थे। दोनों अधिकार पैतृक होते थे किन्तु सरदार की स्वच्छन्दता के अनुसार। उनकी भूमियाँ उस भूमि का एक भाग होती थीं जो 'सरदारी' के लिये पृथक की हुई होती थी और निस्सन्देह 'मिसल' अथवा 'संग' इस विषय में कुछ विवाद न उठा सकता था।*

* Prinsep p. 29.

१—परिशिष्ट

सिक्खों के धर्म ग्रन्थ

सिक्खमत के सिद्धान्तों की परीक्षा आरंभ करने से पूर्व यह आवश्यक प्रतीत होता है कि सिक्खग्रंथों के विषय में कुछ वर्णन किया जावे।

सिक्खों के धर्म ग्रन्थ दो हैं, एक आदि ग्रन्थ और दूसरा दसम ग्रन्थ, दसम ग्रन्थ को 'दसवें 'बादशाह का ग्रन्थ' भी कहते हैं।

दसम ग्रन्थ की अपेक्षा आदि ग्रन्थ की कहीं अधिक पूजा की जाती है और उसका कहीं अधिक पाठ भी किया जाता है। वास्तव में यह ग्रन्थ ही सिक्खों की 'बाइविल' है। निम्न लिखित बातें इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में इस स्थान पर वर्णन करने योग्य हैं:—

१ लेखक—इस ग्रन्थ में छत्तीस लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इन लेखकों को इस प्रकार श्रेणियों में बांटा जा सकता है:-

(अ) सात सिक्ख गुरु। तीन अर्थात् छटे सातवें और आठवें गुरुओं ने कुछ भी नहीं लिखा और दसवें गुरु ने केवल एक ही चरण लिखा है जिसका उद्भव* भी प्रशंसनीय है।

---

* डाक्टर ट्रम्प कहता है कि गुरु गोविन्द सिंह के पिताने अपने कारागार से गुरु को एक पत्र भेजा था जिसके उत्तर में गुरु गोविन्द ने यह चरण लिखा था। मुन्शी सोहन लाल भी इस चरण को उद्धृत करता है। देखो उसकी 'तारीखे रणजीतसिंह' ६६

(१) चौदह भक्त अथवा सन्त जिनमें से निस्सन्देह यदि हम कबीर को मुसलमान न भी मानें जो कि मुसलमान माता पिता का पुत्र था परन्तु धर्म का हिन्दू था तो भी कम से कम एक अर्थात् फ़रीद नामक एक मुसलमान था। शेष में से चार अर्थात् जयदेव, त्रिलोचन, सूरदास, और रामानन्द ब्राह्मण थे। एक अर्थात् पीपा नामक एक राजा था। दो अर्थात् भीकम तथा बेनी अज्ञात जाति के थे। और शेष पांच शूद्र जाति के थे अर्थात् नामदेव एक छाम्बा सांई एक नाई, धन्ना एक जाट, सदन एक कसाई और रविदास एक चमार था।

(३) पन्द्रह भट्ट * जो सब ब्राह्मण † थे जिनकी पहिले पांच गुरुओं की स्तुतियों को स्वयं पांचवें गुरु ने ग्रन्थ साहब में मिला दिया था। इस प्रकार प्रतीत होता है कि यदि हम गुरुओं को हिन्दू न समझें उन्हें केवल सिक्ख ही समझें तो भी ग्रन्थ के लेखकों में से ७१ फ़ी सदी जन्म से तथा धर्म से दोनों प्रकार से हिन्दू थे।

२—संग्रह करना—संग्रह का काम पांचवें गुरु अर्जुन ने किया था गुरु अर्जुन ने पहिले तीन गुरुओं के लेख मोहन से जो तीसरे गुरु का पुत्र था प्राप्त किये थे और भक्तों के लेखों में से कुछ लेख छाँट कर तथा उनमें अपने और अपने पिता के लेखों को मिलाकर उन्होंने एक ग्रन्थ बना दिया था जिसमें भट्टों की स्तुतियां भी जोड दी गया थीं।

---

* इनके नाम ये हैं—भालहक, भीका, दास, गङ्गा, हरीबंस, नल्लन, जलप, काल, परस, कालसार, किरात, मथुरा, नल रद, साल्ह।

† पन्थप्रकाश के लेखक के अनुसार।

कविता के लिये सब गुरुओं का नाम 'नानक* ' था इस लिये गुरु अर्जुन ने पहिले दूसरे तथा अन्य गुरुओं के लेखों में भेद करने के लिये उनके साथ 'महला पहिला' 'महला दूसरा' इत्यादि जोड़ दिये। और साथ ही प्रत्येक श्लोक के साथ उस राग का नाम भी लिख दिया जिसमें कि वह श्लोक सबसे अधिक उत्तमता के साथ गायन किया जा सके। विविध भक्तों† के लेखोंके साथ भी इसही प्रकार से लेखकों के नाम तथा उचित रागों के नाम साथ साथ जोड़ दिये गये। आदि ग्रन्थ की वर्त्तमान रचना भाई मणिसिंह शहीद की बुद्धिमत्ता का फल है। उन्होंने समस्त पुस्तक के लेखों को आगे पीछे कर दिया और उसकी फिर से इस प्रकार रचना की कि प्रत्येक लेखक के एक राग विशेष के लेखों को एक स्थान पर एकत्रित कर दिया‡

---

* सिक्खों का यह विश्वास है कि नानक के उत्तराधिकारियों में वह आत्मा आजाती थी जो कि नानक में थी अर्थात् यद्यपि वे सब विविध शरीर रखते थे तथापि आत्मा की दृष्टि से वे सब प्रथम गुरु के साथ एक ही थे छठा गुरु हरगोविन्द अपने उन पत्रों में जो कि वह 'दबिस्तान' के लेखक मोहसिन फ़ानी को लिखा करता था अपने हस्ताक्षर की जगह सदा "नानक" लिखा करता था।

† ट्रम्प को इस बात का शोक है कि इनमें से अनेक भक्तों के लेख खोये गये। 'पंथ प्रकाश' के लेखक ने जिस पारम्परीय कथा का वर्णन किया है अर्थात् यह कि ग्रन्थ के कोई कोई भाग जिनके साथ कुछ भक्तों के नाम दिये हुये हैं वास्तव में स्वयं गुरु अर्जुन ही के लिखे हुए थे इस कथा से ट्रम्प को कुछ आश्वासन होना चाहिये था।

‡ यह बात पंथ प्रकाश के अनुसार दी गयी है। ट्रम्प अथवा किसी भी अन्य अंगरेज़ इतिहास लेखक ने इस घटना का वर्णन नहीं किया। आदि ग्रंथ की पहिली कापी करतारपुर के सोढ़ियों के पास है और सदा उनके

३—भाषा—आदि ग्रन्थ की भाषा हिन्दोस्तान की प्रायः समस्त उस समय की प्रचलित आर्य भाषाओं का समुदाय है। उसमें कुछ श्लोक ऐसे हैं जो संस्कृत से बहुत कुछ मिलते हैं। उदाहरण के लिये गीता गोविन्द के सुप्रसिद्ध लेखक जयदेव के श्लोक, एक अथवा दो श्लोक शुद्ध फ़ारसी भाषा में हैं। ये श्लोक यद्यपि अर्थ पूर्ण हैं तथापि उनकी भाषा किसी प्रकार से भी उत्कृष्ट नहीं कही जा सकती। दक्षिण के रहने वाले नामदेव तथा त्रिलोचन के लेखों पर मरहटी भाषा की प्रबल मोहर लगी हुई है।

तथापि आदि ग्रन्थ का अधिकतर भाग हिन्दी भाषा में लिखा हुआ है जोकि या उस समय की शुद्ध हिन्दी भाषा है जैसा कि रामानन्द तथा कबीर के लेखों में अथवा उस भाषा का कुछ बिगड़ा हुआ स्वरूप है जिससे कि वर्त्तमान समय की पंजाबी बनी हुई है। *

प्रायः प्रत्येक बात में समस्त संग्रह के अन्तर्गत भाव हिन्दी हैं :—

कड़ाह प्रसाद चढ़ाने से देखी जा सकती है। महाराजा रणजीतसिंह ने सन् १८११ में उसे लाहौर भिजवा दिया था और उस ही समय उसके रक्षकों को ४००००) रु० की जागीर प्रदान कर दी थी।

* यह बात ध्यान देने योग्य है कि प्रायः समस्त भक्तों ने चाहे वे बङ्गाल के रहे हों चाहे महाराष्ट्र के रहे हों और चाहे पंजाब के उस समय की हिन्दी भाषा में अपने अपने लेख लिखे। उस समय की पुरानी हिन्दी को हम हिन्दुई कहते हैं। प्रतीत होता है कि यह हिन्दुई उस समय के समस्त भारत की सामान्य भाषा (Lingua Franca) थी या कम से कम उसे वह पद प्राप्त था जो प्राचीन समय में संस्कृत को प्राप्त था तथा आजकल अंगरेजी को प्राप्त है।

(१) वाक्यालंकार तथा दृष्टान्त आम तौर से उपनिषदों अथवा वेदान्त के अधिक अर्वाचीन ग्रंथों से लिये गये हैं ।

(२) पौराणिक उदाहरण प्रायः सदा हिन्दू पुराणों से ही लिये गये हैं । मुसलमानी अथवा यहूदी कथाओं के पुरुषों का वर्णन है बहुत ही कम आता है सिवाय उस स्थानके जहांपर कि किसी मुसलमान से ही बात चीत की जा रही हो ।

(३) ईश्वर के नाम अधिकतर वे ही लिये गये हैं जो हिन्दू बोलते हैं । यद्यपि कहीं २ 'अल्लाह' और 'ख़ुदा' नाम भी मिलते हैं ।

(४) समस्त श्लोकों के छन्द वे हैं जिनका हिन्दू कवि प्रयोग करते हैं । फ़ारसी भाषा का श्लोक भी एक ऐसे छन्द में लिखा हुआ है जो फ़ारसी के स्थान पर हिन्दी छन्दों से अधिक मिलता है ।

४—विषयवर्णन

आदि ग्रन्थ के विषयों का व्यवच्छेद करना मानों सिक्ख मत का व्यवच्छेद करना है । अर्थात उस समय के सिक्ख मत का जिस समय तक कि अन्तिम गुरु के नवाचारोंद्वारा उसमें परिवर्त्तन उत्पन्न होगये थे । मेरा विचार है कि अगले परिशिष्ट में इस विषयको कुछ विस्तार के साथ वर्णन करूं । इस लिये इस स्थान पर मैं केवल आदिग्रन्थ के विविध भागों को

ट्रम्प इस घटना का वर्णन करता है कि उन दिनों जो कोई वक्ता बहुसंख्य श्रोताओं तक अपनी ध्वनि पहुंचाना चाहता था वह हिन्दी में भाषण करता था । यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि दक्षिण तथा पंजाब इत्यादि की अधिक पुरानी भाषाएं वर्तमान दक्षिणी तथा पंजाबी भाषाओं की अपेक्षा हिन्दी से अधिक मिलती जुलती थीं ।

एक एक कर गिना देना ही पर्याप्त समझता हूं। वे भाग ये हैं

(१) गुरु नानक का 'जयजी' जो एक भजनशील पत्रिका है और जिसका प्रातः काल की पूजा के साथ पाठ किया जाता है।

(२) 'सोदर' जिसमें ग्रन्थ के बहुतसे भाग उद्धृत करके संग्रह किये हुए हैं और जिसके सायंकाल की पूजा के साथ पाठ किये जाने की आज्ञा है।

(३) 'सो पुरख' का पाठ भी सायंकाल की पूजा के साथ किया जाता है।

(४)'साहिला' जिसका पाठ रात को सोते समय किया जाता है।

(५) ग्रन्थ का प्रधान भाग जो रागों अथवा श्लोकों के अनुसार बांटा हुआ है।

(६) 'भोग' जिसमें विविध विषय दिये हुये हैं अर्थात स्वयं गुरुओं के कबीर के और फ़रीद के कुछ लेख तथा ब्राह्मण भट्टों की कुछ स्तुतियां।

५—विषयों का स्वरूपः—

ग्रन्थ के प्रधान भाग में परमेश्वर तथा गुरु की स्तुति में भजन लिखे हुए हैं अथवा प्रार्थनाएं * दी हुई हैं तथा कुछ विषादग्रस्त वाक्य और स्पष्ट उपदेश अथवा व्याख्यान भी दिये

* डाक्टर ट्रम्प लिखता है कि "स्वयं परमेश्वरसे ग्रन्थमें कोई भी प्रार्थना नहीं की गयी"। (P C S) यह कथन सर्वथा मिथ्या है। और ग्रन्थसाहब में से परमेश्वर के नाम की अक्षरशः सैकड़ों प्रार्थनाएं उद्धृत की जा सकती हैं। इस कथन से केवल यह पता लगता है कि ट्रम्प विश्वास योग्य नहीं है,जैसा कि मैक्समूलर ने भी लिखा है। Auld Lang Syne P. 69.

हुए हैं। समस्त ग्रन्थ में किसी विशेष विषय पर कोई भी निबन्ध नहीं है अथवा गुरुओं के चरित्र वा उनके चमत्कारों की कोई भी कथा नहीं है। इस प्रकार ग्रन्थ साहब के विषय ही ऐसे हैं कि उन्हें क्रम से एक एक समान विषय के अनुसार यथाचर्म रचना असंभव था। इस कारण कोई आश्चर्य नहीं कि ट्म्प ग्रन्थ साहब में क्रम तथा विषय विन्यास के न होने की शिकायत करता है। सदाचार के विषय में गुरुओं के उपदेश तथा उनके सिद्धान्त और निश्चय समस्त ग्रन्थ में फैले हुये हैं और समस्त पुस्तक के ध्यान पूर्वक पढने से ही इकट्ठे किये जा सकते हैं। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि किसी भी अन्यपुस्तक की अपेक्षा ग्रन्थ साहिब की रचना ऋगवेद की रचना के साथ अधिक मिलती जुलती है। केवल इतना भेद है कि जहां पर वेद में प्रायः एक श्लोक में एक ही विषय का वर्णन है वहां पर ग्रन्थ में एक ही श्लोक में भी कई २ विषय मिला दिये गये हैं। इस कारण जो कुछ गुरुओं ने कहा है स्पष्ट शब्दों मे तथा संकेत से ही कहा है। वे अपने विश्वासों का प्रतिपादन और उनकी व्याख्या नही करते किन्तु यह सब पाठकों के अनुमान के लिये छाड देते हैं।

सिक्खों की दूसरी धर्म पुस्तक जैसा कि हम पहिले वर्णन कर चुके हैं 'दसवें बादशाह का ग्रन्थ' है। यह पुस्तक विविध विषयों का एक संग्रह है और इसका केवल एक भाग स्वयं गुरु का लिखा हुआ है। शेष समस्त पुस्तक अनेक हिन्दी कवियों की लिखी हुई है जिन को कि गुरु ने अपने यहां नौकर रख रक्खा था। इस सग्रह से गुरु का मान बिलकुल नहीं बढता और इसमें से स्वयं गुरु के लेखों को छोड़कर शेष बहुत सा भाग ऐसा है जो यदि न लिखा जाता

तो अच्छा था। इस पुस्तक का आदर सुशिक्षित सिक्खों में बहुत कम है और वे लोग इसके विषयों में से बहुत सों को कल्पित समझते हैं। तथापि भाषा तथा कविता के विचार से यह पुस्तक बड़ी उच्च श्रेणी की है और उसके कोई कोई भाग ऐतिहासिक तथा वीररस प्रधान हिन्दी काव्यों में सर्वोच्च पदवी के योग्य हैं।

इसके अतिरिक्त गुरु गोविन्दसिंह के चरित्र तथा उनके कृत्यों में हिन्दू ब्रह्म विद्या, पुराणों, दर्शनों, इतिहास तथा साहित्य ने जो कुछ भाग लिया उसको दर्शाने के लिये यह पुस्तक एक बड़े उत्तम सूचीपत्र का काम करती है। इस कारण उसके विषयों का एक संक्षिप्त वृत्तान्त इस स्थान पर असंगत न होगा।

निस्सन्देह यह पुस्तक विविध आकारों की विविध पुस्तकों का एक संग्रह है। और विविध विषयों का ही उन पुस्तकों में वर्णन है। तथापि समस्त संग्रह का मुख्य विषय अन्य समस्त देवी देवताओं को छोड़ एक ईश्वर की स्तुति है। वा शस्त्रों की स्तुति है इस उद्देश्य से कि सिक्खों को वीरता से युद्ध करने की उत्तेजना हो। पुराणों के कल्पित वीरों के वीरकृत्यों के समस्त वृत्तान्तों का एक मात्र यह ही उद्देश्य है अर्थात् युद्ध के लिये उत्तेजित करना और शारीरिक शक्ति तथा वीरता की प्रशंसा करना। त्रिया चरित्र की कथाओं का भी यही उद्देश्य प्रतीत होता है कि सिक्ख उनके जालों में गिरने से सावधान रहें। ग्रन्थ के विषय निम्नलिखित हैं।

(१) 'जापजी'—जो नानक के जपजी का एक भाग समझना चाहिये जिसमें कि सिक्खों की प्रातःकाल की प्रार्थना दी हुई है। यह एक छोटी सी ओजस्विनी कविता

अर्थ संस्कृत भाषा में लिखी हुई है यद्यपि छन्द की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये 'फ़ारसी' भाषा तथा साधारण पञ्जाबी भाषा के शब्द भी इस में मिला दिये गये हैं। यह पुस्तक स्वयम् गुरू ही की लिखी हुई समझी जाती है।

(२) 'अकाल स्तुति'—यह प्रातः काल* के समय पाठ करने का एक भजन है।

(३) विचित्र नाटक—यह पुस्तक स्वयं गुरु गोविन्द की ही लिखी हुई है। इस पुस्तक में गुरु गोविन्दसिंह के कुटुम्ब उनके समाज संशोधन के उद्देश्य तथा पहाड़ी राजाओं और शाही सेनाओं के साथ उनके युद्धों का वर्णन है। गुरुने अपने पूर्व जन्म तथा अपनी उत्पत्ति के कारणों को जिस प्रकार वर्णन किया है उस से यह कथा एक पौराणिक कथाके समान प्रतीत होने लगती है तथा यह समस्त कथा आदिसे अन्ततक हिन्दू पौराणिक भावों से परिपूर्ण है।

(४) 'चण्डी चरित्र'—अनेक लेखकों की सम्मतिमें इस पुस्तक का स्वयं गुरु गोविन्दसिंह ने ही संस्कृत से अनुवाद किया था। दैत्यों के साथ चण्डी देवी के युद्ध एक इस प्रकार की वीररस प्रधान कविता में चित्रित किये गये हैं कि इस कविता के समान हिन्दी साहित्यमें कोई दूसरी कविता नहीं मिलती। उन दैत्यों के नाम जो इन युद्धोंमें मारे गये हैं:—

माधौ, कैटाभ, महिषासुर, धुम्रलोचन, चंड, मुंड, रक्तबीज, निशम्भा, शम्भा। इसही पुस्तक का दूसरा भाग अर्थात् 'चंडी की वार' ऊपर की पुस्तक का परिशिष्ट है।

---

*कनिंघम लिखता है कि "केवल पहिला पद ही गुरु गोविन्द का लिखा हुआ है"।

(सिक्खों का इतिहास, दूसरी आवृत्ति परिशिष्ट १८)

५—'ज्ञान प्रबोध' जो महाभारत से ली गयी है और जिसमें हिन्दुओं के प्राचीन इतिहास के उदाहरणों के साथ ईश्वर की स्तुति दी हुई है।

६—'चौपाइयाँ' जिसमें शिवजी के चौबीस अवतारों का वर्णन है।

७—'शस्त्र नाम माला.' जिसमें उस समय के समस्त अस्त्र शस्त्रों को एक एक कर वर्णन किया गया है।

८—'सवैया बत्तीस'—इस पुस्तक में बत्तीस श्लोक हैं जिनमें गुरु ने स्वयं मूर्ति पूजा, कपट धर्म, साम्प्रदायिक पक्षपात तथा हठधर्मी का खण्डन किया है और क़ुरान तथा पुराणों के नाम मात्र अवलम्बन करने से ईश्वर भक्ति की कहीं अधिक महिमा बताई है।

९—'शब्द हज़ारा'—इस पुस्तक को स्वयम् गुरुगोविंद सिंह ने लिखा है। इसमें दस श्लोक हैं। ये समस्त श्लोक ईश्वर की स्तुति और छोटे देवी देवताओं की पूजा का खंडन करते हैं।

१०—'स्त्री चरित्र'—४०४ कथाओं में जो समस्त संग्रह का प्रायः आधा है स्त्रियों के छल वर्णन किये गये हैं।

११—'हिकायात'—ये गिनती में बारह हैं और मसनवी के ढंग की फ़ारसी कविता की ८६६ पंक्तियों में लिखी हुई हैं।

निस्सन्देह दसम ग्रन्थ भी आदि ग्रन्थ के समान गुरु-मुखी अक्षरों में ही लिखा हुआ है।

२—परिशिष्ट

क्या सिक्ख मत एक मिश्रित मत है ?

सिक्खमत की विशेषताओं को वर्णन करने से पूर्व इस अत्यन्त प्रचलित कथनकी सत्यता की परीक्षा करना आवश्यक है कि सिक्खमत हिन्दूमत तथा इसलाम दोनों के मिले हुए सिद्धान्तों से बना हुआ है। ६० वर्ष से अधिक हुए कनिघम ने लिखा था कि 'सिक्ख लोग एक नये मत के माननेवाले हैं जो ब्रह्म तथा मोहम्मद दोनों मतों के मेल से बना हुआ है।" उस समय से लेकर आज पर्यन्त सिक्खमत के अनेक लेखकों ने अनेक बार ही इस कथन को दोहराया है। मौनियर विलियम्स भी, जिसे अधिक उत्तम ज्ञान होना चाहिये था, सिक्खमत के ईश्वरवाद को इस्लाम मत से प्रभावित कहे बिना न रह सका। वह भूतपूर्व बोडेन प्रोफ़ेसर लिखता है कि,"नानक पर कम से कम मूर्तिपूजा का निषेध करने तक में थोड़ा बहुत इसलाम का प्रभाव पड़ा था।

हम तुरन्त इस बात को स्वीकार कर लेते हैं कि सिक्ख मत के आगमन के साथ इसलाम का कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य था। निस्सन्देह यदि इसलाम भारत की सीमाओंके भीतर पग न रखता तो सम्भव है कि सिक्ख मतका जन्मही न होता वा स्यात् यह मत इस स्वरूप में कभी भी प्रकट न होता। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि सिक्खमत किसी अंश में भी मुसलमानी है।

हम स्वीकार करते हैं कि इसलाम के सम्पर्क ने हिन्दू समाज को नीचे से ऊपर तक उद्विग्न कर दिया था तथा और

उस समाज के विचारों तथा क्रियाओं को एक प्रबल उत्तेजना दी थी। किन्तु यह उद्वेग ठीक वैसाही था जैसा कि एक प्रबल शत्रु के आक्रमण करने के समय हम अपनी शक्तियों को एकत्र करते हैं और आक्रमण के अत्याचारों से अपनी रक्षा करने के लिये अपने आयुधागारों तथा तोपखानों के ताले खोलते हैं। अस्त्र शस्त्र हमारे अपने होते हैं और पहिले से हमारे पास पड़े होते हैं किन्तु शत्रु के आगमन द्वारा हम उन अस्त्र शस्त्रों को बाहर निकालते हैं और अपने घरबार की रक्षा के लिये उनका प्रयोग करते हैं। चौदहवीं तथा पन्द्रहवीं शताब्दियों में हिन्दुओं ने जो कुछ धार्मिक चेष्टाएं कीं वे उन राजनैतिक प्रयत्नों के अनुरूप थीं जो कि उन्होंने अपनी जाति को लोप हो जाने से बचाने के लिये किये और यह अनुरूपता निस्सन्देह शिक्षाप्रद है। जब उन्हें समस्थल से मार भगाया गया तो वे राजपूताने के जंगलों तथा मरुस्थलोंमें और उत्तर तथा दक्षिण के पहाड़ों में जा छिपे और उन्होंने उस समय तक अपने प्रयत्नों को जारी रक्खा जब तक कि अपने विजेताओं को परास्त न कर दिया। इसही प्रकार धार्मिक युद्ध में हिन्दू धर्म के सब से बाहर वाले स्थान था अर्थात् नीच जातियों के विश्वासों तथा आचारों को इसलाम ने पहिले ही आक्रमण में विजय कर लिया और उन स्थानों के प्रायः प्रत्येक रक्षक का विध्वन्स कर दिया*। तुरन्त इस बात का पता लग गया कि अरबवालों के मूर्तिभंजक तथा उन्मत्त मत के सन्मुख इस प्रकार के विश्वास न ठहर सकेंगे। हिन्दुओं ने आसन्न वि-

*विशेषतर पंजाब में चेनाब के उत्तर की ओर नीच जातियां तथा कृषक भी प्रायः समस्त मुसलमान हैं।

नाश से अपनी रक्षा करने के लिये दो उपाय किये। ब्राह्मणों ने सामाजिक व्यवस्था का एक दुर्ग बनालिया और जातिभेद रूपी दीवारों के पीछे जा शरण ली। जो लोग इस दुर्ग से बाहर छोड़ दिये गये वे नाश हो गये। और जो दुर्ग के भीतर ले लियेगये वे अपने समस्त प्रिय द्रव्यों समेत चाहे वह स्वर्ण रहा हो या मिट्टी बच गये। दूसरा उपाय अपने भेद्य स्थानों को त्याग देना था अर्थात् अपने निःसत्व पुरातन विश्वासों और दूषित धार्मिकक्रियाओं रूपी मलावृत खड्गों तथा टूटे हुए अस्त्रों को फेंक कर ओजस्वी, पौरुषेय, नैतिक तथा दार्शनिक हिन्दूधर्म के ब्रह्मवाद रूपी चमचमाती हुई खड्गों तथा परखे हुए अस्त्रों से खुले मैदान में युद्ध करना था। गुरू नानक तथा उनके अनुयायियों ने इस ही उपाय का अनुसरण किया।

यही ढंग था जिसमें कि इसलाम ने हिन्दूमत के ऊपर अपना प्रभाव डाला। अन्यथा जैसा कि "नानक चरित्र" के सुप्रसिद्ध लेखक मुल्कराज भल्ला ने लिखा है इसलाम के सिद्धान्तों का नानक के सिद्धान्तों की रचना के साथ उतना ही कम सम्बन्ध था जितना कि बाबर की सेना का उस राजपूत सेना की रचना के साथ था जिसने कि राना सांगा के नेतृत्व में बाबर के साथ भारतीय साम्राज्य के लिये युद्ध किया*। पूर्वोक्त ने अपरोक्त को आवश्यक कर दिया किन्तु पूर्वोक्त अपरोक्त का एक भाग न था।

सिक्ख मत के मुसलमानी कहलाने वाले अंगों की परीक्षा करने से इस विचार के थोथलेपन का पता लग जावेगा कि सिक्खमत इसलाम का ऋणी है। सिक्खमत का यह सब से

---

* "नानक चरित्र" द्वितीय आवृति पृ० २३४

अधिक महत्व का सिद्धान्त जिस की उत्पत्ति इसलाम के प्रभाव से बतायी जाती है उस मत का एक ईश्वर वाद है और पहिले पहिले ऐसा प्रतीत होने लगता है कि नानक ने इस वाद के कुरान से ही लिया होगा। किन्तु निम्नलिखित विचारों से सिद्ध हो जावेगा कि इस प्रकार का अनुमान करना सर्वथा असंगत है:—

१—गुरु नानक का कभी कोई मुसलमान शिक्षक न था। वह फ़ारसी बहुत कम जानते थे और अरबी बिलकुल नहीं*।

२—ईश्वर के विषय में गुरु नानक का विचार इसलाम के विचार से सर्वथा भिन्न है। इसलाम के अनुसार यह समझा जाता है कि ईश्वर सातवें आसमान में रहता है। कम से कम यह आसमान ईश्वर का प्रिय निवासस्थान समझा जाता है जहां पर कहा जाता है कि मोहम्मद साहब अपने मेराज (आरोहण) में ईश्वर से मिले थे। गुरू नानक के अनुसार ईश्वर सर्वव्यापी है। किसी स्थानविशेष के ईश्वर का प्रिय निवास स्थान होने का विचार गुरू नानक के उपदेशों से सर्वथा दूर है। इसके अतिरिक्त मुसलमानों का ईश्वर मानुषिक रूप का है और गुरू नानक का ईश्वर निराकार अथवा वेदान्त से अधिक मिलता जुलता है।

३—यह विचार करना कि हिन्दुओं को इसलाम ने एक ईश्वरवाद सिखलाया सर्वथा मूर्खता है। हिन्दुओं ने मोहम्मद ईसा तथा मूसा तक की उत्पत्ति से बहुत पूर्व ईश्वर की एकता को अनुभव कर लिया था†।

---

* Mas. Car 187 (Brit Mus.) में लिखा है कि नानक ने ईश्वर की एकता के चिन्ह 'अलिफ़' के अतिरिक्त और कुछ न पढ़ा था।

† कोई समझदार मनुष्य इस बात से इनकार न करेगा इसलिये इस

४—गुरुनानक हिन्दु पुराणों के छोटे छोटे देवी देवताओं के अस्तित्व से सर्वथा इनकार नहीं करते। उन्होंने केवल उन देवी देवताओं की पूजा के स्थान पर एक परमेश्वर की पूजा का उपदेश दिया।

५—गुरु नानक हिन्दू अवतारों को परमेश्वर के तुल्य नहीं समझते तथापि वे उन अवतारों का स्पष्ट खण्डन भी नहीं करते। *

६—अनेक योरोपियन लेखकों के विचारों से प्रतीत होता है कि केवल मैं ही एक ऐसा मनुष्य नहीं हूं जिसने कि सिक्ख मत के इसलाम से निज सिद्धान्त ग्रहण करने की बात का निषेध किया हो। डाक्टर ट्रम्प ऊपर के इस कथन का समर्थन करता है कि ईश्वर के विषय में गुरु नानक का विचार एक ईश्वरवाद की अपेक्षा विश्वदेवता वाद (वेदान्त) से अधिक मिलता जुलता है। वह लिखता है कि—"यह कहना कि नानक ने ईश्वर के विषय में हिन्दू तथा मुसलमान विचारों को मिलाने का प्रयत्न किया मिथ्या है। नानक अपने समस्त विचारों में एक पक्का हिन्दू रहा।" मॅलकम कहता है कि—"यद्यपि सिक्ख मत तथा हिन्दुओं की आधुनिक पूजाविधि में बहुत बड़ा भेद है तथापि समझा जाता है कि हिन्दू जाति आरंभ के दिनों में जिसशुद्ध तथा सरल धर्म का पालन किया करती थी उससे यह मत अत्यन्त मिलता जुलता है।" गार्डन

बात का प्रमाण देना कदापि आवश्यक नहीं है। तथापि इस विषय में वेदों में से निम्नलिखित प्रमाण दिये जा सकते हैं:—ऋग वेद—

१—१६४,४६, ३·२० ३, ६—४६, ३८ ८—८,१, १०—८१, २, ३०—८१,३, यजुर्वेद ३२,१ अथर्ववेद १३—४,४,५: १३—४, १४,३१ ई०

* देखो बारनेट का "हिन्दूइज्म", पृ० ३८।

"सिक्खों" के ऊपर अपने छोटे से सुन्दर निबन्ध में लिखता है कि—"सिक्खमत की जड़ें केवल धार्मिक आकांक्षाओं में थीं। यह मत ब्राह्मणत्व के अन्याय के विरुद्ध एक प्रकार का अभिद्रोह था। ब्राह्मणों के युग को अपने कंधों पर से फेंक कर नानक तथा उसके शिष्य स्वभावतः अपने पूर्वजों के प्राचीन मर्यादा की ओर लौट गये।" (पृ० २०)

अब हम मूर्तिपूजा की ओर ध्यान देते हैं क्योंकि मौनियर विलियम्स के अनुसार गुरु नानक ने इसलाम से प्रभावित होकर ही मूर्तिपूजा का निषेध किया था। मैं इस बात से इनकार नहीं करता कि सम्भवतः इसलाम का इस बात से कुछ न कुछ सम्बन्ध रहा होगा। किन्तु निस्सन्देह गुरुनानक अथवा किसी भी अन्य हिन्दू समाज संशोधक को मूर्तिपूजा की निकृष्टता की शिक्षा इसलाम ने नहीं दी थी। इस सत्यता को सब स्वीकार करते हैं कि प्राचीन हिन्दुओं में मूर्तिपूजा का प्रचार न था। वेदों में मूर्तिपूजा का स्वप्न तक नहीं आता। दार्शनिक हिन्दू मत में मूर्तिपूजा के लिये कोई स्थान ही नहीं। यह प्रथा जैनियों ने हिन्दुओं में प्रचलित की और फिर यह हिन्दुओं से चिपट गयी। तथापि रामानुज जैसे बड़े बड़े आचार्यों ने मूर्तिपूजा को भक्तिमार्ग रूपी सोपान की सब से नीची पैड़ी पर रक्खा और केवल अशिक्षितों अथवा अज्ञानियों के लिये ही उसकी अनुज्ञा दी।* वैष्णव मत भी मूर्तिपूजा का विरोध कर सका। और कबीर जैसा एक महान

---

* जो कोई हिन्दू मूर्तिपूजा का मंडन करते हैं वे भी केवल यह कहते हैं कि जिन मूर्तियों के सन्मुख वे सिर निवाते हैं वे एक सर्व शक्तिमान परमात्म के गुणों के केवल चिन्ह रूप हैं। अन्य किसी प्रकार से कोई हिन्दू मूर्तिपूजा का मंडन नहीं करता। (लेखक)

वैष्णव नेता पक्का मूर्तिभंजक था। और "इस बात में कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता कि कबीर का स्थापन किया हुआ मूर्तिपूजा का विरोधी पंथ वैष्णवमतमें से ही उत्पन्न हुआ। * गुरु नानक ने कबीर से सूत्र ग्रहण किया अथवा उनकी अपनी अपूर्व तथा प्रबल बुद्धि ने उन्हें उत्तेजित किया और उन्होंने 'एक ऐसी जाति को फिर से उभारने" का प्रयत्न किया "जो कि अपनी प्राचीन पूजाविधि से गिर कर मूर्ति पूजक हो गयी थी। नानक को हिन्दू धर्म का उच्छेदक समझने की अपेक्षा संशोधक समझना अधिक उचित है†।

इसलाम के प्रभाव नामक वाद का एक और तथा अन्तिम आधार इस बात पर है कि गुरु नानक ने जाति भेद का खण्डन किया। सब से प्रथम स्मरण रखना चाहिये कि "इस बात का प्रतिपादन करने के लिये कोई प्रमाण नहीं है कि नानक ने जाति भेद को सर्वथा तोड़ दिया था‡।"

गुरु नानक का अपना विवाह जाति भेद के नियमों के अनुसार हुआ था। उनके पुत्र का विवाह भी जाति नियमों के अनुसार ही हुआ था और गुरु ने कभी अपने किसी भी अनुयायी से खान पान में अथवा अधिक महत्त्व की बात विवाह सम्बन्ध में जाति भेद को तोड़ देने के लिये नहीं कहा

* मौनियर विलियम्स। मी० विलसन अपने आक्सफोर्ड के लेक्चरों में प्राचीन हिन्दुओं का वर्णन करते हुए कहता है कि—"प्रतीत होता है कि पूज्य देवताओं आदिक की कोई प्रतिमाएं या कोई स्थूल लिंग न होते थे।" ऐलफिन्सटन अपने इतिहास में इसे उद्धृत करता है।

जि० १ पृ० ७३।

† सर जान मेलकम।

‡ मेलकम।

गुरु ने जाति भेद के विरुद्ध केवल इतनी बात कही थी कि कोई मनुष्य उच्च जाति में उत्पन्न होने के कारण परमेश्वर से किसी विशेष अनुग्रह की आशा न करे। तथा "परमेश्वर तुम्हारी जाति नहीं देखता वरन् तुम्हारे कर्मों की जांच करता है।" यह एक ऐसी स्थिति है जिससे कि हिन्दू धर्म ने कभी भी इनकार नहीं किया। अभिमानी से अभिमानी ब्राह्मण ने भी कभी इस बात का प्रतिपादन नहीं किया कि उसके ब्राह्मण होने के कारण अगले जन्म में उसकी गति अणुमात्र भी औरों से अच्छी होगी। यह केवल इस बात का अभियोग करता है कि उस की इस जन्म की उच्च अवस्था के कारण उस के पिछले जन्म अथवा जन्मों का शुभकर्म संचय था और साथ ही इस बात का प्रतिपादन करता है कि इस जन्म में निज देश की सामाजिक व्यवस्था में वह कुछ विशेष अधिकारों के योग्य है। गुरु नानक केवल एक पद आगे बढ़े और उन्होंने यह प्रतिपादन किया कि कोई एक जाति भी दूसरी जाति से उत्कृष्टतर अथवा निकृष्टतर नहीं है। हिन्दुओं के धर्मग्रन्थ भी इस ही बातका प्रतिपादन करते रहे हैं। मनु महाराज लिखते हैं :—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च॥

१०—६५

अर्थात् एक ब्राह्मण गिरकर शूद्र हो सकता है और एक शूद्र उन्नति कर निज गुण कर्म तथा स्वभाव के अनुसार ब्राह्मण हो सकता है इत्यादि*। आपस्तम्ब सूत्रों में भी यह

* दयानन्द सरस्वती रचित "सत्यार्थ प्रकाश" पृ० ६०

ही कसौटी दी हुई है और लिखा हुआ है कि मनुष्य अच्छे कर्मों द्वारा उच्च से उच्च वर्ण को प्राप्त कर सकता है और बुरे कर्मों द्वारा नीच से नीच वर्ण अथवा जाति में गिर सकता है।

और न नानक पहिला हिन्दू ही था जिसने कि जाति भेद का निषेध किया। महात्मा बुद्ध पहिला हिन्दू था जिसने कि ईसाई मत से बहुत पूर्व तथा इसलाम के जन्म से १००० वर्ष से भी अधिक पूर्व जाति भेद की कृत्रिम रचना को तोड़ कर और समता स्वतन्त्रता तथा भ्रातृत्व का उपदेश दे वर्णों की वास्तविक व्यवस्था को फिर से स्थापन किया था। पुराणोंने भी जातिभेद का तिरस्कार करने में बुद्ध का अनुसरण किया ये पुराण मनुष्यमात्र के लिये खुले हुए थे और उनके द्वारा राजा तथा प्रजा, ब्राह्मण तथा चाण्डाल सब किसी को एक समान भक्तिमार्ग* का उपदेश दिया जाता था।

भक्तिमार्ग की सार्व लौकिकता से हमें एक और बात का ध्यान आता है जिस पर कि, जहांतक मुझे पता है, किसी भी योरोपियन लेखक ने ध्यान नहीं दिया। अर्थात् भक्तों अथवा साधुओं का ब्राह्मणों अथवा पुरोहितों के साथ परस्पर विरोध एशिया महाद्वीप में साधु सन्त पुरोहितों का सदा विरोध करते रहे हैं। साधु सन्त मनकी शुद्धता, दानशीलता, विनय, भक्ति तथा ईश्वर प्रेम को ही प्रधान समझते रहे हैं जब कि

* इस मार्ग ने जाति भेद पर भी विजय प्राप्त की। क्योंकि राम अथवा कृष्ण की ओर अनन्य भक्ति देखने में मनुष्यों के बीच एक ऐसा एकता बनाने वाला बन्धन थी कि जिस से अधिक प्रबल अन्य कोई भी सामाजिक बन्धन न हो सकता था और ऊंच नीच का भेद अथवा पारस्परिक विरोध इस सामान्य भक्ति के सन्मुख न टिक सकते थे। मौनियर विलियम्स Brahmand Hind pp 63-64.

पुरोहित लोग न्यूनाधिक यांत्रिक धर्म को आवश्यक बताते रहे हैं और ये लोग अपने मत के धार्मिक सिद्धान्तों अथवा यम नियमों आदिक क्रियाओं के किसी प्रकार उल्लंघन करने को भी सह न सकते थे* । कहते हैं कि मुसलमानों ने मनसूर को सूलीपर चढ़ा दिया था और शम्स-ए-तबरेज़ को जीवित खाल खिंचवादी थी क्योंकि ये दोनों सन्त सूफी इत्यादि से विरोध रखते थे ।

खुसरो एक उदारचित्त राजा के समय में रहता था और इस ही लिये वीरता के साथ मुल्लाओं का विरोध कर सका तथा इसलाम की ओर घृणा दर्शा सका !

गुरु नानक भी एक भक्त अथवा दरवेश था और अन्य दरवेशों की प्रथा के अनुसार वह भी पुरोहितों के जातिनियमों का पालन करने की ओर अधिक ध्यान न दे सकता था ।

अर्वाचीन समय के आचार्यों में भी गुरु नानक पहिला आचार्य न था जिसने कि जातिभेद के विरुद्ध अपनी ध्वनि उठायी । दक्षिणी मरहटा प्रदेश का एक बस्व नामक समाज संशोधक जो सन् १२५० के निकट जीवित था नानक से पूर्व ही जातिभेद का निषेध कर चुका था । "यद्यपि वह स्वयं ब्राह्मण था तथापि उसने ब्राह्मणों के प्रभुत्व से इनकार किया और जातिभेद को मिटा देने का अपनी शक्ति भर प्रयत्न

---

* Even in Europe the Pope hurled his condemnation at Manichaeism and cynosticism Prog Ceman 'Mystics &c. of India (P. 8)

†अलाउद्दीन (१२९६-१३१३) कहा करता था कि मज़हब केवल व्यक्तिगत जीवन के विनोद के लिये है । राज शासन से उसका कोई सम्बन्ध नहीं । फ़रिश्ता (quoted by F. W. Thomas P. 87.)'

किया"* ।

उसके पश्चात् रामानन्द नामक एक ब्राह्मणने उच्च से उच्च तथा नीच से नीच जाति के लोगों को अपना शिष्य बनाया। उसके दो सब से अधिक प्रसिद्ध शिष्यों में से एक कबीर जुलाहा था और दूसरे रविदास चमार था।

कबीर स्वय जुलाहा था इसलिये वह कदापि जातिभेद के अन्याय का समर्थन न कर सकता था। और जितनी उसकी जाति नीची थी उतने ही प्रबल तथा कटु शब्दों में उसने जातिभेद का खण्डन किया। गुरुनानक उच्च जाति का क्षत्री था। किन्तु यदि उसके हृदय में अधिक उच्च आचार नैतिक तथा समस्त मनुष्यजाति की समता तथा हितेच्छा सम्बन्धी अधिक उच्च भाव भी उत्पन्न न हुये हों तथापि एक धर्मोपदेशक का काय अपने ऊपर लेकर वह अणुमात्र युक्तता के साथ भी ब्राह्मणों के प्रभुत्व का प्रतिपादन न कर सकता था।

ऊपर के उल्लेखों से प्रतीत होगा कि गुरुनानक के समाज सशोधन के साथ इसलाम का प्राय. कोई सम्बन्ध न था। टामस लिखता है कि,—'प्रतीत होगा कि हिन्दू धर्म ने स्पष्ट रूप में इसलाम से प्रायः कुछ भी ग्रहण नहीं किया है। जहां कहीं इन दोनों मतों को मिलान का प्रयत्न किया गया इसलाम मत का सार सर्वथा पृथक रहा। मोहम्मद तथा कुरान ने अपना कोई भाव हिन्दूधर्म को प्रदान नहीं किया। 'रसूल की व्यक्ति हिन्दुओं के लिये कभी भी आकर्षक सिद्ध नहीं हुई। इस प्रकार हमें स्वीकार करना पडता है कि रसूल का मत प्रचार भारत में सफल न हो सका। निस्सन्देह एक

---

*डाक्टर जे॰ऐन॰भट्टाचार्य Hindu casts and Sects P. 435.

सर्वथा सेमिटिक (Semitic) तथा अदार्शनिक मत का एक ऐसे मत के ऊपर जिसकी जड़ें दर्शन शास्त्र में थीं तथा जो इस प्रकार की परिकल्पनाओं से भरा हुआ था कुछ भी प्रभाव पड़ना असम्भव था * ।"

जो कुछ ऊपर लिखा जा चुका है उससे यह स्पष्ट हो गया होगा कि यद्यपि इसलाम सिक्खमत के आगमन का एक कारण था तथापि इस मत से सिक्खमत ने कुछ भी ग्रहण नहीं किया। वरन् इस के विपरीत सिक्खमत हिन्दुओं की धार्मिक उन्नति का एक पहलू है और इस ही लिये हिन्दूधर्म के मुख्य सिद्धान्तों से यह मत बहुत कुछ समानता रखता है। तथापि इस मत में कई विशेषताएं हैं जिनके कारण यह एक पृथक मत स्पष्ट दिखायी देता है और अब हम इन विशेषताओं में से कुछ मुख्य मुख्य पर विचार करेंगे।

---

* I W Thomas in Le Bas Prize essay on 'Mutual Influence of Mohammadans and Hindus' in India (P 97)

३—परिशिष्ट

सिक्खमत की विशेषताएँ ।

गुरुनानक के मत की मुख्य विशेषता परमेश्वर की एकता थी। आदिग्रन्थ के प्रारम्भिक श्लोक में परमेश्वर के मुख्य २ गुण इस प्रकार वर्णन किये गये हैं।

"एक ओंकार सतनाम कर्त्ता पुरुष निर्भौ निर्वैर अकाल मूरत अजूनी से भंग गुर परसाद जप आद सच जुगाद सच है भी सच नानक हो सी भी सच।"

अर्थात्—"एक ओंकार जिसका नाम सत्य है, सृष्टि का कर्त्ता, निर्भय आत्मा, निर्वैर अकालरूप, अयोनी सत्पुरुष जो आरम्भ में विद्यमान था। काल के आरम्भ से भी पहल उपस्थित था वह सत्पुरुष है और हे नानक! वह सत्पुरुष सदा रहेगा।"

इस उदाहरण से स्पष्ट पता लगजावेगा कि गुरु नानक का विचार परमेश्वर के विषय में ठीक वैसा ही था जैसा कि हिन्दू धर्मग्रन्थों में दिया हुआ है। ओंकार शब्द का प्रयोग इस समस्त श्लोक के स्वरूप तथा अर्थ दोनों पर हिन्दूपन की मोहर लगा देता है। यह भी मान लियाजावेगा कि परमेश्वर की एकताका विचार हिन्दुओं के लिये कोई नया न था। तथापि पंजाब में व्यवहार की दृष्टि से यह विचार शताब्दियों से लोप हो गया था और गुरु नानक ने ही इस प्रान्त में शताब्दियों के पश्चात् परमात्मा की एकता का प्रकाश किया।

एक विचार से गुरु नानक, कबीर तथा हिन्दूधर्म के अन्य समस्त संशोधकों से बढे हुये थे। जब से कि हिन्दुओं ने जैनियों से अवतारवाद को ग्रहण करलिया था किसी भीहिन्दू नेता

को इस बाद की सत्यता के विषय में सन्देह प्रकट करने का साहस न हुआ था। सब कोई राम तथा कृष्ण को ईश्वर के अवतार मान उनकी पूजा करते थे। गुरुनानक ने ही वीरता के साथ उनके ईश्वरत्व का प्रतिषेध किया, उन्हें साधारण मनुष्यों के समान बताया तथा यह उपदेश दिया कि उस सर्व शक्तिमान परमात्मा के जो समस्त विश्व का रचने वाला तथा समस्त विश्व का शासक है रावण तथा कंस जैसे मंदभाग्यों के वध के लिये मनुष्यरूप धारण करने से गौरव में वृद्धि नहीं हो सकती *। गुरुगोविन्द सिंह में इस से भी बढ़कर अपने 'विचित्र नाटक' में लिखा है कि "परमेश्वर ने कृष्ण जैसे कोटियों कीड़ों की रचना की' अनेक राम पैदा किये और उनका नाश किया। अनेक मोहम्मद इस सन्सार में पैदा हुए। सब अपना २ काल आने पर चलदिये।"

हम ऊपर दिखा चुके हैं कि ईश्वर के विषय में गुरु नानक का विचार इसलामके समान सर्वथा यह नहींहै कि ईश्वर एक पृथक व्यक्ति विशेष है वरन् गुरु का विचार वेदान्त के अद्वैत से अधिक मिलता हुआ है ट्रम्प लिखता है कि— "हम ग्रन्थ में एक स्थूल तथा एक सूक्ष्म दो प्रकार का अद्वैत भिन्न २ देख सकते हैं। स्थूल अद्वैत समस्त पदार्थों को ब्रह्म के साथ मिला देता है और विश्व के विविध रूपों को केवल ब्रह्म का फलाव ही बताता है। दूसरी ओर सूक्ष्म अद्वैत अमित ब्रह्म तथा परिमित जीव में भेद करता है और प्रायः ईश्वर वाद से आकर मिलजाता है। यद्यपि परमेश्वर समस्त पदार्थों को अपने भीतर से ही रचता है तथा उन सबमें व्यापक है तथापि वह सृष्ट जीवों से भिन्न रहता है और माया से अदूषित

* राग आसा म० १

रहता है ठीक जैसे कि एक सर में कमल अपने चारों ओर के पानी से भिन्न रहता है।*

दूसरी मुख्य बात जिसमें साधारण हिन्दूमत तथा गुरुओं के उपदिष्ट सिक्ख मत के बीच कुछ भेद दिखाई देता है वह मूर्तिपूजा का न होना है। यह सच है कि पंजाब में प्रायः वे सब लोग जो अपने को सिक्ख कहते हैं मूर्तिपूजक हैं तथापि सिक्ख मत का आन्तरिक भाव मूर्तिपूजा के विरुद्ध है। आदि तथा दसम दोनों ग्रन्थों में सैकड़ों ही स्थानों पर अत्यन्त प्रबल शब्दों में मूर्ति पूजा का निषेध किया गया है मैं ऊपर संकेत कर चुका हूं कि गुरुओं ने हिन्दुओं के विविध देवी देवताओं के अस्तित्व से इनकार नहीं किया किन्तु यह बात दृढ़ता के साथ कही जा सकती है कि गुरुओं ने इन देवी देवताओं की पूजा की कभी भी अनुज्ञा नहीं दी इस लिये ट्रम्प का यह कहना कि गुरु नानक ने कभी भी अन्य देवताओं की पूजा का निषेध नहीं किया सत्य नहीं माना जा सकता। वास्तव में एक परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य समस्त देवताओं आदिक की पूजा का निषेध करना ही वह सब से मुख्य बात थी जिसने सिक्ख मत को संशोधन अथवा पुनरुद्धार का स्वरूप प्रदान किया। मुझे आश्चर्य है कि अपने कथन के विरुद्ध अगणित प्रमाण रखते हुये भी डाक्टर ट्रम्प ने यह बात कैसे लिखी। गुरुनानक लिखते हैं:—हे "भ्राता! क्या हम देवी देवताओं की पूजा करेंगे? मैं उन से क्या मांगूं और वे मुझे क्या दे सकते हैं?† अन्यत्र—" सदेह में मत पड़ो। एक परमात्मा के अतिरिक्त किसी को मत पूजो न कबरों को और न दरगाहों को † इत्यादि।

---

*Trumpp's 'Adi Granth' P,C.

†सोरठ महल १।

तथापि यह एक विचित्र बात है कि इन आज्ञाओं के होते हुए भी न केवल मूर्तिपूजा ही सिक्खों में अत्यन्त प्रचलित है वरन् उनमें एक नयी प्रकार की पूजा उत्पन्न हो गयी है जिसे गुरु नानक पहिले से न देख सके थे। मेरा अभिप्राय ग्रन्थ साहब की पूजा से है। निस्सन्देह सुशिक्षित सिक्ख अपने धर्म ग्रन्थ के सन्मुख केवल आदर दर्शाने के लिये ही शिर नवाते हैं किन्तु सर्वसाधारण में ग्रन्थ साहब की प्रायः ठीक उसी प्रकार पूजा की जाती है जिस प्रकार कि कट्टर से कट्टर मूर्त्ति पूजक हिन्दू ने कभी अपनी उत्तम से उत्तम मूर्ति की पूजा की। अमृतसर के गुरुद्वारे में, सिक्खों के प्रत्येक अन्य तीर्थ पर तथा साधारण धर्मशालाओं वा सिक्ख मन्दिरों में भी उस-ही पूजा विधि का पालन किया जाता है जो कि मथुरा तथा वृन्दावन में हिन्दू मूर्त्तियों के सन्मुख पालन की जाती है। सिक्ख धर्मशालाओं में ठीक वैसे ही धूप दीप जलाये जाते हैं, वैसेही आरती की जाती है, वैसेही शंख बजाये जाते हैं इत्यादि जैसे कि हिन्दू मन्दिरों में। तथापि यह बात स्वीकार करनी पड़ती कि जिस प्रकार हिन्दू अपनी मूर्त्तियों को देवता सम-भते हैं उस प्रकार सिक्ख अपने ग्रन्थ' का नहीं समझते और ग्रन्थपूजा सर्वथा मूर्तिपूजा के समान ही नहीं है।

गुरुनानक के स्थापन किये हुए तथा गुरुगोविन्द सिंह के परिवर्त्तनों से पूर्व के सिक्ख मत की तीसरी विशेषता यह थी कि उस मत में बाह्य धार्मिक लिंगों की सर्वथा उपेक्षा की जाती थी। गुरुनानक के आक्षेपोंमेंसे सब से प्रबल उन लोगों के विरुद्ध हैं जो अपने मत के कर्मकाण्ड तथा बाह्य लिंगों पर अधिक ज़ोर देते हैं और उस मत के आन्तरिक भाव अर्थात् सार को ग्रहण नहीं करते। गुरु नानक प्रत्येक मत के वास्त-

विक सार को आदर की दृष्टि से देखते थे किन्तु यदि किसी मत के मानने वाले उस मत की केवल यांत्रिक क्रियाओं का पालन करलेना ही अपने लिये पर्याप्त समझलेने थे तो गुरुनानक उन्हें घृणाकी दृष्टि से देखते थे। हिन्दुओं की संध्या मुसलमानों की निमाज तथा जैनियों के आचार विचार किसी को भी वह अच्छा न समझते थे यदि उस संध्या आदिक के साथ मन की शुद्धता, चित्त की उदारता हृदय की दयालुता तथा सच्ची ईश्वर भक्ति न हो। सिक्ख धर्म की यह सुन्दरता उस समय जाती रही जिस समय कि दशवें गुरु को सामयिक घटना स्थिति से विवश हो उस मत को अपना राजनैतिक अस्त्र बना लेना पड़ा। गुरु गोविन्द सिंह के समय में कई बाह्य क्रियाओं ने सिक्ख मत में भी ठीक वही पद प्राप्त कर लिया जोकि हिन्दुओं में यज्ञोपवीत, मुसलमानों में खतना तथा ईसाइयों में बपतिस्मा को प्राप्त है। अन्य छोटी २ क्रियाओं को छोड़ कर दशवें गुरु के समय से कोई मनुष्य अपने को वास्तविक 'सिक्ख' नहीं कह सकता जब तक कि वह अपने शिर तथा डाढ़ी के केशों को उस्तरे वा कैंची के सम्पर्क से दूर न रखे। आजकल यह बात प्रायः देखने में आती है कि यदि कोई सिक्ख अपने लम्बे केश कटवा देता है तो उस पर आपस में विवाद खड़ा हो जाता है और सिक्ख उपदेशक गुरुओं के वास्तविक आत्मा को उन्नत करने वाले उपदेशों का प्रचार करने के स्थान पर लम्बे केशों के प्रचार में ही अपनी अधिक शक्ति व्यय करते हैं। *

---

*सिक्ख लोग अपने मत के लिंगोंको बनाये रखने का जो प्रयत्न करते हैं उस से मुझे पूरी सहानुभूति है क्योंकि अन्यथा एक महान जाति की व्यक्तिता के मिटजानेकी सम्भावना है। तथापि यह सच है कि अन्य मतोंके समान लिंगों

चौथी तथा अन्तिम विशेषता सिक्ख मत की यह है कि इस मत के उपदेशों में 'नाम' पर अत्यधिक ज़ोर दिया जाता है। इसका अभिप्राय परमेश्वर के नामों में से किसी एक नाम का जाप करना है। और यद्यपि सिक्ख मत अवतारवाद को नहीं मानता तथापि यह एक विचित्र बात है कि ग्रन्थ साहब में परमेश्वर का नाम सबसे अधिक 'राम' दिया हुआ है। 'नाम' की प्रथा आरम्भ में वैष्णव मत से ली गयी थी किन्तु सिक्ख मत में इसे इतना उच्च स्थान प्रदान किया गया है कि मोक्ष प्राप्ति के लिये उसे यज्ञ, दान तथा ज्ञानसे भी अधिक प्रबल साधन बताया गया है।

प्रायः ये ही वे समस्त विशेषताएं हैं जो सिक्खमत तथा अन्य हिन्दू सम्प्रदायों में भेद करती हैं। समाजिक व्यवस्था में भी हिन्दूमत तथा सिक्खमत में इतना कम भेद है कि एक विदेशी के लिये दोनों में भेद करना सदा एक सरल कार्य नहीं होता। तथापि यह बताया जा सकता है कि एक समाजिक व्यक्ति के रूप में एक सिक्ख अपने एक हिन्दू भाई से बहुत कुछ भिन्न होता है। वह प्रायः लम्बा तथा प्रतापी दिखायी देता है। उसके लम्बे केश तथा एक सुरक्षित लम्बी दाढ़ी होती है और वह हिन्दुओं की एक भीड़ में भी सहज ही पहिचाना जा सकता है। वह बिना पगड़ी कभी बाहर नहीं जाता टोपी अथवा टोप का उसके लिये कड़ा निषेध है। खानपान में वह प्रायः मांसाहारी होता है और चौके का अधिक विचार नहीं रखता तथा इन दो बातों को छोड़कर इस विषय में वह साधारण हिन्दुओं के समान है। वह कदापि तम्बाकू नहीं

तथा कर्मकाण्ड से आरोपित हो जाने के कारण सिक्खमत का धार्मिक मूल्य बहुत घट गया है।

पीता क्योंकि गुरु गोविन्द सिंह ने इसका अत्यन्त कड़ा निषेध किया है। यद्यपि सिक्खों में बहुत कम निरामिषभोजी हैं तथापि सिक्ख झटके के अतिरिक्त दूसरा मांस नहीं खाते। गौ सिक्खों के लिये उतनी ही पवित्र है जितनी कि हिन्दुओं के लिये। किन्तु सिक्खों को शूकर के मांस से कोई परहेज नहीं होता। वास्तव में इस मांस की ओर सिक्खों की विशेष रुचि है। सम्भव कि यह रुचि मुसलमानों के साथ सिक्खों के पुराने द्वेषभाव का ही अवशेष हो।

सिक्खों तथा हिन्दुओं की सामाजिक व्यवस्था में अधिक भेद नहीं है। किन्तु सिक्ख खानपान तथा विवाह सम्बन्ध में जाति नियमों का इतना अधिक विचार नहीं रखते जितना कि हिन्दू रखते हैं। वास्तव में नीच कहलाने वाली जातियों में जिन में से कि अधिकांश सिक्ख लिये गये हैं जातिभेद के नियम बहुत ही शिथिल हो गये हैं। तथापि यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि सिक्ख लोग आजदिन तक भी नान-हिन्दुओं से उसही प्रकार खानपान आदिक में पृथक रहते हैं जिस प्रकार कि अन्य हिन्दू और सिक्ख मत किसी प्रकार से भी कदापि किसी नान-हिन्दू को अपने मत में नहीं लेता*। सिक्ख लोग वैदिक संस्कारों आदिक का भी अधिक पालन नहीं करते। यज्ञोपवीत को वे आवश्यक नहीं समझते। इस संस्कार के स्थान पर उनके यहां का 'पहुल' संस्कार है जिसे हम अन्यथा वर्णन कर चुके हैं। हाल ही में सिक्खों में अपना एक स्वतंत्र विवाह संस्कार बना लेने का भी प्रबल

*गुरु गोविन्द सिंह ने कुछ भंगियों को सिक्ख मत में लेलिया था किन्तु सनातनत्व अर्थात् स्थितिपालकता का भाव गुरु के लिये भी अत्यन्त प्रबल था और ये भंगी हिन्दुओं अथवा सिक्खों में आज तक मिलकर एक न हो सके।

आन्दोलन हो चुका है। इस आन्दोलन का परिणाम यह "आनन्द विवाह सम्बन्धी कानून" था जो सन् १९०९ में पास हुआ था और जिसे नाभा के महाराजा साहब ने जो उस समय वहाँ के टीका साहब थे बड़े लाट की कौन्सल में उपस्थित किया था*।

इस विवाह विधि के अनुसार ब्राह्मण का होना सर्वथा आवश्यक नहीं है और वेदमंत्रों का कोई काम ही नहीं पड़ता गणेश अथवा नक्षत्रों की पूजा भी नहीं की जा सकती वर तथा कन्या एक दूसरे से अधिक लज्जा नहीं करते और जिस प्रकार वैदिक विवाह में हवन कुण्ड के फेरे दिये जाते हैं उसही प्रकार इस विवाह में आदिग्रन्थ के फेरे दिये जाते हैं जो सदा उस स्थान पर रक्खा रहता है। आदिग्रन्थ के कुछ श्लोक भी पढ़े जाते हैं। यद्यपि वास्तव में ये श्लोक अलंकार रूप से जीव तथा परमात्मा के संयोग को दर्शाने के लिये लिखे गये थे तथापि अब इनके द्वारा कन्या तथा वर के सम्बन्ध को अधिक पवित्र किया जाता है।

आरम्भ में केवल नीच जाति के लोग विधवा विवाहों तथा इस ही प्रकार के अव्यवस्थित सम्बन्धों में इस विधि का प्रयोग करते थे। किन्तु जब से सिक्खों में हिन्दुओं से अपनी पृथकता प्रतिपादन करने की रुचि उत्पन्न हो गयी है तब से उच्च जाति के लोगों में भी "आनन्द" विवाह प्रचलित होता जाता है।

*अंगरेज़ी पुस्तक में इस स्थान पर समस्त कानून उद्धृत किया हुआ है। किन्तु यहां पर केवल यह बता देना पर्याप्त होगा कि सिक्खों की हिन्दुओं से भिन्न एक विशेष विवाह विधि है जिसे "आनन्द" कहते हैं और १९०९ के कानून द्वारा इस विधि के अनुसार हुये हुये सिक्ख विवाह भविष्य के लिये न्याय ठहराये गये।

सिक्खों के त्यौहार प्रायः सब वे ही हैं जो कि हिन्दुओं के। तथापि सिक्खों ने हिन्दुओं के होली त्यौहार में एक और दिन जोड़ लिया है जिसे वे 'होला महल्ला' कहते हैं। यह होला महल्ला होली त्यौहार के अन्तिम दिन के पीछे होता है। सिक्ख लोग गुरुओं के जन्मदिनों तथा शरीर त्याग के दिनों पर भी छुट्टी मनाते हैं।

तथापि सिक्खों की सब से मुख्य विशेषता उनके वीर आचार तथा उनके सैनिक गुण हैं। दशवें गुरु ने उन सिक्खों को जो आरम्भ में पंजाब के सामन्य कृषकों से किसी प्रकार भी अच्छे न थे इस प्रकार के योधाओं तथा वीरों की एक जाति बनादिया जो सिंह का उसकी कन्दरा में जाकर सामना करते थे और भयंकर औरंगज़ेब का उसके अपने दरबार में प्रतिरोध के लिये आह्वान करते थे*

---

* दया सिंह गुरु का पत्र लेकर औरङ्गज़ेब के दरबार में गया था। उसने न शिर निवाया और न अभिनन्दन में एक शब्द उच्चारण किया। केवल "वाह गुरू जी का ख़ालसा श्री वाह गुरु जी की फ़तह है" कह कर पत्र औरङ्गज़ेब को पकड़ा दिया।

सन् १७४० के निकट अमृतसर के एक मुग़ल कर्मचारी मस्साराघड़ नामक ने 'हर मन्दिर' को अपना महफ़िल ख़ाना बनाकर वहां नाच करवाना आरम्भ करदिया था। इसके अतिरिक्त तम्बाकू पीकर तथा पवित्र भूमि पर थूक थूक कर उस स्थान को अपवित्र किया गया। मीरान्कोट का एक जाट महताब सिंह तथा मारीकम्बो का एक बढ़ई सुखासिंह ये दो सिक्ख उस समय बीकानेर में छिपे हुए थे। एक सिक्ख अपने इस परम पवित्र तीर्थ के अपवित्र किये जाने का समाचार उन दोनों के पास लेगया। उन्होंने समाचार लाने वाले से कहा,—"तुम कैसे मन्दिर को अपवित्र किये जाते हुए देख सके और फिर भी जीवित रह सके?" यह कह शस्त्र कस वे तुरन्त अमृतसर को ओर चल दिये। उन्होंने बहुत सी पगड़ियों को थैलों के समान

लगभग ७० वर्ष हुए कनिंघम ने लिखा था कि, "समस्त सिक्ख जाति में एक जीवित आत्मा व्याप्त है। और गुरु गोविन्द के प्रभाव से न केवल उनकी मानसिक अवस्था को ही परिवर्त्तित तथा उन्नत कर दिया है वरन् उनके स्थूल शरीरों को भी मांसल तथा प्रबल बना दिया है। एक समस्त जाति के आकार तथा वाह्य रूप में परिवर्त्तन उत्पन्न हो गया है। ठीक जिस प्रकार कि एक सिक्ख सरदार अपने प्रतापी स्वरूप और स्वतंत्र तथा पौरुषेय व्यवहार द्वारा चीन्हा जा सकता है उस ही प्रकार उस मत का एक धर्मोपदेशक अपने नेत्रों की उग्र विचारशीलता द्वारा चीन्हा जा सकता है जो कि उसकी आत्मा के उत्साह तथा उसके इस विश्वास का चिन्ह रूप है कि परमात्मा उसके सदा निकट रहते हैं।" पिछली शताब्दी के मध्य में अंगरेज़ों तथा सिक्खों के परस्पर युद्धोंमें सिक्खोंके शारीरिक बल तथा उनके महान सांग्रामिक गुणोंका पूरा पूरा परिचय मिल गया था।

"कभी किसी भी देशीय सेना ने जिसकी संख्या ब्रिटिश सेना से इतनी थोड़ीसी बढ़ी हुई हो ब्रिटिशके साथ एक ऐसा युद्ध नहीं किया जिसमें कि विजय इतनी अधिक सन्दिग्ध रहीहो

गोलन्दर लिया और इनसे दो धनियों का भर कर मुसलमान भेष धारण कर अपना कर देने के बहाने वे मस्सा के सामने चले गये एकने उस अन्यायी को बातों में लगा लिया और दूसरे ने तुरन्त अपनी खड्ग निकाल कर उसका शिर काट दिया। दरबारियों के सिमलते सिमलते ही दोनों वीर अपने घोड़ों पर सवार हो नगर के बीच से भाग निकले। इस प्रकार गुरु गोविन्द सिंह का विश्वास अक्षरशः पूरा हुआ। गुरु साथ कहा करते थे कि मेरी चिड़िये शिकरों का शिकार करेंगी और एक अकेला सिक्ख सवालाख का सामना करेगा।

जितनी कि फ़ीरोज़शाहके युद्धमें पाई। और यद्यपि अन्तमें विजय असंदिग्ध रही तथापि इस विषयमें मतभेद है कि यदि सिक्खों के गुणों को पूर्ण विकाश का अवसर देनेके लिये उन्हें पर्याप्त योग्यता वाले सेनापति मिलजाते तो परिणाम क्या होता। *"

. "किसी ने भी हमारे विरुद्ध इतनी वीरता और दृढ़ता के साथ तथा हमारी ओर से इतनी विश्वासघता तथा शूरता के साथ युद्ध नहीं किया जितना कि सिक्खों ने। † "

आजदिन भी सब कोई इस बात को स्वीकार करते हैं कि भारतवर्ष में सिक्ख जाति ही सब से उत्तम योधा जाति है। ब्रिटिश भारतीय सेनाके ललाम मानों सिक्खोंमें से निकलतेहैं जनरल गार्डन लिखता है कि, "जहां कहीं विकट युद्ध करना पड़ा है वहां ये लोग ही सबसे आगे दिखायी दिये हैं। और उन्होंने अचल राजभक्ति, साग्रह दृढ़ता तथा निर्भय वीरता के के लिये अपनी उत्कृष्ट कीर्त्ति को बनाये रक्खा है। वास्तव में ये तीनों गुणही सिक्खोंकी अनाशवान पैतृक सम्पत्ति है।"

* Sir G. Cough and Arthur Innes—"The Sikhs and Sikh wars" P. 42.

† General Sir John J. H. Gordon K. C. B. "The Sikhs" P. 3.

छापे की अशुद्धियों का शुद्धिपत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	२	१८५०	१८५७
११	१	विचार	विद्या
११	१६	पहिले	जो से पहिले
१५	१	या	पर
१६	८	संसार	सन्यास
२३	२४	अपेक्षा	अवेक्षा
२८	१३	जानते थे	जानते थे अथवा ब्राह्मणों को दक्षिणा न दे सकते थे
३१	७	होती है	होते हैं
३४	१८	स्वादी	उदासी
३६	१४	स्वराज्य	साम्राज्य
३८	४	मन	सब
,,	५	कर तथा	करना था
३६	१६	रंगरूप	रंगरूट
४५	३	देता	देना
,,	१६	जण्डिचाल	जण्डियाला
६१	१	बल	बलि
,,	२६	गुरू	गुरू
७१	२१	मीदान कोट	मीरान् कोट
,,	२२	मारी कब	मारीकंबी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७८	२४	अब	अम
८३	६	चित्र	चैत्य
८४	१५	पत्र भी सिला	पत्रों भी मिला
८५	८	घल	घाले
८७	२१	अधिकारयुत	अधिकारच्युत
८६	८	१५००	१५०००
६२	१६	नाम से उसके	ख़र्च से उसका
६३	२	उसके...सेनापति	उसको प्रसन्न करने के लिये उसके बल, वीरता तथा सेनापतित्व
,,	१७	सामयिक	सामरिक
६६	५	कद	मर
१०२	८	तेग़ बहादुर की अपेक्षा तेग़ बहादुर	तेग़ बहादुर की अपेक्षा देग़ बहादुर
,,	६	ब	जो
१०४	७	चलया	चलना
११०	२२	धनका	टक्का
११४	२४	मुक्काद	मुसाद
११६	१४	यह्न	स्वह्न
१२७	२५	निमंत्रण	नियंत्रण
१३१	१६	नहीं	नहीं था
१४८	१६	उत्सतप	उत्सृक
,,	२०	मुर्दों	मुरीदों
१५२	७	पद्पात	पक्षपात

[पृ० १५२ के नोट की अन्तिम लाइन के पश्चात् पृ० १५३ के नोट की तीसरी लाइन से पढ़ो और १५३ के नोट की दूसरी लाइन के पीछे १५४ का नोट मिला लो।]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६३	२५	कीवरों	झीवरों
१६७	३	रुहेकों	रुहिल्लों
६६	१७		
२०३	२३	वेद की	वद्दो की
२०५	१३	पार	पीर
२१६	१४	उमदरा	उमरा
२२५	८	माका	माझा
,,	१२	लेना	सेना

पुस्तक भंडार लाहौर ।

—:○:—

पंजाब प्रान्त में अकेला यह सस्ता पुस्तकालय है जो हिन्दी और उर्दू में उत्तम से उत्तम (literature) पुस्तकें प्रकाशित करता है सारे देशकी उत्तम श्रेणी की पुस्तकें अपने स्टाक में हरदम मौजूद रखता है इसकी एक हिन्दी पुस्तक

" नव जीवन विद्या "

जो डाकूर कावन की जगत विख्यात पुस्तक

The Science of a New Life.

का भाषानुवाद हरएक नरनारी के देखने और रोज पाठ करने योग्य है यह पुस्तक थोड़े ही काल में हाथों हाथ बिक गयी और अब थोड़ी ही कापियां बाकी हैं इस पुस्तक में जिन्दगी के हर एक सवाल पर बड़े विधानक स्वरूप में रोशनी डाली गयी है इसकी भूमिका डाकूर गोकलचंद जी M. A. Ph. D, ने लिखा है जो इस पुस्तक "सिक्खों का परिवर्तन" के रचयिता हैं। देश के तमाम प्रसिद्ध पुरुषों और बड़े बड़े समाचार पत्रों ने बड़ी बढ़ी आला (Review) समालोचना लिखी हैं कोई घर इस पुस्तक से खाली न रहना चाहिये ।

Some opinions
ON
The Transformation of Sikhism
सिक्खों का परिवर्तन

Indian Social Reformer.

Mr. Narang marshalls his facts in an able manner nd the reader is carried on to the end of the book vithout any break in the interest of the story. The nartyrdom of the several gurus and their followers is a narrative of thrilling interest. Guru Govind who stamped he Sikhs as a warlike race, was a master mind with a profound knowledge of human nature. The story of the nanner in which he made his choice of his first disciples, has been often told but it will bear repetition.

Modern Review.

This is an important addition to the literature on the subject. The author has ransacked all available sources of information, including the Bodhian Library, the India Office Library, and the British Museum, and book terms with references. The biliography appended to the work will greatly assist those who want to persue their reading to original sources, it is sure to take its place, as a standard work of reference.

Amrit Bazar Patrika.

We must say at the outset that it is a very interesting publication. Besides being a well-written account of the

rise and growth of one of the most important of the Hindu communities, it begins with an introductory chapter explaining clearly *with the aid of facts and sound reasoning* what an important bearing spiritual emancipation has on the general welfare of a people Reforms in every *department of human activity ultimately appeal to man's* moral nature and unless this be in a fit condition to respond no reformer can hope for success If the book only sets our countrymen *thinking* about the *excellences* which are claimed for the teachings of Nanak and other Gurus in this all important matter of making men of us then it will not have been written in vain We wish the *book to be largely read by our educated community*

The Indian Spectator

Dr Narang s work is a very interesting history of the Sikhs and an account of their religious system The history of the Khalsa is a moving story it is unique in its beginning, and at no period could anybody have foretold that a movement which began as a simple monotheistic ' revival " would culminate in the setting up of a militant theocracy by the most virile of the races of Northern India Dr Narang brings out forcibly the remarkable *changes of doctrine that arose among* the Sikhs in their early days, and the manner in which they fitted the needs of the hour The Gurus appear to have had some superhuman guidance which saved them from becom

-g "tr mmers n sp r t al matters Of course

they never acted from motives of personal expediency, and their whole history is a lesson to the tyrants of vanity of persecution. Dr. Narang's history deserves great popularity It is not so heavy as some of the standard works, but contains the essence of much patient study and is, with the exception of one or two peculiarities of diction, excellently written.

The Mahratta.

Mr. Gokul Chand, Narang, M. A., Ph. D., Bar-at-law has, however, used the new and old material in his valuable book—"The Transformation of Sikhism." For the purposes of his book Mr. Gokul Chand has consulted nearly sixty volumes, including books and manuscripts written in English, Gurumukhi, Hindustani, Persian and Sanskrit, available in India and England. His aim has been "not to contradict or preach, nor to excite and inflame, but simply to instruct and explain." Mr. Gokul Chand's book gives the history of the Sikhs, of their transformation into a political organization, upto 1768 when the Sikhs occupied Lahore. Mr. Gokul Chand verifies almost every statement and traces it to its proper source and authority, and we trust that the book will serve as an authoritative, well written, and studied treatise on Sikh history. Mr. Gokul Chand's book is very fascinating both in matter and in manner, and it has become a very weighty and authoritative publication on Sikh History. The treatment has been so

appropriate to the subject that one cannot put aside t book till he goes to its end, Mr. Gokal Chand's volume h become a worthy and valuable addition to the literatu on Indian History, and we feel sure, will be highly appr ciated by the public.

Tribune.

Mr. Gokal Chand has spared no pains in the preparation of this book which is written in an attractive style and will amply repay perusal. We strongly recommend this book to every one inlerested in Sikh history.

An Hon'ble Judge of the High Court of Calcutta writing to the author says:—Many thanks for your book on Sikhism. It shows vast erudition and great originality. In fact it is the best work on the subject I have come across. It is a very valuable contribution to our historical literature, and I greatly appreciate your kind gift.

Yours sincerely,

A. CHAUDHRI.